

सामाजिक नीति एवं योजना

(SOCIAL POLICY AND PLANNING)

H-340

Self Learning Material



Directorate of Distance Education

**SWAMI VIVEKANAND SUBHARTI UNIVERSITY
MEERUT-250005
UTTAR PRADESH**

SIM Module Developed by : Rajiv Ranjan

Reviewed by :

- Dr. Sartaj Ahmed
- Dr. Sudhir Tyagi

Assessed by:

Study Material Assessment Committee, as per the SVSU ordinance No. VI (2).

Copyright © Laxmi Publications Pvt Ltd

No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior permission from the publisher.

Information contained in this book has been published by Laxmi Publications Pvt Ltd and has been obtained by its authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the publisher and its author shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specially disclaim and implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by : Laxmi Publications Pvt Ltd., 113, Golden House, Daryaganj, New Delhi-110 002.
Tel: 43532500, E-mail: info@laxmipublications.com

DEM-2069-105.04-SOCIAL POLICY & PLAN H-340

Typeset at : Excellent Graphics, Delhi

Edition: 2017

C- 00489/08/19

Printed at: Ajit Printing Press, Delhi

CONTENTS

इकाई

विषय -सूची

पृष्ठ संख्या

इकाई	विषय	पृष्ठ संख्या
इकाई I -	क्षेत्रीय नीतियाँ एवं सामाजिक सेवाएँ (Sectoral Policies and Social Services)	1-40
1.1	उद्देश्य (Objectives)	2
1.2	प्रस्तावना (Introduction)	2
1.3	क्षेत्रीय नीतियाँ व सामाजिक सेवाएँ (Sectoral Policies and Social Services)	3
1.4	सामाजिक नीति एवं सामाजिक विकास का संबंध (Relationship Between Social Policy and Social Development)	7
1.5	समस्याओं के समाधान के लिए अपनाए गए तरीके (Methods Employed to Deal with the Problems)	8
1.6	सामाजिक नीति एवं योजना में निहित मूल्य, मौलिक अधिकार, राज्य के नीतिनिर्देशक सिद्धांत, मानव अधिकार (Values Underlying Social Policy and Planning Based on the Constitutional Provision i.e., Directive Principles of State Policy and Fundamental Rights and the Human Rights)	11
1.7	संविधान की प्रस्तावना (Preamble to the Constitution)	17
1.8	प्रस्तावना का मूल्यांकन (An Evaluation of the Preamble)	22
1.9	मौलिक अधिकारों का अर्थ, महत्त्व अथवा उद्देश्य (Meaning, Importance or Purpose of the Fundamental Rights)	22
1.10	नीतिनिर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy)	31
1.11	नीतिनिर्देशक सिद्धांतों की प्रकृति या स्वरूप (Nature of the Directive Principles)	33
1.12	मानव अधिकार (Human Rights)	37
1.13	सारांश (Summary)	39
•	अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)	40
•	संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)	40
इकाई II -	नीति निर्माण संबंधी दृष्टिकोण (Policy Formulation Approaches)	41-64
2.1	उद्देश्य (Objectives)	42
2.2	प्रस्तावना (Introduction)	42
2.3	एकताबद्ध, एकीकृत एवं क्षेत्रीय सामाजिक नीति के नीति निर्माणक दृष्टिकोण (Policy Formulation Approaches to Social Unified Integrated and Sectoral)	43
2.4	विकास : योजना की रणनीति और वैचारिकी (Development : Strategy and Ideology of Planning)	43
2.5	भारतीय योजनाओं में वृद्धि-मॉडल (Growth Models in Indian Planning)	46
2.6	प्रथम योजना का मॉडल (The First Plan Model)	47
2.7	दूसरी योजना का मॉडल (The Second Plan Model)	48
2.8	तृतीय योजना का मॉडल (The Third Plan Model)	49
2.9	चतुर्थ योजना का मॉडल (The Fourth Plan Model)	50
2.10	पंचम योजना का मॉडल (The Fifth Plan Model)	51
2.11	सामाजिक शोध का योगदान (The Contribution of Social Research)	53
2.12	पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका (Role of Professional Social Workers)	56
2.13	हित समूह अथवा दबाव गुटों की भूमिका (Role of Interest or Pressure Groups)	56

2.14	दबाव गुट और राजनीतिक दल के बीच भेद (Distinction Between Pressure Groups and Political Parties)	58
2.15	भारत में दबाव गुट (Pressure Groups in India)	59
2.16	दबाव गुटों की भूमिका और प्रभाव (Role and Impact of the Pressure Groups)	61
2.17	सारांश (Summary)	63
	● अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)	64
	● संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)	64

इकाई III - ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्विकास		
(Policies Evolution of Social Policy in India in a Historical Perspective)		65-171
3.1	उद्देश्य (Objectives)	66
3.2	प्रस्तावना (Introduction)	67
3.3	ब्रिटिश शासनकाल में आर्थिक परिवर्तन (Economic Change Under the British Rule)	67
3.4	उपनिवेशवाद और आर्थिक गतिहीनता (Colonialism and Economic Stagnation)	71
3.5	आयोजन की ऐतिहासिक समीक्षा (Historic Review of Planning's)	71
3.6	भारत में लोकतांत्रिक समाजवाद (Democratic Socialism in India)	74
3.7	विकास की रणनीति (Strategy of Development)	78
3.8	भारत की पंचवर्षीय योजनाएँ (Five-Year Plans in India)	81
3.9	शिक्षा (Education)	84
3.10	महिला एवं बाल विकास (Women and Child Development)	91
3.11	महिला एवं बाल कल्याण कार्यक्रम (Women and Child Welfare Programmes)	92
3.12	जनांकिकीय विश्लेषण (Demographic Analysis)	94
3.13	जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion)	97
3.14	जनसंख्या वृद्धि एवं नियंत्रण की सैद्धान्तिक व्याख्याएँ (Theoretical Explanations of Population Growth and Control)	102
3.15	पिछड़े वर्गों का कल्याण (Welfare of Backward Classes)	111
3.16	अनुसूचित जातियाँ (Scheduled Tribes)	114
3.17	जनजातियों का भौगोलिक वितरण (Geographical Distribution of Tribes)	116
3.18	जनजातीय समाज की समस्याएँ (Problems of Tribal Society)	117
3.19	स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जनजातीय विकास के प्रयास (Tribal Development Efforts After Independence)	120
3.20	स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण (Health and Family Welfares)	122
3.21	पर्यावरण ह्रास का अर्थ व प्रक्रिया (Meaning of Environmental Degradation)	132
3.22	पारिस्थितिकी ह्रास (Ecology Decline)	133
3.23	पर्यावरणीय प्रदूषण (Environmental Pollution)	137
3.24	वायु प्रदूषण (Air Pollution)	137
3.25	जल प्रदूषण (Water Pollution)	140
3.26	मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)	142
3.27	ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)	143
3.28	विकिरण प्रदूषण (Radiation Pollution)	144

3.29	पर्यावरण संरक्षण में राज्य की भूमिका (Role of State in Environmental Protection)	145
3.30	विशिष्ट प्रतिबन्धित सुरक्षित परियोजना क्षेत्र (Special Restricted Safe Project)	148
3.31	भारतीय संन्दर्भ में वन संरक्षण (Forest Protection in Indian Context)	149
3.32	पादप एवं वन संरक्षण (Plant and Forest Conservation)	150
3.33	वन शिक्षा एवं शोध से सम्बद्ध संस्थान (Forest Education and Research Related Institute)	151
3.34	भारत में प्रदूषण नियन्त्रण की नीतियाँ (Policy of Pollution Control in India)	152
3.35	पर्यावरण संरक्षण—जन—सामान्य की भूमिका एवं पर्यावरण जागरूकता (Environment Protection—Peoples Role and Environment Awareness)	155
3.36	वाटरशेड विकास कार्यक्रम एवं संयुक्त वन प्रबन्धन (Watersheds Development Programme and Joint Forest Management)	157
3.37	शहरी एवं ग्रामीण विकास, आवास तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, महिला, युवा एवं क्षेत्रीय कार्यक्रम (Urban and Rular Development, Housing and Poverty Alleviation Programme, Woman, Youth and Regional Programme)	160
3.38	शहरी विकास के लिए कार्यक्रम (Programmes for Urban Development)	163
3.39	पर्यावरण (Environment)	164
3.40	आवास एवं गंदी बस्तियाँ (Housing and Slums)	165
3.41	सारांश (Summary)	171
	● अभ्यास—प्रश्न (Exercise Questions)	171
	● संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)	171
इकाई IV - क्षेत्रीय योजनाओं के समाकलन संबंधी व्यापक दृष्टिकोण (Broad View Regarding Integration of Regional Plans)		172-196
4.1	उद्देश्य (Objectives)	172
4.2	प्रस्तावना (Introduction)	172
4.3	अर्थ (Meaning)	173
4.4	प्रदेशों में निवेश आबंटन (Allocation of Investment Between Regions)	173
4.5	संतुलित प्रादेशिक विकास की आवश्यकता (Need for Balanced Regional Development)	175
4.6	भारत में प्रादेशिक असमानताओं से सम्बद्ध नीतियाँ (Policies Relating to Regional Disparities in India)	177
4.7	आर्थिक विकास के सामाजिक निर्धारक (Determinants of Economic Development)	186
4.8	सारांश (Summary)	195
	● अभ्यास—प्रश्न (Exercise Questions)	196
	● संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)	196

इकाई-I
(Unit-I)

नोट

क्षेत्रीय नीतियाँ एवं सामाजिक सेवाएँ
(Sectoral Policies and Social Services)

संरचना (Structure)

- 1.1 उद्देश्य (Objectives)
- 1.2 प्रस्तावना (Introduction)
- 1.3 क्षेत्रीय नीतियाँ व सामाजिक सेवाएँ (Sectoral Policies and Social Services)
- 1.4 सामाजिक नीति एवं सामाजिक विकास का संबंध
(Relationship between Social Policy and Social Development)
- 1.5 समस्याओं के समाधान के लिए अपनाए गए तरीके
(Methods Employed to deal with the Problems)
- 1.6 सामाजिक नीति एवं योजना में निहित मूल्य, मौलिक अधिकार, राज्य के नीतिनिर्देशक सिद्धांत, मानव अधिकार
(Values Underlying Social Policy and Planning based on the Constitutional Provision i.e., Directive Principles of State Policy and Fundamental Rights and the Human Rights)
- 1.7 संविधान की प्रस्तावना (Preamble to the Constitution)
- 1.8 प्रस्तावना का मूल्यांकन (An Evaluation of the Preamble)
- 1.9 मौलिक अधिकारों का अर्थ, महत्त्व अथवा उद्देश्य
(Meaning, Importance or Purpose of the Fundamental Rights)
- 1.10 नीतिनिर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy)
- 1.11 नीतिनिर्देशक सिद्धांतों की प्रकृति या स्वरूप (Nature of the Directive Principles)
- 1.12 मानव अधिकार (Human Rights)
- 1.13 सारांश (Summary)
 - अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

भारतीय नेतृत्वों ने लंबे काल तक अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष किया था। गुलामी और निरंकुश शासन का उन्हें अनुभव था। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि लोकतंत्र और नागरिक अधिकारों की ओर उनका झुकाव हो। जवाहरलाल नेहरू ने अपने सुप्रसिद्ध 'उद्देश्य प्रस्ताव' (Objectives Resolution) में जिस 13 दिसम्बर, 1946 के दिन संविधान सभा में रखा गया था, यह कहा कि संविधान का लक्ष्य देश में गणतंत्र की स्थापना करना है जिससे सब लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय मिल सके। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 10 दिसम्बर, 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा की। संरक्ष-राष्ट्रों ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे मानव अधिकारों (Human Rights) के प्रति समान जागृताओं और उनका पालन करेंगे।

संविधानों में मूल अधिकारों की शोषण करने की नीति अपनाई। संयुक्त राष्ट्र सभा ने भी मानव अधिकारों की घोषणा की थी। उसके परचाल यूरोप के कई अन्य देशों ने अपने-अपने तरीके से किया। संयुक्त राष्ट्र सभा का संविधान नागरिकों को कई तरह के अधिकार प्रदान करता है। 1789 में फ्रांस हुए हैं तथा परमाणु ने उन्हें कुछ ऐसे अधिकार प्रदान किए हैं जो किसी भी अवस्था में उनसे छीने नहीं जा सकते।" संयुक्त राष्ट्र सभा ने भी मानव अधिकारों की घोषणा की थी। उसके परचाल यूरोप के कई अन्य देशों ने अपने-अपने तरीके से किया। संयुक्त राष्ट्र सभा का संविधान नागरिकों को कई तरह के अधिकार प्रदान करता है। 1789 में फ्रांस हुए हैं तथा परमाणु ने उन्हें कुछ ऐसे अधिकार प्रदान किए हैं जो किसी भी अवस्था में उनसे छीने नहीं जा सकते।

अमेरिकी उपनिवेशों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा के समय यह कहा था : "सभी मनुष्य समान उत्पन्न सामाजिक न्याय की बुनियाद पर आधारित हो। महाराष्ट्र देश ने एक लंबे काल तक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। इस संघर्ष में मुख्य भूमिका बुद्धिजीवियों और मध्य वर्ग के लोगों ने निभाई। बाद में किसानों और मजदूरों ने भी राष्ट्रीय आंदोलन में अपना योगदान दिया। महाराष्ट्र गांधी के कारण हमारा स्वाधीनता संग्राम अधिकारों से भरा हुआ था। हमारे नेतृत्वों की लोकतंत्र में गहरी आस्था थी, साथ ही वे धार्मिक और भाषाई मतभेदों से भी परित्यक्त थे। संविधान सभा के बहुरत से सदस्यों ने इंग्लैंड में शिक्षा पाई थी और वे लोग इंग्लैंड व अमेरिका की राजनीतिक संस्थाओं से बहुत प्रभावित थे। इन सब बातों को मिला-जुला परिणाम यह हुआ कि वे एक ऐसा संविधान चाहते थे जो लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, लोकहित और सामाजिक न्याय की बुनियाद पर आधारित हो।

महाराष्ट्र देश ने एक लंबे काल तक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। इस संघर्ष में मुख्य भूमिका बुद्धिजीवियों और मध्य वर्ग के लोगों ने निभाई। बाद में किसानों और मजदूरों ने भी राष्ट्रीय आंदोलन में अपना योगदान दिया। महाराष्ट्र गांधी के कारण हमारा स्वाधीनता संग्राम अधिकारों से भरा हुआ था। हमारे नेतृत्वों की लोकतंत्र में गहरी आस्था थी, साथ ही वे धार्मिक और भाषाई मतभेदों से भी परित्यक्त थे। संविधान सभा के बहुरत से सदस्यों ने इंग्लैंड में शिक्षा पाई थी और वे लोग इंग्लैंड व अमेरिका की राजनीतिक संस्थाओं से बहुत प्रभावित थे। इन सब बातों को मिला-जुला परिणाम यह हुआ कि वे एक ऐसा संविधान चाहते थे जो लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, लोकहित और सामाजिक न्याय की बुनियाद पर आधारित हो।

1.2 प्रस्तावना (Introduction)

- समाज नीति एवं योजना में निहित मूल्य, मौलिक अधिकार, राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत आदि के लिए विशेष जानकारी प्राप्त होती है।
- नीतिनिर्देशक सिद्धांतों की प्रकृति या स्वरूप की विशेष जानकारी प्राप्त होती है।
- समस्याओं के समाधान के लिए नये तरीकों की जानकारी प्राप्त होती है।

इस पाठ का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है -

1.1 उद्देश्य (Objectives)

संसार के अधिकतम जनसंख्या वाले देशों में भारत का दूसरा स्थान है। क्षेत्रफल की दृष्टि से उसका विश्व में सातवाँ स्थान है। 1981 में देश की आबादी 68 करोड़ थी, जो 1991 में 84 करोड़ 63 लाख हो गई। 11 मई 2000 को भारत की जनसंख्या 100 करोड़ का आँकड़ा पार कर गई। आबादी की इस बाढ़ की वजह से अन्न, जल व ऊर्जा जैसे संसाधनों पर बहुत ज्यादा दबाव है। सबसे घनी आबादी वाला राज्य पश्चिम बंगाल है, जहाँ एक वर्ग किलोमीटर में 766 व्यक्ति रहते हैं। केरल का स्थान दूसरा है (प्रति वर्ग किलोमीटर 747 व्यक्ति)। संघ शासित क्षेत्रों में दिल्ली सर्वाधिक घनत्व वाला क्षेत्र है।

क्षेत्रीय असंतुलन से क्या अभिप्राय है? (What is meant by Regional Imbalances?)

'संतुलित विकास' के अभाव को असंतुलन कहा जाता है। असंतुलन को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है: "लोगों की आय में विषमता, शहर तथा गावों में असंतुलन, तथा देश के विभिन्न भागों में असंतुलन।" संतुलित विकास का यह अर्थ नहीं है कि सभी प्रदेशों में रहने वाले लोगों का एक बँसा जीवन-स्तर हो। अलग-अलग प्रदेशों के संसाधनों में भिन्नता के कारण विषमताएँ तो रहेंगी ही, पर यह जरूरी है कि हर क्षेत्र के साधनों का ज्यादा से ज्यादा विकास किया जाए, जिससे कि उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा उठे।

क्षेत्रीय विषमताओं की मापने के कुछ प्रमुख मापदंड

इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत में क्षेत्रीय विषमताएँ मौजूद हैं। क्षेत्रीय विषमताओं को मापने के प्रमुख मापदंड इस प्रकार हैं—

(1) आय और बेरोजगारी का स्तर (Level of Income and Unemployment)—बेरोजगारी की सही ढंग से माप नहीं की जा सकती है, क्योंकि ये आँकड़े राजगार कार्यालयों द्वारा तैयार किए जाते हैं जिनमें आमदौरे पर शहरी लोग ही अपने नाम कर्ज करते हैं, देहात वाले व्यक्ति नहीं। जहाँ तक कि नहीं खास राज्यों या क्षेत्रों का प्रश्न है, एक सर्वेक्षण के अनुसार देश की सर्वाधिक गरीब जनसंख्या इन राज्यों (उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु) में केंद्रित है।

(2) कृषि और उद्योगों का विकास (Growth of Agriculture and Industries)—कृषि संबंधी उद्योगों का प्रादेशिक वितरण भी बहुत दीर्घकाल रहा है। अधिकांश उद्योग महाराष्ट्र, गुजरात और पश्चिम बंगाल के कुछ विशेष क्षेत्रों में ही केंद्रित हैं। उद्योगों का प्रादेशिक वितरण भी बहुत दीर्घकाल रहा है। अधिकांश उद्योग महाराष्ट्र, गुजरात और पश्चिम बंगाल के कुछ विशेष क्षेत्रों में ही केंद्रित हैं।

(iii) आधुनिक संरचना (Infrastructure)—'आधुनिक संरचना' का अभिप्राय उन सेवाओं से है जो एक आधुनिक अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए अनिवार्य मानी जाती हैं, जैसे यातायात और संचार के साधन (सड़कें, रेलें, आदि) विद्युत-संस्थान, नहरें, बांध, जलाशय तथा बैंक व अन्य वित्तीय संस्थाएँ जो ऋण और पूँजी उपलब्ध कराती हैं। भारत के ग्रामीण इलाकों और पहाड़ी प्रदेशों में 'आधुनिक संरचना' का बड़ा अभाव है।

(iv) पूँजी-निवेश सूचकांक (Investment Indexes)—भारत में कई क्षेत्र इसलिए अतिकसित हैं क्योंकि वहाँ पूँजी का पर्याप्त निवेश नहीं किया गया है। खनिज संयंत्रों और प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता के बावजूद वहाँ पूँजी-निवेश पर यथोचित ध्यान नहीं दिया गया। बिहार और मध्य प्रदेश में यदि वास्तव में पूँजी लगाई जाए तो इन प्रदेशों की उम्र व स्थायी प्रगति हो सकती और आर्थिक विषमताएँ भी घटेंगी।

(v) सामाजिक सेवा सूचकांक (Social Service Indicators)—क्षेत्रीय असंतुलन का विवेचन करते समय हमें शिक्षा, प्रशिक्षण, चिकित्सा व अन्य आवश्यक सुविधाओं पर भी ध्यान देना होगा। इस दृष्टि से केरल और

दिल्ली जैसे प्रदेश अपेक्षाकृत ज्यादा अच्छी स्थिति में हैं, जबकि बिहार, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में ये सेवाएँ कम मात्रा में उपलब्ध हैं।

भारी असंतुलन वाले क्षेत्र (Regions with Glaring Imbalances)

नोट

नीचे हम उन क्षेत्रों और प्रदेशों की चर्चा करेंगे जो बहुत ज्यादा अर्विकसित हैं और लंबे समय से अपेक्षित पड़े रहे हैं।

1. उत्तर-पूर्वी क्षेत्र (North-Eastern Regions)—असम, त्रिपुरा और मणिपुर का क्षेत्र सामरिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है चूँकि वह चीन, बांग्लादेश और बर्मा की सीमा से लगा हुआ है। यहाँ चाय, तेल तथा खनिज बड़ी मात्रा में हैं, पर उन उद्योगों के विकास से स्थानीय जनता को पूरा लाभ नहीं पहुँचा। असम में ब्रिटिश पूँजी के साथ ही दूसरे राज्यों के श्रमिक, साहूकार और व्यापारी पहुँचे। हिसाब-किताब की देखभाल के लिए अंग्रेजी पढ़े-लिखे बंगाली बाबुओं का प्रवेश असम में हुआ। इससे असमिया समाज में धीरे-धीरे कुंठा की स्थिति उत्पन्न हो गई। असम, मणिपुर और त्रिपुरा में शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ शिक्षित बेरोजगारी बढ़ रही है।

1980 के अंत तक औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank) ने विभिन्न प्रदेशों को 5,391 करोड़ रुपये की सहायता दी। इस राशि का केवल एक प्रतिशत भाग पूर्वोत्तर प्रदेशों के हिस्से में आया। दूसरी ओर, महाराष्ट्र और गुजरात, इन दो राज्यों को कुल राशि का 32 प्रतिशत भाग मिला। नागालैंड में बाँस का उत्पादन भारी मात्रा में किया जाता है। कागज के उत्पादन में लगने वाली घास भी पर्याप्त मात्रा में होती है। किंतु वहाँ 100 टन की क्षमता-वाला सिर्फ एक कागज का कारखाना स्थापित हुआ है।

2. ग्रामीण क्षेत्रों में अभावग्रस्त स्थिति (Poverty stricken conditions in the Rural Areas)—भारत में हर प्रकार की जलवायु है। इसी तरह मिट्टियाँ भी तरह-तरह की हैं। आज भी देश के सकल घरेलू उत्पाद का करीब 32 प्रतिशत खेतीबाड़ी से जुड़ी 70 प्रतिशत आबादी के श्रम से पैदा होता है। यदि गाँवों में पीने का पानी, बिजली, शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य सेवाएँ हों तो गाँवों से शहरों की ओर पलायन का सिलसिला थमेगा। उस स्थिति में शहरों पर जनसंख्या का दबाव कम होगा और विभिन्न क्षेत्रों के संतुलित विकास की संभावनाएँ बढ़ेंगी। सिंचाई परियोजनाओं और अधिक उपज देने वाली किस्मों के फलस्वरूप पिछले लगभग तीस वर्षों में कृषि-उत्पादन दुगुना हो गया है, पर ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वांगीण विकास की तस्वीर घोर निराशाजनक है। खेतिहर मजदूरों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। देश के हर कोने में बहुत बड़ी संख्या में बंधुआ मजदूर मिल जायेंगे, जिनका 'श्रम' किसी-न-किसी जमींदार या साहूकार के पास गिरवी है। कुल खेतिहर बंधुआ मजदूरों में से 60 प्रतिशत अनुसूचित जातियों तथा 17 प्रतिशत आदिवासी परिवारों के हैं।

3. आदिवासी और पहाड़ी क्षेत्रों के विकास की समस्या (Problem of the Development of Tribal and Hill Areas)—आदिवासी और पहाड़ी क्षेत्र आज भी अन्य प्रदेशों की अपेक्षा बहुत पिछड़े हुए हैं। बिहार, मध्य प्रदेश और उड़ीसा के आदिवासी क्षेत्रों के लिए 1971-72 में 'आरंभिक परियोजना' (Pilot Project) नामक एक विशेष कार्यक्रम शुरू किया गया। आठवीं योजना का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य यह था कि "गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे जितने भी अनुसूचित जातियों के व्यक्ति हैं, उनमें से ज्यादा-से-ज्यादा लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके।" परंतु आदिवासी क्षेत्र आज भी शोषण का शिकार हैं। वनों पर आदिवासियों के परंपरागत अधिकार समाप्त हो गए हैं और उनकी अधिकांश भूमि महाजनों के चंगुल में है। जंगल और आदिवासियों के बीच आदि काल से ही एक अटूट संबंध है, क्योंकि जंगलों में वे कंदमूल, फल-फूल, शहद, जड़ीबूटियों और पशुओं के लिए चारा प्राप्त करते हैं। परंतु आज वही आदमी जंगलों में घूमता है तो उसे सजा दी जाती है। अधिकांश आदिवासी वनश्रमिक बनने को मजबूर हो गए हैं और उन्हें उनके श्रम का उचित मुआवजा नहीं मिलता। वे अपने शरीर, स्वास्थ्य और कार्यक्षमता को संतुलित रखने के लिए आवश्यक भोज्य पदार्थ भी ग्रहण नहीं कर पाते हैं।

पर्वतीय क्षेत्र में विकास योजना की आवश्यकता पर बार-बार बल दिया गया है। वनों की कटाई तथा भूक्षरण पर्वतीय क्षेत्र की मुख्य समस्या है। इन दो समस्याओं की वजह से जल स्रोत सूखते जा रहे हैं और चारे, ईंधन तथा वन्य उत्पादों में गिरावट आई है। इसके साथ ही बांधों और मध्यम उद्योगों के अनियंत्रित विकास के कारण पर्वतीय

क्षेत्रीय असंतुलन वाले प्रदेश एक अजीब 'वृषक' (vicious circle) में फँसे हैं। इन राज्यों की 'आर्थिक संरचना' बौद्धिक कमजोरी है, इसलिए वहाँ उद्योगपति 'निवेश' से कतराते हैं। विद्युतीकरण, सड़कों, बाजारों और विदेशी संस्थाओं के अभाव के कारण वहाँ नयी औद्योगिक इकाइयाँ खड़ी नहीं की जाती और क्योंकि ऐसा नहीं होता,

है। इस प्रकार निरंतर शोषण का क्रम चलता रहता है।
 आदिवासी इलाकों में जाते हैं तो जनजीवन से जुड़ने की बजाए साहूकारों, महजनों और ठेकेदारों का पक्ष लेने लगते एक बड़े हिस्से की उसके अधिकारों से वंचित रहकर ही पूरे ही सकते हैं। ये लोग जब प्रशासक बनकर गाँवों या अधिकारों और आगमदह विदेशी का अत्यन्त बन चुका है। इस वर्ग के अपने कुछ निहित स्वार्थ हैं जो समाज के हैं। जिन लोगों के हाथ में राजनीतिक सत्ता है, वे समाज के 'विशिष्ट वर्ग' में संबंध रखते हैं। यह वर्ग विशिष्ट

वर्तुष, राजनीतिक इच्छा-शक्ति की कमी के कारण भी बहुत-से विकास कार्यक्रम लागू नहीं किए जा सके (Innovation) व नयी तकनीक की ग्रहण करने में विवशकते हैं, पीछे रह जाते हैं।
 परिश्रमी प्रवृत्ति का बड़ा हाथ है। दूसरी ओर वे प्रदेश वहाँ के निवासी अज्ञान या आलस्य के कारण 'नवपरिवर्तन' भी किसी तरह कम नहीं। जैसा कि हम जानते हैं, पंजाब के आर्थिक विकास में वहाँ के निवासियों की साहसी और

तृतीय, उत्पादन में जहाँ पूंज या औजार की महत्ता है, वहाँ मानव-पूँजी (Human Capital) की महत्ता
 दौरान होने वाली हिंसा में सबसे ज्यादा लोग बिहार में ही मरे।
 की प्रक्रिया पूरे देश में चल रही है, लेकिन 1999 के संसदीय चुनाव और वर्ष 2000 के विधानसभाई चुनावों के टटोला। इस तरह से उन्हीं अपने संवैधानिक दायित्व का ठीक से पालन नहीं किया।" राजनीति के अपराधीकरण करने से पहले राज्यपाल ने लोकतांत्रिक सरकार के गठन के अंतिम संभव विकल्प-सरन में शक्ति परीक्षण-को नहीं में इलाहाबाद हाईकोर्ट ने 19 दिसम्बर, 1996 के अपने एक फैसले में यह कहा कि "राष्ट्रपति शासन की विफलता नहीं बन पाया है। यहाँ तक कि राज्यपाल की भूमिका भी विवादरूप हो गई है। उत्तर प्रदेश की घटनाओं के संदर्भ सक्ती है। आधिकांश राज्यों में राजनीतिक अस्थिरता और नीतियों की आपसी फूट की वजह से प्रशासन कार्यक्षमता सरकार जिसकी सारी शक्ति अपने की बजाए रखने में ही खर्च हो जाती है, विकास-कार्यों की ओर कैसे ध्यान दे है। राज्यों में दल-बदल और सरकारी के उथल-पुथल से विकास-कार्य को हानि पहुँचती है। कोई भी द्वितीय, क्षेत्रीय असंतुलन के लिए काफी सीमा तक राजनीतिक और प्रशासनिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी

इस प्रकार अर्थव्यवस्था में स्थितिकारी दबावों को बढ़ाते हैं।"
 ऐसे सुधारवादी उपाय... ग्रामीण विधियों की दशा पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते और वे वास्तव में अनुत्पादक हैं और कि "संपत्ति संबंधों (Property relations) और सामाजिक एवं राजनीतिक ढाँचे में आमूल परिवर्तन किए बिना, के पक्ष में माई दिए गए और इन्होंने इन लोगों को हथिया लिया।" माक्सवादी लेखकों ने तो यह भी कहा है दंतवाला (Dantwala) ने कहा है, "योजनाओं के अधिकतर लाभ राजनीतिक प्रभाव वाले समृद्ध किसानों प्रथम, विकास योजनाओं का लक्ष्य उत्पादन और योजना में वृद्धि लाना था, पर जैसा कि प्रसिद्ध अर्थशास्त्री

की को गई। फिर भी, भारी क्षेत्रीय विषमताएँ विद्यमान हैं, जिनके लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं-
 योजना की ज्यादा सुविधाएँ उपलब्ध रही। आजादी के बाद देश के सर्जित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता महसूस हो गए थे जैसे मुम्बई (बॉम्बे), कलकत्ता और चेन्नई और निरवय ही इन स्थानों पर रहने वाले लोगों को शिक्षा व प्रदेशों का विकास किया जिनकी उन्हे आवश्यकता थी। समुद्र के किनारे बड़े-बड़े औद्योगिक नगर विकसित क्षेत्रीय असमानताओं के लिए काफी सीमा तक ब्रिटिश शासनकाल की नीतियाँ जिम्मेदार हैं। अंग्रेजों ने उन

क्षेत्रीय असंतुलन के कारण (Causes of Regional Imbalances)

आशंका है।
 कम होती जा रही है, क्योंकि हरित क्षेत्र प्रायः नष्ट होता जा रहा है। इससे जल स्रोतों के लुप्त हो जाने की तथा आवास जैसी सेवाओं की दृष्टि से पर्वतीय क्षेत्रों का विकास निदान असंतीषजनक है। पर्वतीय क्षेत्रों में हिम परतें हिमचल प्रदेश, मणिपुर और त्रिपुरा ये ऐसे राज्य हैं जिनमें ये पर्वत तथा समीपवर्ती शहर स्थित हैं। पंच जल, विद्युत प्रदेशों में पर्वतारोह संवर्धी समस्तार्थ पैदा हुई है। असम, जम्मू व कश्मीर, नागालैण्ड, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल,

नीचे

संवार

इसलिये ये क्षेत्र और पीछे रह जाते हैं। अभिप्राय यह है कि विकसित प्रदेश और उन्नत होते जाते हैं, जबकि गरीब इलाके और पीछे धकेल दिये जाते हैं।

क्षेत्रीय विषमताओं के परिणाम (Consequences of Regional Disparities)

नोट

1. क्षेत्रीय असंतुलन से तनाव बढ़ता है (Regional Imbalances create Tensions)—क्षेत्रीय असंतुलन ने तनाव को जन्म दिया है। उत्तर-पूर्वी भारत के क्षेत्र—असम, त्रिपुरा, मणिपुर, नागालैंड और मिजोरम—काफी लंबे असें तक आंदोलन की गिरफ्त में रहे हैं। मिजोरम में हिंसक घटनाएँ भी हुईं। त्रिपुरा में 'जनमुक्ति संगठन सेना' ने स्वतंत्र त्रिपुरा का नारा बुलंद किया। नागालैंड में विद्रोह का स्वर अब शांत है, पर नागा जाति को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ना जरूरी है। संथाल परगना और छोटा नागपुर वनवासियों के जुझारू आंदोलन के रणस्थल रहे हैं।

2. राष्ट्रीय एकीकरण में बाधा पड़ी है (It hampers the process of National Integration)—क्षेत्रीय असंतुलन से एकीकरण की प्रक्रिया भी प्रभावित होती है। छोटे और पृथक् राज्यों की माँग को हम बुरा नहीं कहेंगे, पर भारतीय संघ से अलग हो जाने की धमकी निश्चय ही एक राष्ट्रविरोधी कृत्य है। ऐसी प्रवृत्तियों पर काबू पाने के लिए यह जरूरी है कि जो प्रदेश पिछड़े हुए हैं वहाँ संचार सेवाओं, आर्थिक विकास व कृषि-संबंधी कार्यक्रमों में तेजी लाई जाए। जैसा कि जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "भारत एक होना चाहिए, इस आशय के केवल प्रस्तावों के पास कर देने से तो भारत एक हो नहीं सकता। हमें यहाँ मानव समूह से भुगतना है। केवल प्रस्तावों के पास कर देने से लोगों के हृदय में परिवर्तन नहीं हो सकता।"

3. केन्द्र और राज्यों के बीच तनाव (Tension between the Centre and States)—क्षेत्रीय असंतुलन से केन्द्र और राज्यों के बीच कटुता पैदा हो सकती है। कभी-कभी एक ही राज्य में रहने वाले विभिन्न जनसमुदायों के बीच विवाद उठ खड़े होते हैं।

4. क्षेत्रीय दलों का उभार (Emergence of Regional Parties)—यह भी हो सकता है कि राष्ट्रीय दलों का दबदबा कम हो जाए और क्षेत्रीय दल सर्वोत्तम बन बैठें। फिलहाल भारतीय राजनीति में एक बुनियादी परिवर्तन यह आया है कि क्षेत्रीय दलों का दबदबा बढ़ रहा है। इसीलिए यह कहा जाने लगा है कि अब एक पार्टी के शासन का युग खत्म हो रहा है और साझा सरकारों का वक्त आ गया है। इससे केन्द्र में राजनीतिक अस्थिरता बढ़ती है। खतरा यह है कि क्षेत्रीय दलों की साझा सरकारों से कहीं केन्द्र इतना अशक्त न बन जाए कि भारत का कोई अखिल भारतीय चेहरा ही काफी न बचे। जिन दलों को अखिल भारतीय दलों की मान्यता मिली हुई है, उनका भी क्रमशः क्षेत्रीयकरण हो गया। तेरहवीं लोकसभा में बहुजन समाज पार्टी के कुल 14 सांसद हैं, जो सभी उत्तर प्रदेश से जीतकर आये हैं। इसी प्रकार मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी बंगाल, केरल और त्रिपुरा तक ही सिमट कर रह गई है।

5. आर्थिक विषमताएँ बढ़ती हैं और देश का समुचित विकास नहीं हो पाता (It leads to economic disparities and harms the growth of the Nation)—देश के जिन भागों में उद्योग और व्यापार की अधिक प्रगति हुई है, वहाँ पर रोजगार के ज्यादा साधन उपलब्ध हैं। शेष स्थानों में रहने वाले लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा नहीं उठ पाता। इससे विषमताएँ बढ़ती हैं। असंतुलन के कारण भारत संतुलित विकास के लाभों से वंचित रहा है। अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग तरह के संसाधन, भौतिक पदार्थ तथा अन्य चीजें उपलब्ध हैं। उनका किस तरह से इस्तेमाल किया जाए, यह एक विचारणीय विषय है।

क्षेत्रीय असंतुलन दूर करने के उपाय (Ways and Means to curb Regional Imbalances)

क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने के लिए इन उपायों का सहारा लेना होगा—

1. अविकसित क्षेत्रों के विकास को उच्च प्राथमिकता देनी होगी। लघु उद्योगों के साथ-साथ मध्य उद्योगों पर भी जोर देने की जरूरत है। इन क्षेत्रों के विकास के लिए आधारभूत सुविधाओं (बिजली, सड़क, परिवहन, दूरसंचार और रेलवे) का विस्तार जरूरी है। आधारभूत ढाँचे को मजबूत बनाने पर ही अविकसित क्षेत्रों में देशी-विदेशी पूँजी को आकर्षित किया जा सकता है। विदेशी उद्यमी भारत में तभी अपनी पूँजी लगाना चाहेंगे जबकि उसी तरह का वातावरण उन्हें भारत में भी मिले जिस वातावरण में वे अपने देशों में काम कर रहे हैं।

2. नौवीं योजना में कृषि क्षेत्र में 4.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। नई राष्ट्रीय कृषि नीति उस उद्देश्य से तैयार की गई कि बढ़ती आबादी हेतु आवश्यक खाद्य पदार्थों की पूर्ति सुनिश्चित हो सके। साथ ही, किसानों को उनकी उपज का लाभदायक मूल्य दिखाने की व्यवस्था की जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार पैदा करने के लिए ग्रामीण उद्योगों को बढ़ाने पर विशेष जोर दिया गया। कृषि नीति ऐसी होनी चाहिए कि किसान परिवारों को पूरे साल रोजगार मिलता रहे।

3. पर्वतीय क्षेत्रों के संतुलित विकास के लिए निम्नलिखित बातों को सुनिश्चित किया जाना चाहिए—
(i) विद्यमान वनों की प्रभावी ढंग से सुरक्षा की जाए; (ii) वन्य भूमि पर किसी भी कार्य के लिए कब्जा करने की अनुमति न दी जाए, तथा (iii) वन्य भूमि का हस्तांतरण गैरवन्य प्रयोजनों के लिए न किया जाए, चाहे वह प्रयोजन कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो। “पर्वतीय क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व कम है और ग्राम छोटे-छोटे हैं तथा लंबी दूरी पर छितरे हुए हैं। ऐसे स्थानों पर कुली, मजदूरों तथा खच्चरों के लिए पगडंडियाँ बनाकर उनका समुचित रख-रखाव किया जाना चाहिए।”

4. उत्पादन में जहाँ यंत्र और औजार की महत्ता है, वहाँ ‘मानव पूंजी’ (human capital) का महत्त्व भी कम नहीं है। इसलिए संचार साधनों के माध्यम से जन-जागरण को बढ़ावा देने की जरूरत है। यह जरूरी है कि लोग बिना किसी झिझक के नयी तकनीक और ‘नव-परिवर्तन’ (innovation) का स्वागत करें।

5. राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी और अधिकारियों की लापरवाही के कारण बहुत-से विकास कार्यक्रम प्रभावी ढंग से लागू नहीं किये जा सके हैं। इसलिए प्रशासन को चुस्त बनाने की जरूरत है।

1.4 सामाजिक नीति एवं सामाजिक विकास का संबंध

(Relationship between Social Policy and Social Development)

विकास के लक्ष्यों को भली-भांति समझा जा सकता है। संक्षेप में, विकास के निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये गये—

प्रथम, राष्ट्रीय आय में वृद्धि की जाए, ताकि प्रति-व्यक्ति औसत आय बढ़े। इस बात पर विशेष बल दिया गया कि यह बुद्धि ‘दीर्घकालिक’ हो यानी एक लंबी अवधि तक बनी रहे।

दूसरे, बेरोजगारी, जो बड़े व्यापक रूप से फैली हुई है, समाप्त नहीं तो कम अवश्य हो जाए। जो लोग काम करना चाहते हैं, उन्हें उनकी क्षमता के अनुसार काम मिले। मौसमी बेरोजगारी (seasonal unemployment) और अल्प-रोजगार (underemployment) के कुप्रभावों को सीमित किया जाए।

तीसरे, कृषि-सुधार के लिए भूमि सुधार कानून बनाए जाएँ और छोटी-छोटी जोतों की चकबंदी की जाए। सिंचाई सुविधाओं की कमी के कारण भारतीय कृषि प्रकृति पर निर्भर रही है। इसलिए सिंचाई सुविधाओं का विस्तार जरूरी था। खाद्यान्न फसलों के उत्पादन में वृद्धि की जरूरत थी, जिससे कि अनाज का आयात न करना पड़े।

चौथे, औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के लिए ‘नयी तकनीक’ (new technology) का सहारा लिया जाए। पर इस क्षेत्र में पूरी तरह से पश्चिम की नकल करना बहुत ज्यादा उपयोगी नहीं था। हमें ऐसी तकनीक की जरूरत थी जो ‘आधुनिक’ होने के साथ-साथ भारत के परंपरागत चरित्र से मेल खाती हो। औद्योगिक विकास के लिए ‘पूँजी-निर्माण’ (capital formation) बहुत जरूरी था। इस संबंध में यह निर्णय भी काफी महत्वपूर्ण था कि “साधनों को कहाँ तथा किस मात्रा में लगाया जाए।” दूसरे शब्दों में, पूँजी निवेश के लिए ‘प्राथमिकताओं’ (priorities) का निर्धारण जरूरी था।

पाँचवें, जनसंख्या-वृद्धि की दर नियंत्रित की जाए। प्रसिद्ध समाजवादी विचारक अच्युत पटवर्धन के शब्दों में, “मानव के बालक की प्रकृति पशु की संतान से अलग होती है। पशु-पक्षियों की संतान दो-चार दिन में और कभी-कभी घंटों में आत्म-निर्भर होने लगती है। मानव-शिशु को जन्मतः अपनी असहायता की वजह से माता के वात्सल्य, भरण-पोषण और शिक्षा की आवश्यकता है।” बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण मानव-शिशु को यदि विकास

संसार की समस्याओं से निपटने के लिए निम्नलिखित नीतियाँ अपनाई गईं—
 ऊपर हमने मुख्य-मुख्य समस्याओं और विकास के लक्ष्यों पर प्रकाश डाला है। आजादी मिलने के बाद इन समस्याओं से निपटने के लिए निम्नलिखित नीतियाँ अपनाई गईं—

1.5 समस्याओं के समाधान के लिए अपनाए गए तरीके
(Methods Employed to deal with the Problems)

उठे, एक ऐसा संविधान बनाया जाए जिससे कि देश की स्वतंत्रता और अखंडता की रक्षा की जा सके और हर नागरिक को न्याय व विकास के अवसर प्राप्त हों। अधिशा, अज्ञान और छुआछूत का उन्मूलन किया जाए तथा फलदाईं वर्गों के शैक्षणिक और आर्थिक विकास पर विशेष बल दिया जाए।

सामाजिक-आर्थिक विकास का प्रारूप तैयार करने के लिए 1950 में योजना आयोग (Planning Commission) की नियुक्ति की गई और 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना का शीर्षांश हुआ। योजनाबद्ध विकास के करीब 60 वर्ष पूरे हो चुके हैं। अलग-अलग योजनाओं में अलग-अलग बलों पर जोर (emphasis) दिया गया। उदाहरण के लिए, 1951 में देश को बड़े पैमाने पर खानदान का आयात करना पड़ा, इसलिए पहले पंचवर्षीय योजना में सिचाई और बिजली परियोजनाओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। इसके ठीक विपरीत दूसरी योजना में आधारभूत और भारी उद्योगों के विकास पर ज्यादा बल दिया गया। पर कुल मिलाकर नियोजन के लक्ष्य इस प्रकार हैं— विकास-दर में वृद्धि, सामाजिक न्याय, आत्म-निर्भरता, तथा रोजगार अवसरों में वृद्धि। औद्योगिक विकास की गति को तेज करके और खेती की पैदावार बढ़ाकर रोजगार अवसरों में वृद्धि की जा सकती है। देहाती क्षेत्रों में रोजगार बढ़े यह जरूरी है। 'सामाजिक न्याय' का अर्थ है कि "विकास का अधिकारिक लाभ समान के अपेक्षित कम साधन प्राप्त वर्गों को मिले।"

निम्न अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)
 निम्न अर्थव्यवस्था के अंतर्गत उत्पादन के दो क्षेत्र होते हैं—सरकारी क्षेत्र (public sector) तथा निजी क्षेत्र (private sector)। सरकारी क्षेत्र में वे उद्यम (enterprises) शामिल होते हैं जिनका स्वामित्व और नियंत्रण राज्य के हाथों में हो, जबकि निजी क्षेत्र के प्रतिष्ठान निजी तौर पर संचालित होते हैं। 1951 में रेलवे, डाक, गार, आदि के अलावा केवल पाँच ही गैर-विभागीय सरकारी उद्यम थे, पर 1998 में केन्द्रीय उद्यमों की संख्या 240 हो गई, जिनमें 2,04,054 करोड़ रुपये की पूँजी लगी थी। ये उद्यम अब इस्पात, तांबा, भारी और हल्के इंजीनियरी उत्पाद, उर्वरक, आधारभूत रसायन, औषधियाँ, खनिज, पेट्रोलियम की बस्तुएँ, रेल इंजन, विमान और जहाज जैसी विविध चीजें बनाते हैं। सरकारी क्षेत्र के समर्थन में सबसे बड़ी दलील यह दी जाती है कि जिन संस्थानों पर सरकार का स्वामित्व होता है वे किसी 'व्यक्ति-विशेष' की संपत्ति न होकर समूह समान की संपत्ति होते हैं। उनका संचालन 'लोकहित' में किया जाता है, जिससे आर्थिक विषमताएँ घटती हैं।

सरकारी क्षेत्र में मुख्यतः भारी उद्योग खड़े किए गए, जिनमें अधिक पूँजी की जरूरत थी और जिनमें उत्पादन शुरू होने में औसत से ज्यादा समय लगता है। सरकारी उद्योगों का एक मात्र लक्ष्य मुनाफा कमना ही नहीं था। पर निरंतर घाटे की स्थिति भी ग्रहण का लक्षण नहीं मानी जाती। सरकारी उद्योगों की आलोचना का सबसे बड़ा मुद्दा यही है कि इन्होंने कोई विशेष लाभ नहीं कमाया। 1991 में घोषित नयी औद्योगिक नीति इसीलिए 'निजीकरण' (privatization) पर विशेष बल देती है। निम्न अर्थव्यवस्था अब भी रहेगी, पर उसका स्वरूप बदल गया है। सार्वजनिक क्षेत्र के कई प्रमुख इकाइयों के शोषण विधीय संस्थाओं, आम नागरिकों और श्रमिकों को बचे जा रहे हैं। रक्षा उद्योग, आणविक ऊर्जा और इसी तरह के कुछ उद्योगों को छोड़कर शोष समी उद्योग निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए।

की समुचित सुविधाएँ न मिलें तो यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है। साथ ही, संपत्ति के दोषपूर्ण वितरण को समाप्त करना संवार

नीट

संवार

जहाँ तक 'सामाजिक-आर्थिक न्याय' (Socio-economic Justice) का प्रश्न है, भारत की उपलब्ध बैंक और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के सहयोग के बिना यह संभव नहीं है।

का विकास कैसे हो सकता है? विद्युत संस्थान, सड़क और ऊर्जा, आदि क्षेत्रों में भारी निवेश की जरूरत है। विश्व (structure) में बदलाव अनिवार्य है। बिजली और तेल का उत्पादन घटा है। इन साधनों के अभाव में उद्योगधंधों देश का औद्योगिक विकास अवश्य हुआ है, पर और आगे विकास के लिए आधारभूत संरचना (Infra-structure) को मजबूत करने की जरूरत है।

के फलस्वरूप खाली, कई और जूट के उत्पादन में भारी प्रगति हुई। भारत को खाली में आत्मनिर्भर बनाने के लिए उत्पादन और औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में भारत की उपलब्ध उत्पादक शक्ति है। नयी कृषि नीति (An Evaluation of Development Activities)

का लागू किया जा सकता है। भारतीय संविधान ने मौलिक अधिकारों की कवच घोषणा ही नहीं की, बल्कि यह व्यवस्था भी की गई कि अधिकारी अक्सर जीवन व्यतीत करने की आजादी है। अल्पसंख्यकों की अपनी भाषा व संस्कृति बनाए रखने का अधिकार केसले देश के सभी न्यायालयों और अधिकारियों के लिए मान्य है। सभी नागरिकों को अपने धार्मिक विश्वासों के संरक्षकों की शक्तें बड़ी व्यापक हैं, सभी देशवासियों के लिए एक ही नागरिकता है और उच्चतम न्यायालय के संविधान-निर्माता देश की कमजोरियों से परिचित थे। इसलिए उन्होंने केंद्रीय सरकार को मजबूत बनाया।

संवैधानिक व्यवस्थाएँ (Constitutional Provisions)

को धीरे-धीरे "खुले बाजार की व्यवस्था" में बदला जा रहा है। और निर्यात-प्रोत्साहन जैसे लाभ जुड़े हैं। 1991 के बाद की घटनाओं से ऐसा लगता है कि "निश्चित अव्यवस्थाएँ" औद्योगिक नीति के अंतर्गत विदेशी पूंजीनिवेश का स्वागत किया गया है, क्योंकि इसके साथ टेक्नोलॉजी हस्तांतरण सके। कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों को छोड़कर शेष सभी उद्योगों को औद्योगिक लाइसेंसों से मुक्त कर दिया गया है। नयी नीति का विकास की पूरी छूट दी गई ताकि उद्योगपति अपने उद्योगों को प्रतिस्पर्धी, अधिक कुशल और आधुनिक बना सके। और अंतर्राष्ट्रीय परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए 1991 में नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। उद्योगों किन्तु निजी उद्योगपतियों के लिए उपयुक्त क्षेत्र सुरक्षित रखा गया।" 1956 में इस नीति को संशोधित किया गया। उद्देश्य रखा गया। अर्थात् "औद्योगिक उपक्रम को जनहित के लिए राज्य द्वारा अधिग्रहण करने की प्बुक्ति की गई, स्वतंत्र भारत की औद्योगिक नीति सर्वप्रथम 1948 में घोषित की गई थी। इसमें 'निश्चित अव्यवस्थाएँ' का

औद्योगिक नीति (Industrial Policy)

विकास और नयी संरक्षण, जल संसाधन विकास तथा वनरोपण चरणाएँ विकास। नीति का संभावना वाले क्षेत्रों के लिए जो कार्यक्रम शुरू किए गये, उसकी कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं—भूमि प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, बिहार, और उड़ीसा में करीब 602 लाख हेक्टेयर भूमि की चकबंदी की जा चुकी है। सूखे कृषि की फायदेमंदी बनाने के लिए जलोढ़ की चकबंदी एक महत्वपूर्ण उपाय है। अभी तक महाराष्ट्र, उत्तर

विशेष संस्थानों के माध्यम से किसानों की काफी सहायता-सुविधाएँ मिलने लगी हैं। समितियों, भूमि विकास बैंक, व्यापारिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (Regional Rural Banks) और अन्य साक्षरता का विकास। विभिन्न एजेंसियों द्वारा कृषि-सहायता दिए जाने की व्यवस्था की गई है। अब सहकारी साख निधन बढ़ते-सी बाले शामिल थीं, जैसे कृषि-विकास, भूमिहीनों के लिए उचित मजदूरी, जन-स्वास्थ्य, शिक्षा और 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme) चालू किया गया, का विस्तार किया गया तथा भूमि सुधार कानूनों के द्वारा जमींदारी प्रथा के उन्मूलन की कोशिश की गई। अक्टूबर स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कृषि के शीघ्र विकास के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। निम्नलिखित सुविधा

कृषि नीति (Agricultural Policy)

नीति

संवाद

प्रत्येक परिवर्तन प्रगति नहीं है—प्रगति सामाजिक परिवर्तन का ही एक अंग है, लेकिन हम प्रत्येक परिवर्तन को प्रगति नहीं कह सकते, क्योंकि बिना किसी उद्देश्य की पूर्ति किए भी परिवर्तन सम्भव है। इसके अतिरिक्त जहाँ परिवर्तन किसी भी दिशा में हो सकता है वहाँ प्रगति के लिए आवश्यक है कि परिवर्तन इच्छित दिशा की ओर हो ही। इस प्रकार प्रगति सामाजिक नियोजन का पर्यावर्ती रूप है। सामाजिक परिवर्तन से समाज को लाभ भी हो

का अर्थ मान्यता प्राप्त लक्ष्यों की ओर बढ़ना है और लक्ष्य केवल मनुष्य ही निश्चित करता है।

6. **केवल मनुष्य से सम्बन्धित—**प्रगति का सम्बन्ध केवल मनुष्य से है, किसी अन्य प्राणी से नहीं। प्रगति है। समाज में वृद्धित लक्ष्यों की पूर्ति तभी सम्भव है जब हम जागरूक होकर प्रयत्न करें।

5. **स्वचालित नहीं—**प्रगति स्वचालित नहीं है बल्कि मनुष्य के सक्रिय प्रयास और परिश्रम पर आधारित को नहीं कह सकती। प्रगति तभी होती है जब सामाजिक परिवर्तन आधिकारण लोगों के हित में हों।

4. **सामूहिक जीवन से सम्बन्धित—**प्रगति किसी एक या कुछ व्यक्तियों के अनुहार होने वाले परिवर्तन में सम्पन्न होती है।

3. **निश्चित लक्ष्य—**प्रगति के लिए एक निश्चित लक्ष्य होना जरूरी है। इस लक्ष्य की प्राप्ति से ही समाज प्रगति का मापपट्ट सामाजिक मूल्य द्वारा स्वीकृत लक्ष्यों की ओर परिवर्तन कहा जाता है।

2. **प्रगति तुलनात्मक है—**प्रत्येक समाज में प्रगति का अर्थ एक-सा नहीं होता। कुछ समाज आध्यात्मिक उन्नति का वास्तविक प्रगति मानते हैं तो दूसरे समाज धार्मिकता को प्रगति का आधार मानते हैं। इस प्रकार प्रगति का मापपट्ट सामाजिक मूल्य द्वारा स्वीकृत लक्ष्यों की ओर परिवर्तन कहा जाता है।

1. **वांछित दिशा की ओर परिवर्तन—**जब परिवर्तन वांछित दिशा की ओर होता है तभी प्रगति है, अन्यथा नहीं। परिवर्तन समाज की दृष्टि में लाभकारी भी हो सकता है और हानिकारक भी। किन्तु प्रगति सदा लाभदायक तत्त्व लिए होती है। इसके पीछे एक निश्चित लक्ष्य होता है और जब समाज उस लक्ष्य की ओर बढ़ता है तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।

समझ सकते हैं—

विशेषताएँ—सामाजिक प्रगति के अर्थ को हम इसकी निम्नलिखित विशेषताओं के माध्यम से अच्छी तरह समझ सकते हैं—

इस विषय पर परिभाषाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि समाज के ऐच्छिक और सुव्यवस्थित परिवर्तन का मूल्य। 1. विवेकपूर्ण ढंग प्रस्तुत करता हो।

निहित हो। " इसी प्रकार निम्नार्थ की दृष्टि में, "प्रगति का अर्थ उस दिशा में होने वाला विकास है जो सामाजिक निम्नकार्य के मतानुसार, "प्रगति का अर्थ अच्छाई के लिए होने वाला परिवर्तन है जिसमें मूल्य-निर्धारण का तत्व अथवा मान्यता प्राप्त दिशा में होने वाला वह परिवर्तन है, किसी भी दिशा में होने वाला परिवर्तन नहीं।" अर्थात् एवं के केवल वस्तुपरक विचार पर आधारित नहीं होता। " लक्ष्य के शब्दों में, "प्रगति एक परिवर्तन है, लेकिन यह इच्छित की ओर जाने वाली दिशा से होता है, और किसी ऐसे आदर्श पर गतबन्ध से होता है जिसका विचार कार्यपरत शक्तियों

मकाइवर एवं पत्र ने लिखा है कि "प्रगति का तात्पर्य केवल दिशा से नहीं होता, बल्कि किसी अन्ततम लक्ष्य और अधोगति या परिवर्तन का निर्णय विभिन्न व्यक्तित्व-समूह अपनी मानसिकता एवं अनुभव के अनुसार करते हैं। लक्ष्य होना आवश्यक है। इस लक्ष्य का निर्माण प्राकृतिक शक्तियों द्वारा न होकर समाज के मूल्यों से होता है। प्रगति में, प्रगति में हम अच्छे-बुरे का, उसके मूल्यांकन का निर्णय करते हैं। प्रगति में विकास की दिशा का कोई न कोई जाति तब हम 'प्रगति' शब्द का प्रयोग करते हैं। प्रगति में आदर्शात्मक मूल्यों का भाग निहित रहता है। दूसरे शब्दों में, प्रगति में प्रगति का तात्पर्य केवल दिशा से नहीं होता, बल्कि किसी अन्ततम लक्ष्य

सामाजिक नीति एवं सामाजिक विकास

अनुसूचित जातियों और जनजातियों का एक बहुत बड़ा हिस्सा वहाँ रहता है।

के बिना राष्ट्रीय गरीबी नहीं मिटेगी। नये कामों का विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक किया जाना चाहिए, क्योंकि 38 लाख अकेले बिहार के हैं। इस सूची में परिवर्तन बंगाल के 4 लाख शामिल किए गए हैं। गांवों के विकास रहे हैं। केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा वर्ष 1999-2000 में तैयार की गई 100 सर्वोपयोगी निर्धन जिलों की सूची नीचे गुजर-बसर कर रहे परिवारों की संख्या घटी है, पर आज भी करीब 36 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे रहे

क्षेत्रीय नीतियाँ एवं सामाजिक
संसार

फिती भी देश का संविधान 'सूच्य' में नहीं बनाया जाता। उस पर देश की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ, इतिहास, भौगोलिक स्थिति और संविधान-निर्माताओं के आदर्शों का प्रभाव पड़ता है। इन सब बातों को जाने बिना हम संविधान का मूल्यांकन कर ही नहीं सकते। संविधान-निर्माता जिन विचारों व आदर्शों से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे, उसी को उनका दृष्टिकोण (perspective) कहेंगे। उसी से जुड़ा प्रश्न यह है कि समकालीन परिस्थितियाँ क्या थीं? संविधान-निर्माताओं को एक ऐसे देश के लिए संविधान बनाना था, जो विप्लव का सबसे बड़ा लोकार्जन है। देश में महाद्वी, जातीय और भाषाई भेदभावों के कारण राष्ट्रीय एकता का प्रश्न बहुत जटिल बना था। क्षेत्रीय या प्रादेशिक मामलों को भी अनसूना नहीं किया जा सकता था। संविधान-निर्माताओं की वैचारिक पृष्ठभूमि

(Constituent Assembly's Perspective on the Indian Policy)

भारतीय राज्यद्वयस्था के विषय में संविधान सभा का दृष्टिकोण

प्रमाण है।

और सामाजिक सुशुद्धि, आदर्शवाद, व्यावहारिक अनुभव, देश-भक्ति और विप्लवकल्याण की कामना का जीता-जागता फिफ। 26 जनवरी, 1950 के दिन नया संविधान लागू हो गया। भारतीय संविधान भारतीय नीतियों की राजनीतिक की भारत का प्रथम राष्ट्रपति चुनाव तथा सभा के 308 सदस्यों ने संविधान की 'अंतिम कानिषा' पर अपने हस्ताक्षर दिये। 24 जनवरी, 1950 को संविधान सभा का अंतिम अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में सभा ने डा. राजेंद्र प्रसाद एक वर्ष तक चला। 26 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा ने अंतिम रूप से संविधान पर अपनी अनुमति प्रदान कर जानी जा सकी। नवम्बर, 1948 में संविधान सभा ने पुनः उस मसौदे के ऊपर विचार किया। यह वाद-विवाद लगातार अंत में फरवरी, 1948 में संविधान का मसौदा प्रकाशित कर दिया गया ताकि उसके संबंध में जनता की प्रतिक्रिया के आधार पर संविधान का मसौदा तैयार किया। इस मसौदे के ऊपर संविधान सभा में विस्तृत वाद-विवाद हुआ। मसौदा-समिति (Draft Committee) ने उपरोक्त सभी समितियों की रिपोर्ट और सभा में हुए वाद-विवाद

संविधानिक मामलों में सरकार के मुख्य सलाहकार थे।

एक समिति बनाई जिसके अध्यक्ष डा. भीमराव आम्बेडकर थे। समिति में कुल सात सदस्य थे। बी.एन. राव (reports) पर वाद-विवाद हुआ। 29 अगस्त, 1947 को सभा ने संविधान का मसौदा (draft) तैयार करने के लिए विषयों से संबंधित सभी बातों पर विचार करके संविधान सभा को अपनी रिपोर्ट भेज दी। सभा में इन प्रतिवेदनो जाने वाली रियायतों और उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयों के गठन पर विचार किया। समितियों ने अपने-अपने शक्तियों के विवरण की योजना की। कुछ उपसमितियाँ भी बनाई गईं जिन्होंने मूलभूत अधिकारों, अल्पसंख्यकों की शक्ति से विचार-विमर्श किया-केंद्रीय सरकार का ढाँचा, राज्यों की शासन-व्यवस्था तथा केंद्र और राज्यों के बीच देश स्वतंत्र हो गया। सुविधा की दृष्टि से संविधान सभा ने कई समितियाँ बनाईं, जिन्होंने निर्णयित विषयों पर बड़ी

संविधान का निर्माण (Making of the Constitution)

(Values Underlying Social Policy and Planning based on the Constitutional Provision i.e., Directive Principles of State Policy and Fundamental Rights and the Human Rights)

1.6 सामाजिक नीति एवं योजना में निहित मूल्य, मौलिक अधिकार, राज्य के नीतिनिर्देशक सिद्धांत, मानव अधिकार

सकता है और हानि भी, लेकिन प्राति एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति करती है जिससे सर्वेव लागू हो पहुँचता है। प्राति की दिशा भी सामाजिक मूल्यों और आदर्शों के अनुसार निश्चित होती है। वास्तव में सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है, जिसका रूप सर्वेव एक-सा नहीं रहता। इसके रूप और इसकी मात्रा को स्पष्ट करने के लिए अनेक शक्तों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें परिवर्तन, प्रक्रिया, उद्वेगकाम, प्राति आदि मुख्य हैं।

संघर्ष
क्षेत्रीय नीतियाँ एवं सामाजिक नीति

इस्तेमाल कर सकती है।

से राज्य-सरकार केन्द्र पर आश्रित है। आपात स्थिति की घोषणा हो जाने पर केंद्रीय सरकार असामान्य शक्तियाँ का प्रयोग या बर्तन कर सकती है; (iii) अखिल भारतीय सेवाओं व राज्यपालों पर केन्द्र का नियंत्रण है; तथा (iv) वितीय दृष्टि शक्तियाँ बहुत व्यापक हैं; (ii) संसद किसी नवीन राज्य का निर्माण कर सकती है और किसी भी राज्य का आकार, नाम, 'संघवार', पर 'केंद्रीकृत संघवार', का लेबल लगा दिया गया है, इस प्रकार है : (i) केंद्रीय सरकार को 'भारतीय संघवार को 'केंद्रीकृत संघवार' (Centralized Federalism) के नाम से पुकारा है। व लक्षण जिनके 'यूनिऑन' (Union of States) की संज्ञा दी गई है। इसलिए डॉ. कमल और मयूर (Kamal and Mayer) संविधान में कहीं भी 'केंद्रीकृत संघ' (संघ शासन) शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। पहले अनुच्छेद में भारत को 'राज्य' पर 'संघीय विशेषताओं' के बावजूद यह कहा जाता है कि "भारतीय संविधान की आत्मा एकतात्मक है।"

किणुगु है; तथा (iii) उच्चतम न्यायालय की संविधान की अंतिम व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त है। उदाहरण के लिए, (i) संविधान लिखित है; (ii) केन्द्र और राज्यों को पृथक-पृथक शक्तियाँ और अधिकार प्राप्त हैं। 'संघ शासन' (Federation) के नाम से जानी जाती है। संघीय शासन के सभी लक्षण संविधान में विद्यमान हैं। पारिस्थितिक के निर्माण को रोका नहीं जा सकता। फिर भी, संविधान-निर्माताओं ने जिस व्यवस्था की स्थापना की वह विचारों की समस्या को सुलझाने के लिए भी संघीय व्यवस्था ही उपयुक्त समझी गई। जैसा कि हम जानते हैं, (autonomous provinces) की स्थापना से उनकी 'पृथक राज्य' (पारिस्थितिक) की माँग समाप्त हो जाएगी। देशी अविभाज्य आबादी मुसलमानों की थी, इसलिए यह सोचा गया कि भारतीय संघ के अंतर्गत 'स्वायत्त प्रांतों' में संघीय व्यवस्था की कल्पना मुस्लिम सांख्यिकता को दृष्टि के लिए की गई थी। चौक कुंठ प्रांतों में—

2. संघीय शासन और शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना (Federal Polity with a strong Centre) पर शासन करता है जब तक कि उसे लोकसभा का विरोध प्राप्त रहे। है। इंग्लैंड की ही भाँति मॉन्ट्रैल, 'संसद के निचले सदन' (लोकसभा) के प्रति उत्तरदायी है और सभी तक देशी शासनतंत्र को भारतीय राज्यव्यवस्था का आधार बनाया। भारतीय संविधान ने केंद्रीय विधानमंडल का नाम संसद रखा। 'राज्य की धारणा' वास्तविकता से कोसों दूर है। इस तरह का राज्य आज के युग की आर्थिक, सैनिक व राजनीतिक चर्चाओं का सामना नहीं कर सकता। इसलिए उद्देश्य परियोजना के मांडल, मुख्य रूप से ब्रिटेन व अमेरिका के 'नरक, पटल, आजाद, राजद्र प्रसार और सभी महत्वपूर्ण संरक्षक इस बात पर सहमत थे कि गांधी जी की प्रयोग करनी।"

होगा। सभी आवश्यक अधिकार शान्तिशक्तियों के दायरे में होंगे। केंद्रीय सरकार कम-से-कम शक्तियों का कल्पना वाले राज्य में लोकतंत्र का विकास नीचे से ऊपर की ओर होगा; प्रत्येक गाँव स्वयं एक गणराज्य अधिकार दिए जाएंगे। इस प्रकार जैसा कि शंकर घोष (Shankar Ghose) ने कहा है, "महान्ता गांधी की पंचायत' होनी चाहिए। राष्ट्रीय पंचायत को केवल सुरक्षा, मुद्रा, विदेशी व्यापार और राष्ट्रीय उद्योगों को चलाने के बालक पंच करेंगे। मंडल पंचायतों के ऊपर जिलों और प्रांतों की पंचायतें होंगी और सबसे ऊपर एक 'राष्ट्रीय बहुल-सी पंचायतों को मिलकर एक 'मंडल पंचायत' बनायी जाए, जिसके सदस्यों का चुनाव साधारण मतदाता नहीं, प्रत्येक गाँव एक पूर्ण गणराज्य हो और उसका शासन गाम पंचायत चलाये। पंचों का चुनाव बालिंग शान्तिशक्ति करे। संसद का आधार गाम पंचायतें होंगी अथवा बालिंग शान्तिशक्ति पर आधारित संसद? महान्ता गाँधी चाहते थे कि किसी माँग की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। पर मुख्य प्रश्न यह था कि लोकतंत्र का स्वरूप क्या होगा? राजनीतिक हो, फिर भी वह अब तक की सर्वश्रेष्ठ शासन-प्रणाली है। इसलिए संविधान-निर्माता 'लोकतंत्र' के अलावा और 1. संघीय लोकतंत्र (Parliamentary Democracy)—लोकतंत्र में चाहे कितनी ही कर्मियाँ क्यों न

विशेषताओं (main features) को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है—

है। संविधान-निर्माताओं की व्यापक अवधारणाओं (broad perceptions) और संविधान की मुख्य संविधान की रचना की जो उदाहरण, लोकतंत्र, मिश्रित अर्थव्यवस्था और सामाजिक न्याय की भाँति पर आधारित (Ideological background) और देश की तात्कालीन समस्याओं का परिणाम यह निकला कि उद्देश्य एक ऐसे

नीट

सेवाएँ

संघीय नीतियाँ एवं सामाजिक

3. गणराज्य और सार्वभौम वयस्क मताधिकार (Republican System and Universal Adult Franchise)—संविधान सभा ने संविधान की प्रस्तावना में भारत को 'गणराज्य' (Republic) घोषित किया है। भारत एक 'गणतंत्र' है, क्योंकि भारत का राज्याध्यक्ष 'राष्ट्रपति' है जो पांच वर्ष की अवधि के लिए चुना जाता है। इस दृष्टि से हमारा संविधान इंग्लैंड की अपेक्षा अमेरिका से मिलता-जुलता है। इंग्लैंड एक लोकतंत्रीय देश तो है परंतु गणराज्य नहीं चूँकि वहाँ आज भी सम्राट का पद कायम है। भारत में राज्य का प्रधान कोई वंशानुगत राजा (hereditary monarch) नहीं, अपितु निर्वाचित राष्ट्रपति है। राष्ट्र के सभी पद बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिकों के लिए खुले हैं।

संविधान में यह भी कहा गया है कि "समस्त शक्तियों का स्रोत जनता है।" भारत की अशिक्षित जनता को 'मताधिकार' प्रदान करके संविधान-निर्माताओं ने काफी साहस का परिचय दिया। संविधान सभा के एक अत्यंत प्रभावशाली सदस्य अलादी कृष्णस्वामी अय्यर के शब्दों में, "वयस्क मताधिकार के सिद्धांत को अपनाकर संविधान सभा ने यह बता दिया कि सामान्य व्यक्ति की योग्यता और लोकतंत्र की सफलता में उसे भरपूर विश्वास है।"

4. मौलिक अधिकार और नीतिनिर्देशक सिद्धान्त (Fundamental Rights and the Directive Principles)—यह ठीक है कि मौलिक अधिकारों के वर्णन से ही अधिकारों की सुरक्षा नहीं हो जाती। जैसा कि हेराल्ड लास्की (Harold Laski) ने कहा है, "अधिकारों को बनाए रखने के लिए कानूनी संरक्षण से भी ज्यादा इस बात की जरूरत है कि नागरिकों में स्वाभिमान की भावना हो।" फिर भी लास्की स्वयं इस बात को स्वीकार करता है कि अधिकारों की रक्षा का एक महत्वपूर्ण उपाय यह भी है कि संविधान में उनका विस्तार से उल्लेख किया जाए तथा न्यायालय उनकी रक्षा करे। कांग्रेस बहुत लंबे समय से नागरिक अधिकारों की माँग करती आ रही थी। 1928 में प्रकाशित 'मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट' में मूलभूत अधिकारों पर विशेष बल दिया गया था। 1931 के कराची अधिवेशन और उसके बाद 1945 की 'सप्रू रिपोर्ट' (Constitutional Proposals of the Sapru Committee) में भी नागरिक अधिकारों की माँग उठाई गई। भारत की संविधान सभा ने न केवल मौलिक अधिकारों की ही घोषणा की, बल्कि संविधान के चौथे भाग में कुछ नीति निर्देशक सिद्धांतों (Directive Principles) का भी वर्णन किया गया। नीति निर्देशक सिद्धांतों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए नागरिक न्यायालय की शरण ले सकते हैं, परंतु नीति निर्देशक सिद्धांतों को न्यायालयों द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता। "तो भी नीति निर्देशक सिद्धांतों की घोषणा इसलिए जरूरी समझी गयी जससे कि कानून बनाने वालों की मनमानी पर नियंत्रण रखा जा सके। नीति निर्देशक सिद्धांत वे सिद्धांत हैं जिनके संरक्षण के लिए सब लोग एक होकर खड़े हो जायेंगे।"

5. प्रादेशिक अखंडता की रक्षा (Maintenance of the Integrity of the Territory)—नागरिक स्वतंत्रता से भी ज्यादा महत्व राष्ट्र की सुरक्षा और प्रादेशिक अखंडता को दिया गया। डॉ. आम्बेडकर ने कहा था, "व्यक्तिगत एवं मौलिक अधिकारों का महत्त्व राष्ट्रीय सुरक्षा और सार्वजनिक कल्याण से अधिक कभी नहीं हो सकता। मैं कोई ऐसा संविधान नहीं जानता जो मूल अधिकारों का आश्वासन इस रूप में दे कि संकट के समय अपने असितत्व की रक्षा के लिए राज्य अधिकारों को सीमित न कर सके।" संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार असीम और अमर्यादित नहीं हैं। सार्वजनिक शांति व व्यवस्था और राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से सरकार इन अधिकारों पर उचित प्रतिबंध लगा सकती है।

राष्ट्रीय महत्त्व के सभी विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संसद को है। राजनीतिक स्थिरता के लिए राष्ट्रपति को आपातकालीन शक्तियाँ (Emergency Powers) प्रदान की गईं। इन शक्तियों का उपयोग तीन तरह की परिस्थितियों में किया जा सकता है—(i) युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह की स्थिति में; (ii) राज्यों में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाने पर; तथा (iii) वित्तीय संकट की स्थिति में।

6. धर्मनिरपेक्षता (Secularism)—भारत का संविधान 'सहिष्णुता' (tolerance) पर आधारित है। संविधान-निर्माता जानते थे कि धार्मिक विद्वेष और सांप्रदायिक वैर-भाव के कारण ही भारत अपने गौरव को खो बैठा

है। उनका विश्वास था कि धर्मनिरपेक्षता के बिना देश अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित नहीं रख सकता। धार्मिक कलह में उलझकर अपनी शक्ति को मिटा देना मूर्खता है। 'विविधता में एकता' (unity in diversity) बनाये रखने के लिए ही संविधान द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक नागरिक को, चाहे उसका कोई भी धर्म या विश्वास क्यों न हो, समान अवसर सुलभ होंगे। सरकारी नौकरियों के संबंध में भी यही सिद्धांत लागू होता है। इसके अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को ऐसा कोई टैक्स या कर देने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा जिससे प्राप्त आय किसी धर्म विशेष को बढ़ाने या बनाए रखने के लिए खर्च की जाए। इसका यह अभिप्राय नहीं कि राज्य अधार्मिक अथवा धर्म-विरोधी है। वास्तव में धार्मिक मामलों में वह पूर्णतया तटस्थ है। संविधान का लक्ष्य 'सहिष्णुता' (tolerance) है, न कि 'धर्मांधता' (fanaticism)। नेहरू जी के शब्दों में, "हम देश में किसी भी प्रकार की सांप्रदायिकता सहन नहीं करेंगे। हम एक ऐसे स्वतंत्र धर्मनिरपेक्ष राज्य का निर्माण कर रहे हैं जिसमें प्रत्येक धर्म तथा मत को पूरी स्वतंत्रता तथा समान आदर-भाव प्राप्त होगा और प्रत्येक नागरिक को समान स्वतंत्रता तथा समान अवसर की सुविधा प्राप्त होगी।"

7. मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)—1934 में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुई। इस दल के प्रमुख नेता थे : आचार्य नरेंद्र देव, अच्युत पटवर्धन, जयप्रकाश नारायण और डॉ. लोहिया। जवाहरलाल नेहरू भी समाजवाद के आदर्श से अनुप्राणित थे। उन्हीं के शब्दों में, "हमारे आर्थिक कार्यक्रम का उद्देश्य सब तरह की आर्थिक असमानताओं का नाश और संपत्ति का समान बँटवारा होना चाहिए।" डॉ. राजेंद्रप्रसाद ने चंपारन में और सरदार पटेल ने बारदोली में किसान-आंदोलनों का नेतृत्व किया था। किसानों व मजदूरों के हितों से उन्हें पूरी सहानुभूति थी, पर उन्होंने कभी भी अपने को समाजवादी नहीं कहा। संविधान-निर्माताओं ने 'मध्यम मार्ग' अपनाया। भारतीय नागरिकों को निजी संपत्ति रखने का अधिकार प्रदान किया गया, पर साथ ही राज्य को यह अधिकार प्रदान किया गया कि सार्वजनिक हित के लिए वह किसी भी संपत्ति पर कब्जा कर ले।

42वें संविधान संशोधन द्वारा भारत को एक 'समाजवादी गणराज्य' (Socialist Republic) घोषित किया गया है। 44वें संशोधन द्वारा संपत्ति का अधिकार मूल अधिकारों की परिधि से निकाला जा चुका है, पर भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारवाद और समाजवाद दोनों का समावेश देखने को मिलता है। हमारे देश में उत्पादन के दो क्षेत्र हैं—सरकारी तथा निजी।

8. पंचायती राज की धारणा (Concept of Panchayati Raj)—जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है, पंचायतों पर आधारित एक विकेंद्रित संविधान (Panchayat-based Decentralized Constitution) की धारणा व्यावहारिक नहीं मानी गई। पर संविधान-निर्माता यह जरूर चाहते थे कि ग्राम पंचायतों का गठन किया जाए और उन्हें ऐसी शक्तियाँ प्रदान की जाएँ कि वे स्वशासन की प्रणाली इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें। नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत यह घोषणा की गई कि राज्य ग्राम पंचायतों के गठन के लिए प्रभावी कदम उठायेगा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme) और उसके बाद पंचायती राज की शुरुआत हुई। 1958 में बलवंत राय मेहता समिति ने अपनी रिपोर्ट में पंचायती राज की स्थापना के लिए एक त्रिस्तरीय ढाँचे (three-tier system) की सिफारिश की। त्रिस्तरीय ढाँचे का अर्थ है कि तीन स्तरों पर समितियाँ बनाई जाएँ—ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतें हों, खंड स्तर पर पंचायत समितियाँ तथा जिला स्तर पर एक जिला परिषद् कायम की जाए। 73वें संविधान अधिनियम ने भी त्रिस्तरीय ढाँचे की सिफारिश की। यह अधिनियम 24 अप्रैल, 1993 को लागू किया गया। अधिनियम का एक मुख्य प्रावधान यह है कि ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों और जिला परिषद् में कम से कम 33 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी।

9. लोकहितकारी राज्य की स्थापना जिससे कि नागरिकों को न्याय मिले (A Welfare State that secures to all its Citizens Justice)—संविधान का लक्ष्य भारत में लोकहितकारी राज्य की स्थापना है। राज्य केवल सुरक्षा, शांति और प्रशासन की ही देखभाल नहीं करता, इसके अतिरिक्त वह यह भी व्यवस्था करता है कि नागरिकों के साथ न्याय हो। 'सामाजिक न्याय' का अर्थ है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव न किया जाए।

संविधान में स्पष्टतः यह घोषणा की गई कि केवल, धर्म, वंश, जाति, लिंग व जन्म-स्थान के आधार पर नागरिकों के बीच पक्षपात नहीं किया जायेगा। परन्तु साथ ही यह भी व्यवस्था की गई है कि महिलाओं, बच्चों, पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिए सरकार कुछ विशेष सुविधाएँ जुटाए। संविधान के अनुच्छेद 17 के द्वारा छुआछूत पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। सामाजिक न्याय का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि एक मानव द्वारा दूसरे मानव का शोषण समाप्त किया जाए। अतः मानव-व्यापार तथा किसी व्यक्ति से बेगार अथवा जबरदस्ती काम लेना गैरकानूनी घोषित किया गया है।

‘आर्थिक न्याय’ का अभिप्राय है कि देश के भौतिक साधनों का उचित बँटवारा हो तथा अधिक-से-अधिक लोगों के हित में उनका उपयोग हो सके। संविधान के अनुच्छेद 39 में राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह ऐसी नीति अपनाए जिससे सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो सकें। यह भी जरूरी है कि पुरुषों और महिलाओं को ‘समान कार्य के लिए समान वेतन’ (equal pay for equal work) मिले। काम की दशाएँ मानवोचित होनी चाहिए तथा किसी से भी उसकी क्षमता से ज्यादा कार्य न लिया जाये। जस्टिस कृष्णा अय्यर के शब्दों में, “भारत जैसे अल्पविकसित देशों में सामाजिक व आर्थिक न्याय का मतलब यह है कि हर एक के आँसू पोंछने का प्रयत्न किया जाए” (wiping out the tears from every eye)।

न्याय का एक ‘राजनीतिक’ पक्ष भी है। सभी लोगों को यह अधिकार है कि वे अपने देश की शासन-व्यवस्था में हाथ बँटाएँ। भारतीय संविधान ने बालिग मताधिकार के सिद्धांत को मान्यता दी है। संविधान ‘कानून के समक्ष समता’ (equality before law) की घोषणा करता है। इसका अर्थ है कि कानून की दृष्टि से सब समान हैं; राज्य नागरिकों के साथ मनमाना व्यवहार नहीं करेगा।

10. अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के लिए संरक्षण (Safeguards for Scheduled Castes and Backward Classes)—भारत में जातिवाद की जड़ें बहुत गहरी हैं। अनुसूचित जातियों के लोग जन्म से ही हीन माने जाते रहे हैं। ये लोग सदियों से शोषण का शिकार हैं। पिछड़े वर्गों के अंतर्गत वे लोग शामिल हैं जो आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से अन्य वर्गों की अपेक्षा नीचे स्तर पर हैं। अन्य बहुत-सी जातियाँ आदिम जातियाँ समझी जाती हैं। इन जातियों व वर्गों को गरीबी और पिछड़ेपन से मुक्त कराने के लिए अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं में स्थान आरक्षित किये गये हैं। शुरू में केवल 10 वर्ष तक ही आरक्षण का प्रावधान था, परन्तु वह अब भी बरकरार है। संविधान अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण की अनुमति देता है। अनुसूचित जातियों के लिए 15 प्रतिशत, जनजातियों के लिए 7.5 प्रतिशत तथा अन्य पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत शीटें आरक्षित की गईं।

कुछ विद्वानों ने आरक्षण-नीति को दोषपूर्ण माना है। उनका कहना है कि विशेष सुविधाएँ जाति के आधार पर नहीं, गरीबी के आधार पर उपलब्ध करायी जाएँ। किसी भी जाति के सभी लोग निर्धन कैसे हो सकते हैं? अनुसूचित व पिछड़ी जातियों के अलावा और जातियों के लोग भी गरीबी में रहते हैं। उन्हें किसलिए आरक्षण सुविधाओं से वंचित रखा जाता है?

11. विश्व शांति की स्थापना (Promotion of World Peace)—हमारे नेताओं के राष्ट्रवाद में अहंकार का भाव नहीं था। राष्ट्रीय स्वार्थ की पूर्ति के लिए वे मानवता को तिलांजलि नहीं दे सकते थे। भारतीय संविधान राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों का उल्लेख करता है। शुरू से ही भारत की विदेश-नीति के दो प्रेरक सिद्धांत रहे हैं—‘गुटनिरपेक्षता’ (Non-alignment) और ‘शांतिपूर्ण सहअस्तित्व’ (Peaceful Coexistence)। शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का अर्थ है—दूसरों के अंदरूनी मामलों में हस्तक्षेप न किया जाए तथा राष्ट्रों की प्रादेशिक अखंडता की रक्षा की जाए। हमारी नीति यह रही है कि उन देशों को नैतिक समर्थन दिया जाए जो स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि बड़ी शक्तियाँ एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रों पर अपनी नीतियाँ न थोपें।

ऊपर हमने संविधान-निर्माताओं के दृष्टिकोण और इस दृष्टिकोण पर आधारित संविधान की कुछ प्रमुख विशेषताओं की चर्चा की है। इन्हें हम ‘संविधान के ध्येय और लक्ष्य’ (Aims and Objectives of the Constitution) भी कह सकते हैं।

फिसी भी संविधान की तीन कसौटियाँ हैं: प्रथम, संविधान किस सीमा तक देश की राजनीतिक

स्थिरता प्रदान कर सका है? क्या देश में लगातार सरकारों के बनने-बिगड़ने का क्रम जारी है? द्वितीय, क्या संविधान सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का उपकरण बन सका है? तृतीय, किस सीमा तक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में आम लोगों की भागीदारी (participation) फिसी है?

(Challenges Faced by the Indian Political System)

1. राजनीतिक स्थिरता (The Stability Factor)—जहाँ तक राजनीतिक स्थिरता का प्रश्न है, हमारे

देश में पिछले लगभग 60 वर्षों से स्वतंत्र राजनीतिक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। इस संविधान के अंतर्गत देश में पन्द्रह संसदीय चुनाव हो चुके हैं। 1989 के नौवें आम चुनाव के बाद पहली बार यह नौबत आई है कि लोकसभा में फिसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। केन्द्र में राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार बनी, जिसमें भारतीय जनता पार्टी और वामपंथी दलों ने बाहर से समर्थन देना मजूर किया। राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार एक कमजोर सरकार थी, जो अस्थायी

समीकरणों के सहारे टिकी थी। विपक्ष के रूप में कांग्रेस (आई) की भूमिका भी कोई उल्लासजनक नहीं रही। दसवीं लोकसभा के लिए 1991 में चुनाव हुए। लोकसभा में फिसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिलने की स्थिति एक बार फिर पैदा हो गई। कांग्रेस (आई) अकेली सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उत्तरकर सामने आई इसलिए 21 जून, 1991 की कांग्रेस नेला श्री नरसिम्हा राव की प्रधानमंत्री पर की शपथ दिलाई गई।

1996 के चुनावों के फलस्वरूप लोकसभा में फिसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायाधीशों पर विजयी रहने वाली पार्टी (भारतीय जनता पार्टी) को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया।

राष्ट्रपति द्वारा श्री अटलबिहारी वाजपेयी को 16 मई, 1996 को प्रधानमंत्री पर की शपथ दिलाई गई। वाजपेयी सरकार लोकसभा में आवश्यक बहुमत नहीं जुटा सकी। इसलिए उसे त्यागपत्र देना पड़ा। 1 जून, 1996 को संयुक्त मोर्चे की

नेला श्री एच.डी.देवगौड़ा ने प्रधानमंत्री पर की शपथ ली। तेरह छोट-बड़े दलों की मिलकर बने संयुक्त मोर्चे की सरकार के स्थापित की लेकर शुरू से ही संदेह का वातावरण बना रहा। अप्रैल 1997 में श्री देवगौड़ा के स्थान पर श्री गुजराल ने संयुक्त मोर्चे की सरकार की बागडोर संभाली। कांग्रेस द्वारा समर्थन वापसी के बाद 28 नवम्बर 1997 को गुजराल सरकार ने इस्तीफा दे दिया। 12वीं लोकसभा के गठन के बाद 19 मार्च, 1998 को वाजपेयी मंत्रिमंडल

ने सत्ता संभाल ली। सबसे बड़ी ताकत के रूप में उभरे भाजपा गठबंधन की भी पूर्ण बहुमत से करीब 20 सीटें कम मिली थीं। अप्रैल 1999 में अन्ना डी.एम.के. ने वाजपेयी सरकार से समर्थन वापस लिया और सरकार अपने आपकी बचा नहीं सकी। तेरहवें आम चुनाव में मतदाताओं ने भाजपा के नरेंद्र मोदी गठबंधन के पक्ष में निर्णय दिया।

गठबंधन सरकार का युग शुरू हो गया है और देश में गठबंधन की राजनीतिक संरचना पैदा करनी पड़ेगी।

2. सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन (Socio-Economic Change)—आर्थिक और वैश्विक क्षेत्रों में

काफी प्रगति हुई है, पर आम जनता आज भी दरिद्रता का जीवन बिताते की मजबूर है। नियोजित अव्यवस्था के बावजूद सामाजिक और आर्थिक विषमताएँ समाप्त होना तो दूर रहा, कुछ बढ़ी ही है। स्वतंत्रता से पहले के भारत में अष्टाचार की समस्या टैक्स अधिकाधिक, पुलिस और लोकनिर्माण विभाग के कुछ कर्मचारियों तक ही सीमित थी, पर आजारी के बाद के घाटलों (जीप दलाली कांड, 1949; मूंदेंडू कांड, 1957; इंडियाई डीजल ठेका कांड, 1980; बोफोर्स कांड, 1986; प्रतिभूति घोटाला तथा हवला, रूसिया और रूस कांड, 20वीं स्क्वैम घोटाला आदि) ने तो जनजीवन की पूरी तरह से झकझोर दिया है।

पिछले कुछ वर्षों से 'निजीकरण' (privatization) की दुहाई दी जा रही है। धीरे-धीरे सब कुछ बाजार

की शक्तियों पर छोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ी है। पर भारत की समस्या यह है कि देश की आबादी का वह हिस्सा जो गरीबी की रेखा से नीचे जी रहा है, बाजार का अंग है ही नहीं। बाजार से बाहर रहकर हीन-हीन व्यक्ति बाजार की शक्तियों को कैसे प्रभावित करेगा? अनियोजित निजीकरण से हमारी समस्याएँ हल नहीं होंगी हैं। साथ ही, उस और पूर्ण रूप से समाचार के पतन के बाद कोई वैकल्पिक वामपंथी ठोका मार्क्सवादियों के पास नहीं बचा है।

1. लोकसत्ता का सिद्धांत (Notion of Popular Sovereignty)—प्रस्तावना के प्रारंभिक शब्द हैं—“हम भारत के लोग” (We the people of India)। इन शब्दों का अर्थ यह है कि यह “संविधान जनता की कृति है।” उसे जनता के प्रतिनिधियों ने बनाया है; यह हम पर ब्रिटिश संसद या अन्य किसी बाहरी शक्ति द्वारा थोपा नहीं गया है। 1909, 1919 व 1935 के अधिनियम ब्रिटेन की संसद ने बनाए थे, परन्तु हमारा नया संविधान स्वयं हमारी ही कृति है। यद्यपि संविधान सभा के सदस्यों का सीधे जनता द्वारा चुनाव नहीं किया गया था, फिर भी संविधान सभा में सभी दलों और वर्गों के व्यक्ति शामिल थे।

संविधान के मसौदे पर जनमत-संग्रह (Referendum) नहीं कराया गया अर्थात् उसके पक्ष या विरोध में जनता की राय नहीं माँगी गई, पर फिर भी वह जनता का संविधान है; क्योंकि जिन लोगों ने उसे बनाया उनमें भारतीय जनता की पूरी-पूरी आस्था थी। यह चाहे उनकी लोकप्रियता के कारण हो या प्रांतीय विधानसभाओं से चुने जाने के कारण अथवा इसलिए कि वे किन्हीं खास ऐतिहासिक और राजनीतिक परिस्थितियों की उपज थे।

2. पूर्ण प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रीय गणराज्य (Sovereign Democratic Republic)—संविधान के द्वारा भारत में पूर्ण प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रीय गणराज्य की स्थापना की गई है।

(i) प्रभुसत्ता का तात्पर्य—‘पूर्ण प्रभुता’ का अर्थ है कि “भारत बिना किसी दूसरे राष्ट्र के हस्तक्षेप के अपनी आंतरिक व विदेशी नीति तय कर सकता है।” भारत की सीमाओं के भीतर रहने वाला कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जो राजसत्ता के अधीन न हो, सिवाय उन व्यक्तियों के जिन्हें कि राज्य ने जानबूझकर अपने अधिकार व नियंत्रण से बाहर रखा है। भारत को अन्य राष्ट्रों के साथ राजनीतिक संधियाँ या आर्थिक समझौते करने का अधिकार प्राप्त है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में प्रभुसत्ता का यथार्थ रूप काफी सीमा तक निस्तेज हो चुका है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक और बहुराष्ट्रीय कंपनियों का सभी देशों, विशेषकर विकासशील देशों की राजनीति और अर्थव्यवस्था पर निर्णायक नियंत्रण कायम हो गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ, उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (North Atlantic Treaty Organization NATO), यूरोपीय यूनियन और अन्य क्षेत्रीय संगठन भी राज्य की बाह्य प्रभुसत्ता पर अंकुश लगाते हैं। पर इस सबके बावजूद प्रभुसत्ता की धारणा बरकरार है हिंसले (Hinsley) के शब्दों में, “कोई भी राजनीतिक व्यवस्था बल प्रयोग की शक्ति (coercive machinery) के बिना काम नहीं कर सकती। राज्य के पास ही सिर्फ ऐसी शक्ति है (उसे आप चाहे काल्पनिक मानें या वास्तविक) कि वह अपने आदेशों का पालन करा सके। उसकी इस शक्ति को ही ‘प्रभुसत्ता’ कहा जाता है। यही वह शक्ति है जिसकी वजह से राज्य आदेश दे सकता है और उसके इस कार्य को न्यायसंगत समझा जाता है।”

(ii) लोकतंत्र का अर्थ—जहाँ तक संविधान के ‘लोकतंत्रीय स्वरूप’ (Democratic Character) का प्रश्न है, प्रो. रजनी कोठारी (Rajni Kothari) ने उसकी निम्नलिखित विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। (a) ‘अधिकार’ व ‘स्वतंत्रताएँ’ जैसे विचार और भाषण की स्वतंत्रता, सभी लोगों को प्राप्त है; किसी खास वर्ग के लोगों को नहीं; (b) अभी तक जो जातियाँ ‘दासता’ या हीनता का जीवन व्यतीत कर रही थीं (subject castes) उन्हें ऊपर उठने के अवसर प्रदान किए गए हैं; (c) संविधान द्वारा सभी बालिग लोगों का यह अधिकार मिला है कि वे अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करें और इस बात का भी निर्णय करें कि सरकार किन नीतियों का पालन करेगी। मतदान के मामले में लिंग, जाति और मजहब का प्रतिबंध नहीं है। मताधिकार के लिए शैक्षिक योग्यता या संपत्ति को भी आधार नहीं बनाया गया। पश्चिम के राष्ट्रों को काफी संघर्ष के बाद बालिग मताधिकार प्राप्त हुआ, पर भारत में स्वतंत्रता के तुरन्त बाद सभी बालिग व्यक्तियों को मत देने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। 1989 के 61वें संविधान-संशोधन अधिनियम के जरिए मतदान की न्यूनतम आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। 1999 के संसदीय चुनाव में करीब 62 करोड़ व्यक्ति मतदान के अधिकारी थे; (d) भारत में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की गई, जिससे कि सांप्रदायिक भेदभाव मिट सके; तथा (e) गाँवों, ब्लॉकों व जिलों में पंचायती राज संस्थाएँ कायम की गईं।

(iii) गणराज्य का अभिप्राय—प्रस्तावना में ‘गणराज्य’ (Republic) शब्द का प्रयोग इस अर्थ में किया गया है कि भारतीय संघ का प्रधान ‘राष्ट्रपति’ है, न कि कोई राजा अथवा सम्राट। राष्ट्रपति एक निश्चित अवधि के

आजादी के करीब 60 वर्षों में 47 वर्ष का कार्यकाल कांग्रेसी सरकारों का रहा है। इन सरकारों ने देश को समाजवाद का लक्ष्य तो अवश्य दिया, पर उसकी प्रगति के लिए वे अधिक कुछ नहीं कर सकीं। सरकारी उपक्रम और उद्योग लगातार घाटे में चलते रहे हैं, जिसके फलस्वरूप राजकोष पर दबाव बढ़ा है। इसलिए अब 'समाजवाद' के स्थान पर "बाजार-अभिमुखी व्यवस्था" (market-oriented economy) कायम की जा रही है, जिसे 'निजीकरण' या 'उद्योगीकरण' भी कहते हैं। भारत में भी अब बड़ी तेजी के साथ 'निजीकरण' का दौर जारी है। 4. धर्मनिरपेक्षता (Secularism) - 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्षता' शब्द भी जोड़ दिया गया है। परन्तु इस संशोधन के लागू होने से पहले भी भारत एक 'धर्मनिरपेक्ष' राज्य था। धर्मनिरपेक्ष राज्य में "मजहब व्यक्ति का एक व्यक्तिगत मामला माना जाता है; राज्य उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करता।" इसके ठीक विपरीत 'थिओक्रेटिक' (Theocratic) या मजहबी राज्य वे हैं जिनके कायदे-कानून धार्मिक पुस्तकों पर आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए, सउदी अरब एक खास मजहब यानी इस्लाम से बंधा हुआ राज्य है। परन्तु भारतीय संविधान ने अपने-अपने धर्म मानने और उसका प्रचार करने का हक रखते हैं। धार्मिक अल्पसंख्यकों को अपनी संसद की शिक्षण-संस्थाएँ कायम करने और उनका प्रबंध करने का अधिकार है। शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य

निर्णय लेने लगीं के तथ्यों में केंद्रित न होने पाए। नीति-निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत यह भी कहा गया है कि आर्थिक व्यवस्था ऐसी हो जिससे राष्ट्र की संपत्ति कारणा लोगों को ऐसे राजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु, शक्ति और स्वास्थ्य के अनुकूल न हों।" जाएँ, पुरुषों और महिलाओं दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिले तथा आर्थिक मजबूती के समुचित बूटबारा हो"। सरकार की नीति यह रही है कि "सभी नागरिकों के लिए जीविका के साधन जुटाएँ जिसमें उत्पादन के समस्त साधनों पर आम जनता का अधिकार हो, उत्पादन बढ़े और राष्ट्रीय आय का गड़ प्रतिभा को पूरा करने के लिये यह जरूरी है कि हम... देश में ऐसे समाजवादी समाज की स्थापना करें जहाँ उसमें कहा गया था कि "भारतीय संविधान की प्रस्तावना और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में की के समाज" (Socialist pattern of Society) की स्थापना है। इस अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास किया ने 1955 के आवडी (Avadi) अधिवेशन में ही यह घोषणा कर दी थी कि कांग्रेस का लक्ष्य "समाजवादी समाजवादी प्रगति" का प्रस्तावना में जो प्रस्ताव पारित हुए हैं, पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अधिका ही जाएगा। इसलिए 'लोकतांत्रिक समाजवाद' को 'राजकीय समाजवाद' (State Socialism) भी कहते हैं। के विकास के लिए योजनाओं (Plans) का सहारा लिया जाए। समाजवादी व्यवस्था में राज्य का कार्यक्षेत्र बढ़ते अथवा बीमारी, बीरजगारी या बुढ़ापे की स्थिति में लोगों को राज्य की ओर से सहायता मिले, तथा (iii) अर्थव्यवस्था पर राज्य का स्वामित्व रहे; (ii) राज्य द्वारा सामाजिक सुरक्षा (Social Security) की योजनाएँ लागू की जाएँ (1) सभी आधारभूत उद्योगों (लौहे व कार्बन के उद्योग, बिजली-उत्पादन, रेलवे व यातायात के प्रमुख साधनों, आदि) की व्याख्या नहीं की गई। समाजवादीयों ने राज्य के कार्यक्षेत्र को बढ़ते व्यापक माना है। उनका लक्ष्य यह है कि घोषित किया गया है। वैसे प्रस्तावना में अथवा संविधान के अन्य किसी अनुच्छेद में 'समाजवाद' (Socialism) 3. समाजवाद (Socialism) - संविधान के 42वें संशोधन द्वारा भारत को एक 'समाजवादी गणराज्य'

पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ा है। भारत जब चाहें राष्ट्रमंडल से अलग हो सकता है। तीसरे, राष्ट्रमंडल की सदस्यता से हमारी धरतूँ या विदेश नीति केवल नाममात्र के लिए राष्ट्रमंडल का अयक्ष मानते हैं। राष्ट्रमंडल में सघाट की कोई विशेष भूमिका नहीं है। दूसरे, अयक्ष मानते हैं। इस संबंध में हम केवल तीन बातें कहना चाहेंगे। प्रथम, राष्ट्रमंडल के सदस्य ब्रिटिश सम्राट की (Commonwealth of Nations) का सदस्य रहे, क्योंकि राष्ट्रमंडल के सदस्य ब्रिटिश सम्राट की राष्ट्रमंडल का उदाहरण पेश करता है। कुछ विद्वानों के अनुसार भारतीय गणराज्य के लिए यह उचित नहीं कि वह राष्ट्रमंडल लोकतांत्रिक देश है, परन्तु गणराज्य नहीं क्योंकि वहाँ आज भी सघाट का एक कायम है। दूसरी और, भारत 'गणराज्य' लिए चुना जाता है। इस दृष्टि से हमारा संविधान इंग्लैंड की अयक्षा अमेरिका से मिलता-जुलता है। इंग्लैंड एक

नीति

क्षेत्रीय नीतियाँ एवं सामाजिक संवाद

6. विचार, अधिभक्ति, विवास, धर्म तथा पूजा की स्वतंत्रता (Liberty of thought, expression, belief, faith and worship)—सम्य समान की पहली शर्त यह है कि व्यक्ति को अपनी बात कहने की आजादी प्राप्त हो। प्रस्तावना में कई नागरिक स्वतंत्रताओं का उल्लेख मिलता है, जैसे विचार, अधिभक्ति, विवास तथा धर्मपूजा की स्वतंत्रता। इन स्वतंत्रताओं का मूल स्वर है—'सहिष्णुता' (Doctrine of Tolerance) अर्थात् दूसरों के विचारों का सम्मान। संविधान ने सभी मतों और विचारों के प्रकाशन की पूरी-पूरी छूट दी है, केवल उन विचारों

के साथ सम्माना व्यवहार नहीं करेगा।

(equality before law) की घोषणा करता है। इसका अर्थ है कि कानूनी तौर पर सब समान हैं। राज्य नागरिकों को समान-व्यवस्था में रखेगा। संविधान ने नागरिक अधिकारों को मान्यता दी है। संविधान 'कानून के समक्ष समता' का एक 'राजनीतिक' पहलू भी है। सभी लोगों का यह अधिकार है कि वे अपने देश को

tear from every eye)।

आर्थिक न्याय का अर्थ यह है कि हर व्यक्ति के आसूँ पाँखों का प्रयत्न किया जाए" (wiping out the काद न लिया जाए। जस्टिस कृष्णा अय्यर के शब्दों में, "भारत जैसे अत्यधिकविकसित देशों में सामाजिक और कार्य के लिए समान वेतन" (equal pay for equal work) मिले तथा किसी से भी उसकी शक्ति से ज्यादा जिससे सभी नागरिकों को वेतनार के साधन सुलभ हो सकें। यह भी जरूरी है कि पुरुषों और महिलाओं को "समान लोगों के लिए उनका उपयोग हो सके। संविधान द्वारा राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह ऐसी नीति अपनाए, 'आर्थिक न्याय' का अधिप्राय यह है कि देश के भौतिक साधनों का उचित बँटवारा हो तथा अधिक-से-अधिक

किसी से बेगार अथवा जबरदस्ती काम लेना गैरकानूनी घोषित किया गया है।

व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का शोषण सम्मान कर दिया जाए। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मानव-व्यापार तथा अनुच्छेद 17 के द्वारा छुआछूत पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। सामाजिक न्याय का विशेष पहलू यह भी है कि एक कि पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जातियों की उन्नति के लिए सरकार कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान करे। संविधान के व जन्म-स्थल के आधार पर नागरिकों के बीच भेदभाव नहीं किया जाएगा। परन्तु साथ ही यह भी कहा गया है आत्मनिर्भरता के उचित अवसर मिलें। भारतीय संविधान में यह घोषणा की गई है कि केवल धर्म, वंश जाति, लिंग, 'सामाजिक न्याय' का अर्थ यह है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव न किया जाए तथा सभी को पहलुओं का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।

ही समाज की मर्यादा बनी रहती है।" मौलिक अधिकारों व नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत 'न्याय' के विधान है। संक्षेप में, "न्याय उस व्यवस्था का नाम है जिसके द्वारा व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा होती है और साथ में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय का उल्लेख मिलता है। 'न्याय' शब्द की व्याख्या करना सरल कार्य नहीं है।

5. सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय (Justice: Social, Economic and Political)—प्रस्तावना

उनकी रायों में लड़ें एक है और धर्म बदलने से राहें और राष्ट्रियता नहीं बदल जाया करती।" वली आ रही संस्कृति के समान उत्तराधिकारी हैं। जैसा कि सुभाष काश्यप लिखते हैं, "उनके पूर्वज एक थे, पर विभाजन के बाद भी हमारे नेताओं ने इस सिद्धांत को नहीं छोड़ा कि सभी धर्मोन्मत्तों को भारत की हजारा वर्षों से मुसलमानों की पृथक-पृथक राहें हैं। भारत के विभाजन में इस तरह की मानसिकता ने एक खास भूमिका निभाई। के दौरान मुस्लिम लीग जैसी संस्थाओं ने "द्विपट्टवार" के नारे लगाये थे, जिसका अर्थ यह है कि हिंदू और की स्थापना हुई, क्योंकि "सत्य एक ही है तो सब मजहबों के साथ समान व्यवहार होना ही चाहिए।" स्वतंत्रता संग्राम सत्य एक है, जो विभन्न-विभन्न रूपों में प्रकट होता है। यही वह विरासत है जिसके कारण देश में धर्मान्तरण राज्य हमारी संस्कृति धार्मिक मूल्यों से ओत-प्रोत रही है। वैदिक काल से भारत में यही सिद्धांत प्रचलित है कि

में आने वाली भाषाओं को दूर किया जाए।

के आधार पर घोषित नहीं किया जाएगा। संविधान के इन सभी प्रावधानों का लक्ष्य यही है कि धर्मान्तरण के मार्ग राजनीति से सहजता पाने वाली किसी शिक्षा-संस्था में प्रवेश पाने से किसी भी नागरिक को केवल मजहब या जाति किसी संस्था के लक्ष्य इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि वह संस्था किसी अन्य संस्था के वर्ग के प्रबंध में है।

नीति

सेवाएँ

व अधिकारों का किस प्रकार प्रयोग करेंगे।
 की सीमाओं में संश्लेषण करने की शक्ति प्राप्त है। केंद्रीय सरकार राज्यों को आदेश दे सकती है कि वे अपनी शक्ति
 देश के लिए एक राष्ट्र भाषा स्वीकार कर लें तथा केंद्रीय सरकार को बहुत शक्तिशाली बनाया गया। केंद्र को राज्यों
 संविधान-निर्माताओं ने एक ऐसे संविधान का निर्माण किया जो हमारी राष्ट्रीय एकता को पुष्ट करे। फलस्वरूप, समूचे
 जाति, भाषा, प्रदेश व महत्त्व के पीछे इतने दीवाने हो जाते हैं कि राष्ट्रीय हितों की भी परवाह नहीं करते।
 लिए भाईचारे की भावना पर बल देना जरूरी समझा गया। हमारे देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही रहा है कि हम
 द्वितीय, 'राष्ट्र की एकता और अखंडता' (unity and integrity of the nation) को बनाए रखने के

प्रकाश डाला है कि राज्य की मनमानी करने का अधिकार नहीं है।
 मजदूरी की मनाही की गई। 'व्यक्ति का गौरव' जैसे शब्दों का प्रयोग करके संविधान-निर्माताओं ने इस तथ्य पर भी
 ऊँच-नीच, छुआछूत तथा छोट-बड़े का भेदभाव समाप्त किया जाए। संविधान द्वारा मानव-व्यापार, ब्यापार और जबरी
 प्रथम, "व्यक्ति के गौरव" (dignity of the individual) को बनाये रखने के लिए यह जरूरी था कि
 विशेष बल दिया है। भाईचारे की भावना को विकसित किया जाना निम्नलिखित दो कारणों से जरूरी समझा गया—
 प्रदेशवाद और प्रांतवाद भी भारतीय समाज के प्रमुख लक्षण रहे हैं। इसलिए संविधान-निर्माताओं ने 'भाईचारे' पर
 से ही प्रमुख धर्मों की मिलन-भूमि रचा है। फिलत ही धर्मों के अनुयायी यहाँ रहते हैं। इसके अलावा जातिवाद,
 भाषाओं और अंग्रेजी के अलावा सैकड़ों बोलियों इस देश में बोलनी जाती हैं। धर्म की दृष्टि से तो हमारा देश शुक
 8. बंधुता अथवा भाईचारा (Fraternity) — भारत एक विशाल देश है। संविधान द्वारा मान्य 22 भारतीय

कुटिल भेदभाव से होता है।
 कभी भी मनमाना, कृत्रिम या दुर्भाग्यपूर्ण नहीं होना चाहिए। समता की भावना पर कुठाराघात भेदभाव से नहीं; बल्कि
 भी किया जा सकता है (The Constitution admits of discrimination with reason)। पर वर्गीकरण
 लिए सरकार कुछ विशेष सुविधाएँ जुटा सकती है। दूसरे शब्दों में, हम कहेंगे कि किसी उचित आधार पर भेदभाव
 किसी भेदभाव के समान न्याय किया जा सके। परंतु पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों और जनजातियों की उन्नति के
 है। इसके अतिरिक्त सभी नागरिकों के लिए एक-से कानून है और न्याय-प्रणाली भी ऐसी है कि सभी के साथ बिना
 पर नागरिकों से भेदभाव नहीं करेगा।" अनुच्छेद 16 सरकारी पदों पर नियुक्ति के लिए समान अवसरों की बात करता
 के लिए, अनुच्छेद 15 के अनुसार "राज्य केवल धर्म, जाति, लििंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी एक के आधार
 अनुच्छेद (अनुच्छेद 14, 15, 16, 17 व 18) यह आश्वासन देते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का समान महत्त्व है। उदाहरण
 प्रस्तावना इस बात पर बल देती है कि सभी लोगों को आत्मविकास के समान अवसर दिए जाएँ। संविधान के कई

7. प्रतिष्ठा व अवसर की समानता (Equality of Status and Opportunity) — संविधान की
 का प्रश्न है, उससे कोई व्यक्ति उचित नहीं किया जाएगा।
 नहीं कि विदेशियों को हमारे देश में किसी प्रकार की स्वतंत्रता उपलब्ध है ही नहीं। जहाँ तक जान-माल की रक्षा
 को प्रभावित करने का अधिकार सिर्फ नागरिकों को ही दिया जा सकता है, विदेशियों को नहीं। पर इसका अर्थ यह
 नहीं। यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि अधिवास्तिक की स्वतंत्रता का उपयोग करके देश की सामाजिक-आर्थिक नीतियों
 अधिवास्तिक या सभा-सम्मेलन आदि की स्वतंत्रताएँ केवल नागरिकों को ही उपलब्ध हैं, गैर नागरिकों को
 में विद्यमान अधिवास्तिक की स्वतंत्रता है।

पड़कन है। एक देश फिलतना लोकतांत्रिक है और वहाँ के निवासी फिलतने स्वतंत्र हैं, इसकी सच्ची कसौटी उस देश
 पर निर्माण और सशक्त कोषाणुओं का प्रदाय किया जाता है।" विचारों का आदान-प्रदान ही लोकतंत्र की
 अवयव धुलें और स्वस्थ रहते हैं और उनके बीमार और मृत कोषाणु हटा दिए जाते हैं और उनके स्थान
 "लोकतंत्र में अधिवास्तिक का वही स्थान है जो शरीर में रक्त संचार का। इसके कारण लोकतंत्र के सभी
 को छेड़कर बिनके प्रचार से नैतिक भ्रष्टाचार या अपराधों को प्रोत्साहन मिलता हो। पी. के. त्रिपाठी के शब्दों में,

नीट

संवाद

शैक्षिक नीतियाँ एवं सामाजिक

मौलिक अधिकारों का अर्थ (Meaning of Fundamental Rights)

मौलिक अधिकारों का तात्पर्य उन अधिकारों से है जो व्यक्ति और समाज के बहुमुखी विकास के लिए अपरिहार्य हैं और जिनका आशवासन "देश की मौलिक विधि" देती है। "देश की मौलिक विधि" (fundamental law of the land) का अर्थ है-संवैधाना। बौद्धिक व अधिकार संविधान द्वारा सुरक्षित हैं, इसलिए राज्य का कोई भी अंग-विधानमंडल या कार्यपालिका-इत्यादि कर सकता और यदि वह ऐसा करेगा तो उच्चतम या उच्च न्यायालय द्वारा उसका यह कार्य अमान्य होगा।

जाएगी।

केवल यही कहेंगे कि अधिकारों को यदि असीम मान लिया जाए तो बहुत शीघ्र अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो अथवा 'असीम' (absolute) है, इन पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता। इस संबंध में हम अधिकारों का सूजन राज्य के कानून करते हैं, प्रकृति नहीं। दूसरा धम यह हो सकता है कि मौलिक अधिकार 'पूर्ण' राज्य की आवश्यकता नहीं है। 'प्रकृति' या 'प्राकृतिक' ऐसे शब्द हैं जिनका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं है। इसके अतिरिक्त स्वयं उच्चतम न्यायालय ने ही उलट दिया है। वास्तव में मौलिक अधिकारों को 'प्राकृतिक अधिकारों' की श्रेणी में का अब कोई मूल्य नहीं रह गया है, बौद्धिक गोलकनाथ के निर्णय को तो केशवानंद भारती के मामले (1973) में संविधान द्वारा दिए नहीं गये तो इन्हें संविधान के संशोधन के द्वारा खीना भी नहीं जा सकता है।" इस तर्क केवल उसके अस्तित्व को स्वीकार भर करता है।" इससे निष्कर्ष यह निकाला गया था कि "जब से अधिकार संविधान समा की देन ही नहीं है, बल्कि वे प्रकृति या 'चेर' के द्वारा दिए गए अधिकार हैं; संविधान तो सं उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि "हमारे संविधान में दिए गये मूल अधिकार संविधान या के 'प्राकृतिक' (natural) यानी जन्मसिद्ध अधिकार हैं और इसलिए अपरिवर्तनीय हैं। 1967 में गोलकनाथ केस 'मूल' (fundamental) शब्द से दो तरह के धम पैदा हो सकते हैं। एक तो यह कि वे अधिकार भारतीयों

1.9 मौलिक अधिकारों का अर्थ, महत्व अथवा उद्देश्य (Meaning, Importance or Purpose of the Fundamental Rights)

बोव है तो संविधान उस बोव से ही विकसित वृक्षा।

'जगण-मन' को प्रेरित करने की अवल्य शक्ति है।... शापव यह कहना असुविधा न हो कि यदि प्रस्तावना भारतीय संविधान की प्रस्तावना विषय के संविधान-साहित्य में अद्वितीय है। इसके शब्दों में भारत के डॉ. सुभाष काश्यप ने कहा है, "शब्द चयन, साहित्यिक सौंदर्य एवं मानवीय भाव गरिमा की दृष्टि से संविधान-निर्माताओं के 'आशय' को समझने के लिए प्रस्तावना का सहारा लिया जा सकता है। संक्षेप में, वैसा कि है। दूसरे शब्दों में, प्रस्तावना में संविधान का सार निहित है। संविधान की शब्दावली यदि अप्रष्ट है तो उसका ठीक-ठीक अर्थ जानने में कठिनाई हो तो स्पष्टीकरण के लिए प्रस्तावना की भाषा का सहारा लिया जा सकता है।" प्रस्तावना का महत्व यह भी है कि जब किसी अनुच्छेद की भाषा अप्रष्ट (ambiguous) हो और शब्दों को व्यापक करती है।

ने यह स्वीकार किया कि प्रस्तावना संविधान का "अभिन्न अंग" (integral part) है और वह देश के बुनियादी

(?) प्रस्तावना के 'तत्त्वज्ञान' (philosophy) और उसके उद्देश्यों को प्रकट करती है। वह यह बताती है कि हमारा संविधान लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक-आर्थिक न्याय की भाँति पर आधारित है।

(ii) केशवानंद भारती केस (Kesavananda Bharati v. State of Kerala) में उच्चतम न्यायालय

ऊपर हमने प्रस्तावना की विशेषताओं पर विचार किया है। प्रस्तावना का मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना जरूरी है-

1.8 प्रस्तावना का मूल्यांकन (An Evaluation of the Preamble)

मौलिक अधिकारों का महत्त्व अथवा उद्देश्य

(Importance or Purpose of the Fundamental Rights)

इन अधिकारों के महत्त्व अथवा उद्देश्य को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है—

1. अधिकारों के बिना व्यक्ति का पूर्ण विकास नहीं हो सकता (Without rights no man can seek to be himself at his best)—लॉस्की के शब्दों में, “अधिकार सामाजिक जीवन की वे दशाएँ हैं जिनके बिना कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सर्वोच्च विकास नहीं कर सकता।” प्रत्येक व्यक्ति में कुछ गुण या शक्तियाँ होती हैं जिनका विकास किए बिना वह आगे नहीं बढ़ सकता। जीवन की रक्षा, आर्थिक सुरक्षा, धार्मिक स्वतंत्रता तथा विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता, ये सब ऐसे अधिकार हैं जो हर व्यक्ति के लिए उपयोगी हैं, किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं। इसलिए उन्हें मूल अधिकारों की श्रेणी में रखा जाना स्वाभाविक ही था।

2. नागरिक स्वतंत्रताओं के बिना लोकतंत्रीय सरकार नहीं चल सकती (Democracy implies Civil Liberties)—लोकतंत्र में ‘लोकमत’ का बहुत महत्त्व है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतंत्र का प्राण है, चूँकि लोकतंत्र इस विश्वास पर आधारित है कि जनता बहुत से विचारों में से जिन्हें स्वीकार करे, वे ही विचार ठीक हैं। जब तक नागरिकों को विचार, भाषण, सभा-सम्मेलन आदि की स्वतंत्रताएँ प्राप्त न हों तब तक लोकमत का निर्माण हो ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त यह भी जरूरी है कि नागरिकों को कानून की उचित प्रक्रिया के बिना जीवन और स्वतंत्रता से वंचित न किया जाए। भारतीय संविधान में इस स्वतंत्रता का विस्तार से वर्णन मिलता है।

3. विधानमंडल और कार्यपालिका अधिकारों का उल्लंघन नहीं कर सकते (No invasion of these rights by Executive or Legislature)—इन अधिकारों को “मौलिक अधिकार” इसलिए भी कहा गया है कि उन्हें “देश की मौलिक विधि” (Fundamental Law of the Land) यानी संविधान में शामिल किया गया है। संविधान में संशोधन किए बिना उन्हें घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता। दूसरे शब्दों में, विधानमंडल और कार्यपालिका मनमाने ढंग से मूल अधिकारों का हनन नहीं कर सकते। अधिकारों को कम करने या घटाने के लिए संविधान में संशोधन करना पड़ेगा।

4. अधिकारों को लागू करने की व्यवस्था की गई है (Rights are enforceable by the Courts)—संविधान ने नागरिकों को जो अधिकार प्रदान किए हैं, उनके लागू किए जाने की व्यवस्था की गई है। अधिकारों को लागू करने के लिए नागरिक न्यायालयों की शरण ले सकते हैं। मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus), अधिकार पृच्छा (Quo Warranto) तथा प्रतिषेध (Prohibition), आदि लेख जारी कर सकते हैं। संविधान ने उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को यह भी शक्ति दी है कि वे मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए संसद या किसी भी राज्य के विधानमंडल के द्वारा बनाये गये कानून को अवैध या शून्य घोषित कर सकते हैं।

5. मौलिक अधिकार देश की आधारभूत एकता को प्रकट करते हैं (Fundamental rights reveal the Fundamental Unity of India)—मौलिक अधिकारों का महत्त्व इसलिए भी है कि वे देश की मौलिक एकता को प्रकट करते हैं। भारत एक विशाल देश है, जिसमें अनेक मजहबों, जातियों और संप्रदायों के लोग रहते हैं। मौलिक अधिकार सभी देशवासियों को समान रूप से उपलब्ध हैं। संविधान का 15वां अनुच्छेद घोषणा करता है कि “राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी एक आधार पर नागरिकों से भेदभाव नहीं करेगा।”

मौलिक अधिकारों की प्रकृति अथवा विशेषताएँ

(Nature or Special Features of the Fundamental Rights)

अधिकारों की कई श्रेणियाँ हैं जैसे समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार तथा शोषण के विरुद्ध अधिकार। मूल अधिकारों की प्रकृति या उनकी विशेषताओं का इस प्रकार वर्णन किया जाता है—

1. कुछ अधिकार सभी व्यक्तियों को प्राप्त हैं और कुछ केवल नागरिकों को ही (Some Rights are available to all Persons, others apply to Citizens only)—भारत में जो लोग निवास करते हैं उन

नोट

6. आपातकालीन घोषणा का मौलिक अधिकारों पर प्रभाव (Effect of Proclamation of Emergency on the Fundamental Rights)—आपात स्थिति के दौरान राष्ट्रपति मौलिक अधिकारों को लागू किए जाने पर रोक लगा सकते हैं। उदाहरण के लिए, 26 जून, 1975 को राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 14, 21 व 22

को बर्बाद कर दिया। अदालत साहित्य के प्रकाशन की स्वतंत्रता नहीं दी सकती है। नहीं दिया जा सकता है कि वह सती-प्रथा अथवा गर-बलि (human sacrifice) जैसी समाज विरोधी प्रथाओं में लागू जाना निषिद्ध घोषित किया जा सकता है। इसी प्रकार धार्मिक स्वतंत्रता की आड़ में किसी को यह अधिकार सार्वजनिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए किसी भी समाचार पत्र या पत्रिका आदि का किसी राज्य या प्रदेश सभ्य-सम्मेलनों को गैरकानूनी समझा जाएगा जो लोगों को अपराध की ओर प्रेरित करे। सार्वजनिक सम्भाव या राज्य की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए सरकार इन अधिकारों पर उचित प्रतिबंध लगा सकती है। ऐसे मापनों या उदाहरण के लिए, संविधान हमें सभ्य-सम्मेलन की स्वतंत्रता प्रदान करता है। परन्तु सार्वजनिक शांति, नैतिकता तथा करने की स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती है। हम कर्मांक समाज के सदस्य हैं, इसलिए हमारे अधिकार असीम नहीं हैं। 5. अधिकार असीम नहीं है (Rights are not Absolute)—किसी भी व्यक्ति को मनामने दंग से काम

दंग से गिरफ्तार किया गया है तो वह उसकी रिहाई का आदेश देता है। नजरबंद किए गए व्यक्ति को उसके सामने पेश किया जाए। यदि न्यायालय यह समझे कि किसी व्यक्ति को मनामने (Corpus) का विशेष महत्व है। इस लेख के माध्यम से 'न्यायालय' का धार्मिकता को यह आदेश देता है कि के आदेश व लेख जारी करने की शक्ति प्रदान की गई है। इनमें बांटी प्रत्यक्षीकरण के लेख (Writ of Habeas Corpus) के लिए उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों की शरण ले सके। इसके लिए इन न्यायालयों को कई प्रकार enforceable by the Courts)—संविधान हमें यह अधिकार देता है कि हम मौलिक अधिकारों को लागू करने 4. अधिकार 'कानून' है जिन्हें अदालतों द्वारा लागू किया जा सकता है (Rights are laws

की मनाही की गई है। इन उपबंधों को तोड़ना अपराध है जिसकी सजा कानून के अनुसार दी जा सकती। आयु के किसी बालक को कैदरी, खान या जेलखिम के काम पर लगाने की मनाही है। संविधान द्वारा छुआछूत बरतने उदाहरण के लिए, मानव-व्यापार, बंगार और जबरी मजदूरी की मनाही की गई है। इसी प्रकार चौदह वर्ष से कम an Offence)—कुछ अधिकार ऐसे हैं जो व्यक्तियों और निजी संस्थाओं के कर्मों पर भी प्रतिबंध लगाते हैं। 3. वे उपबंध विनका उल्लंघन करना अपराध है (Provisions whose contravention shall be

विधि या नियम नहीं बनाये जा सकते जिससे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है। ऑफ इंडिया, आदि। इस प्रकार विधानमंडल, कायदापालिका, स्थानीय सरकारें तथा अन्य बहूत से निकाय ऐसी कोई गया हो और जो सरकार या सरकार के समान कृत्य करते हों, जैसे कि राजस्थान राज्य विद्युत बोर्ड अथवा स्टेट बैंक एक फैसले में यह कहा कि 'राज्य' के अंतर्गत वे निकाय भी आ जाते हैं जिन्हें किसी अधिनियम द्वारा स्थापित किया निगम, नगरपालिका, जिला बोर्ड और पंचायतें भी 'राज्य' की ही सत्ता का बोध कराती हैं। उच्चतम न्यायालय ने अपने में प्रयोग किया गया है। उसके अंतर्गत 'विधानमंडल' और 'कायदापालिका' दोनों आ जाते हैं। इतना ही नहीं, नगर कोई ऐसा कानून नहीं बनाएगा जिससे मूल अधिकार सीमित होते हों।" 'राज्य' शब्द का यहाँ बहूत व्यापक अर्थ shall not make any Law which abridges the Rights)—संविधान यह घोषणा करता है कि "राज्य (State

2. राज्य कोई ऐसा कानून नहीं बनाएगा जिससे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता हो (State स्वतंत्रताएँ नहीं दी जा सकती।

सामाजिक-राजनीतिक जीवन में खुलकर भाग लेने का अवसर प्रदान करती है। इसलिए विदेशियों को इस तरह की तथा देश के किसी भी भाग में बस जाने की स्वतंत्रता। वास्तव में, ये स्वतंत्रताएँ नागरिकों को देश के सभ्य-सम्मेलन और समुदायों के निर्माण की स्वतंत्रता, देश के एक भाग से दूसरे भाग में आने-जाने की स्वतंत्रता ही दिए गए हैं—सरकारी पदों पर नियुक्ति के लिए अवसरों की समानता, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सुरक्षा, धार्मिक स्वतंत्रता तथा शोषण के विरुद्ध अधिकार। परन्तु निम्नलिखित अधिकार केवल भारतीय नागरिकों की सभी की, चाहे वे भारत के नागरिक हैं अथवा नहीं, निम्नलिखित अधिकार उपलब्ध हैं—जीवन व माल-असबाब की

नीति
संसार
क्षेत्रीय नीतियाँ एवं सामाजिक

में दिए गए अधिकारों को लागू किया जाना रोक दिया था। दूसरे शब्दों में, उपरोक्त अधिकारों पर अमल कराने के लिए नागरिक न्यायालय की शरण नहीं ले सकते थे। परंतु 44वें संशोधन ने यह व्यवस्था की है कि अनुच्छेद 20 व 21 में दिए गए अधिकार आपात स्थिति में भी स्थगित नहीं किए जा सकते। अनुच्छेद 20 यह घोषणा करता है कि किसी मौजूदा कानून को भंग करने के अपराध में ही कोई व्यक्ति दंडित किया जा सकता है तथा किसी भी व्यक्ति को एक अपराध के लिए एक बार से अधिक सजा नहीं दी जा सकेगी। इसके अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति स्वयं अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। इस प्रावधान का प्रयोजन यह है कि पुलिस किसी भी अभियुक्त को शारीरिक यातना देकर अपने ही विरुद्ध गवाही देने या अपना अपराध स्वीकार करने के लिए मजबूर न करे। पुलिस या गुप्तचर विभाग का दायित्व है कि वह प्रमाण या सबूत इकट्ठे करके अपना काम करें, न कि अभियुक्त को यंत्रणा देकर। अनुच्छेद 21 "जीवन की सुरक्षा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता" (life and personal liberty) की चर्चा करता है।

7. संविधान में संशोधन करके मौलिक अधिकार सीमित किए जा सकते हैं (Rights can be abridged by way of Constitutional Amendments)—संविधान-संशोधन की शक्ति 'साधारण विधायी शक्ति' से भिन्न है। इसलिए सभी की धारणा यह रही थी कि संविधान में संशोधन करके मूल अधिकारों में रद्दोबदल या कमी की जा सकती है। पर गोलकनाथ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि संविधान में ऐसा कोई संशोधन नहीं किया जाएगा जिससे कि मौलिक अधिकारों में कमी या कटौती होती हो। इस निर्णय ने संसद की शक्ति को झकझोर कर रख दिया। परंतु अब इस निर्णय का कोई कानूनी महत्त्व नहीं है, क्योंकि बाद के एक मामले (केशवानंद भारती केस) में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि संविधान में संशोधन करके मूल अधिकारों को सीमित किया जा सकता। 1980 के मिनर्वा मिल्स केस में उच्चतम न्यायालय ने पुनः यह बात दोहराई।

8. संविधान 'नागरिक स्वतंत्रताओं' पर ज्यादा बल देता है (The Constitution is primarily concerned with Civil Liberties)—ऐसा लगता है कि संविधान की दृष्टि नागरिक स्वतंत्रताओं (कानून के समक्ष समता, भाषण की स्वतंत्रता तथा संस्कृति व शिक्षा संबंधी अधिकारों) पर ही केंद्रित है। संविधान नागरिकों को 'काम पाने का अधिकार' (right to work) अथवा बुढ़ापे व बीमारी की स्थिति में राज्य की ओर से पोषण पाने का अधिकार (right to maintenance) प्रदान नहीं करता।

9. कुछ नीति निर्देशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए मौलिक अधिकारों में काट-छाँट की जा सकती है (Rights may be abridged for giving Effect to some of the Directive Principles)—अनुच्छेद 39 (b) व 39 (c) में दिये गये निर्देशक सिद्धांतों को अमल में लाने के लिए यदि कोई कानून बनाया जाता है तो उसे इस आधार पर चुनौती नहीं जा सकेगी कि वह मौलिक अधिकारों को छीनता है या उनमें कमी लाता है। अनुच्छेद 39 (b) व 39 (c)। भौतिक संसाधनों के उचित वितरण का निर्देश देते हैं। यदि राज्य इन निर्देशों का पालन न करे तो समाज कभी भी समतावादी (egalitarian) नहीं बन सकेगा। यह उचित ही है कि न्यायालय राज्य को इस कर्तव्य के पालन से न रोकें या इसके पालन में बाधक न बनें।

मौलिक अधिकारों का वर्गीकरण (Classification of Fundamental Rights)

संविधान ने मौलिक अधिकारों की निम्नलिखित छः श्रेणियाँ स्वीकार की हैं—

1. समता का अधिकार (Right to Equality);
2. स्वतंत्रता का अधिकार (Right to Freedom);
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation);
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion);
5. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (Culture and Educational Rights) तथा
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies)

I. समता का अधिकार (अनुच्छेद 14, 15, 16, 17, व 18) (Right to Equality)

समता का सिद्धांत "निष्पक्षता" पर बल देता है। वह यह मानकर चलता है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-विकास के समान अवसर उपलब्ध होने चाहिए। अवसरों के अभाव में किसी भी व्यक्ति की प्रतिभा अथवा योग्यता अविकसित न रह जाए। समता के अधिकार का वर्णन संविधान की पाँच धाराओं में मिलता है।

1. कानून के समक्ष समता (Equality before Law)-संविधान के अनुच्छेद 14 में कहा गया है-"राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समता अथवा कानून के समान संरक्षण (equal protection of the law) से वंचित नहीं करेगा"। दूसरे शब्दों में, कानून सबकी समान रूप से रक्षा करेगा, चाहे कोई व्यक्ति ऊँचे पद पर हो या निचले पद पर, धनी हो या निर्धन, गोरा हो या काला। 'विधि के शासन' (rule of law) का वास्तव में यही अर्थ है कि कानून की दृष्टि से सब समान हैं। 1978 में उच्चतम न्यायालय के सामने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के एक ऐसे रीडर (प्राध्यापक) का मामला आया जो विश्वविद्यालय की जाली डिग्रियाँ बनाने की कोशिश कर रहा था। अपराध सिद्ध हो जाने पर भी सेशन्स जज ने उसे मात्र कुछ घंटों के साधारण कारावास का दंड दिया था (simple imprisonment till the rising of the court)। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश जस्टिस अय्यर (Justice V.R. Krishna Iyer) ने इस निर्णय पर टिप्पणी करते हुए यह कहा कि अभियुक्त को इतना हल्का दंड दिये जाने का कोई कारण नहीं दिखता। यह ठीक है कि अभियुक्त नवयुवक है, शिक्षित है, अच्छे घराने से संबन्ध रखता है तथा एक डिप्टी-कलेक्टर का बेटा है, किंतु नाममात्र की सजा (token punishment) देकर अदालती कार्रवाई को व्यर्थ की चीज नहीं बनाया जा सकता। जस्टिस अय्यर का कथन 'कानून के समक्ष समता' के सिद्धान्त को स्पष्ट करता है।

उच्चतम न्यायालय के अनुसार मामलों को शीघ्रता से निबटाने के लिए विशेष अदालतों (Special Courts) का गठन किया जा सकता है। इस प्रकार की अदालतों से अनुच्छेद 14 में दिए गए समता के अधिकार का उल्लंघन नहीं होगा। किसी व्यक्ति विशेष के साथ भेदभाव का प्रश्न यहाँ नहीं उठता, क्योंकि सभी मामलों को शीघ्रता से निपटाया जाना जरूरी है। किसी भी राजकर्मचारी (public servant) पर किसी ऐसे अपराध के लिए जो कि उसने अपने सरकारी दायित्व का निर्वाह करते हुए किया हो, तब तक मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता जब तक कि उसके लिए सरकार की मंजूरी पहले ही प्राप्त न कर ली गई हो। प्रश्न यह है कि क्या इस तरह की व्यवस्था समता के सिद्धांत के अनुरूप है? भारत के उच्चतम न्यायालय ने इस व्यवस्था को न्यायोचित ठहराया है, क्योंकि सरकारी दायित्वों की पूर्ति में रत कर्मचारियों को संरक्षण देना आवश्यक है, जब कि साधारण नागरिकों को इस तरह के संरक्षण की जरूरत नहीं है।

परंतु कानूनी समानता का यह अर्थ नहीं कि किसी वर्ग विशेष के लिए कोई विशेष कानून बनाया ही नहीं जा सकता। जैसा कि आइवर जेनिंग्स (Ivor Jennings) ने कहा है, "कानून के समक्ष समता का तात्पर्य यह है कि एक जैसे लोगों के साथ एक सा व्यवहार किया जाए" (Equality before the law means that the like should be treated alike)। अतः समाज के कमजोर और पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रकार के कानून बनाए जा सकते हैं।

2. धर्म, वंश, जाति आदि के अधिकार पर भेदभाव की मनाही (Prohibition of Discrimination on ground of Religion, Race, Caste etc.)-अनुच्छेद 15 दो बातें स्पष्ट करता है। प्रथम, "राज्य केवल धर्म, वंश, जाति, लिंग व जन्म-स्थान या इनमें से किसी एक आधार पर नागरिकों के साथ भेदभाव नहीं करेगा।" दूसरे, इनमें से किसी भी आधार पर कोई नागरिक दुकानों, भोजनालयों, मनोरंजन की जगहों, तालाबों और कुओं का इस्तेमाल करने से वंचित नहीं किया जा सकेगा। एम. वी. पायली (M.V. pylee) के शब्दों में, "हमारे संविधान-निर्माता देश में प्रचलित विभिन्न प्रकार के भेदभावों से परिचित थे। इसलिए वे समानता के अधिकार की सामान्य घोषणा करके ही संतुष्ट नहीं हुए, वरन् अनुच्छेद 15 में वे उससे भी आगे बढ़ गए। अनुच्छेद 15 में कोई नया अधिकार नहीं दिया गया, वरन् समानता के अधिकार की व्याख्या की गई है।"

अनुच्छेद 15 के दो अपवाद हैं—प्रथम, महिलाओं और बच्चों को खास सुविधाएँ प्रदान की जा सकती हैं। द्वितीय, पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए राज्य विशेष प्रकार की व्यवस्था कर सकता है। जातिवाद के कारण भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग शोषण का शिकार रहा है। संविधान-निर्माता इस बात को बखूबी समझते थे। यही कारण है कि उन्होंने पिछड़ी जातियों के लिए विशेष साधन जुटाने की व्यवस्था की है।

3. सरकारी नियुक्तियों के लिए अवसरों की समानता (Equality of opportunity in matters of public Employment)—अनुच्छेद 16 यह घोषणा करता है कि सरकारी नियुक्तियों के लिए सभी नागरिकों को बराबर के मौके मिलेंगे। कोई भी नागरिक धर्म, वंश, जाति, जन्म-स्थान या निवास-स्थान के आधार पर सरकारी नियुक्तियों के लिए अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा।

अनुच्छेद 16 के निम्नलिखित अपवाद हैं—(i) कुछ विशेष पदों के लिए निवास स्थान संबंधी शर्तें आवश्यक मानी जा सकती हैं; (ii) पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों में कुछ स्थान आरक्षित रखे जा सकते हैं; तथा (iii) यह व्यवस्था की जा सकेगी कि धार्मिक या सांप्रदायिक संस्थाओं के पदाधिकारी किसी विशेष धर्म या संप्रदाय के ही हों।

अगस्त 1990 में भारत सरकार ने सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े समुदायों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा की। यह घोषणा मंडल आयोग (Mandal Commission) की सिफारिशों को लागू करने के लिए की गई थी। राज्य स्तर पर तो पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण पिछले कई दशकों से चला आ रहा है, पर केन्द्र के अधीन नौकरियों के लिए आरक्षण की घोषणा पहली बार की गई।

नवम्बर 1992 में उच्चतम न्यायालय ने अपने एक ऐतिहासिक फैसले में मोटे तौर पर तीन बातें कहीं: प्रथम, सरकार ने पिछड़ों (Backward Classes) को नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण देने का जो फैसला किया है, वह सही है। दूसरे, पिछड़ों में जो वर्ग आर्थिक रूप से अगड़े हैं (creamy layer), उन्हें पिछड़ों की सूची से निकाल देना चाहिए। तीसरे, पदोन्नति के मामले में आरक्षण का लाभ नहीं मिलना चाहिए।

4. छुआछूत की समाप्ति (Abolition of Untouchability)—छुआछूत भारत के सामाजिक जीवन की धिनौनी कुप्रथा रही है। इसलिए यह आवश्यक था कि छुआछूत को कानूनन रोका जाए। संविधान के अनुच्छेद 17 में यह कहा गया है, “अस्पृश्यता का अंत किया जाता है और किसी भी रूप में छुआछूत को बरतने की मनाही की जाती है।” यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1976 में संसद ने कैद और जुर्माने की व्यवस्था को और कठोर बना दिया। छुआछूत बरतने या उसका प्रचार करने के अपराध में तीसरी बार या उससे अधिक बार दोषी पाए जाने वाले व्यक्तियों को दो साल की सजा और एक हजार रुपये का जुर्माना किया जाएगा। पहली बार किए गए अपराध के लिए कम-से-कम एक महीने की कैद और एक सौ रुपये जुर्माने की व्यवस्था की गई है। कानून में यह भी कहा गया है कि छुआछूत के अंतर्गत दोषी पाया गया व्यक्ति सजा की तारीख से छः वर्ष तक संसद और राज्य विधानमंडल का चुनाव नहीं लड़ सकता।

संविधान को लागू हुए करीब 60 वर्ष बीत चुके हैं, पर भारत के बहुत से गाँवों में आज भी दलित लोगों को मंदिर में प्रवेश से लेकर गाँव के कुएँ से पानी लेना तक वर्जित है। यहाँ तक कि कोई दलित व्यक्ति अपने बेटे को शादी के समय घोड़ी पर बिठाने का भी साहस नहीं कर सकता। इन गाँवों में रहने वाले दलितों ने कुछ वर्ष पहले राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के समक्ष अपनी व्यथा रखी थी।

5. उपाधियों की समाप्ति (Abolition of Titles)—अनुच्छेद 18 राज्य पर यह प्रतिबंध लगाता है कि वह उपाधियाँ प्रदान न करे। भारत का कोई भी नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा। वे व्यक्ति जो भारत के नागरिक नहीं हैं, पर जो किसी सरकारी लाभ या भरोसे के पद (office of profit or trust) पर हैं, राष्ट्रपति की अनुमति के बिना विदेशी राज्य द्वारा दी गई कोई उपाधि या पदवी को स्वीकार नहीं करेंगे। पदवी देने की प्रथा इसलिए समाप्त की गई क्योंकि अंग्रेजी शासन के दौरान ‘रायसाहब’, ‘सर’ या ‘रायबहादुर’ जैसी उपाधियाँ ज्ञान या शिक्षा के आधार पर नहीं, बल्कि इस आधार पर दी जाती थीं कि अंग्रेजी राज्य को किन लोगों ने मदद पहुँचाई। स्वतंत्रता के बाद भारत रत्न, पद्मविभूषण तथा पद्मश्री नामक अलंकार देने की प्रथा शुरू की गई।

दिसंबर 1995 के एक निर्णय के अनुसार, इस तरह के सम्मान 'पदवी' (title) के दायरे में नहीं आते। इनके द्वारा लोगों को साहित्य, कला, संगीत, नृत्य और विज्ञान के क्षेत्रों में श्रेष्ठता प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है। पर उच्चतम न्यायालय ने यह सुझाव अवश्य दिया कि इन सम्मानों के लिए नामों के चयन हेतु कुछ दिशानिर्देश (guidelines) तैयार किये जाएँ।

II. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19, 20, 21 और 22) (Right to Freedom)

न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती के शब्दों में, "लोकतंत्र का अर्थ मात्र यह नहीं है कि प्रत्येक पाँच वर्ष की अवधि की समाप्ति पर प्रतिनिधियों का चुनाव कर लिया जाए। वास्तव में, इसका तात्पर्य यह है कि सभी स्तरों पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया में आम लोगों की भागीदारी हो, लोगों के जीवन पर असर डालने वाले सभी प्रमुख फैसलों से लोग स्वयं जुड़ें।" लेकिन ऐसा तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उन्हें भाषण, अभिव्यक्ति, सभा-सम्मेलन और संस्था व संघ बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता। इन अधिकारों के बिना लोकतंत्र कारगर तरीके से काम कर ही नहीं सकता।

छः महत्त्वपूर्ण स्वतंत्रताएँ (Six Freedoms)—अनुच्छेद 19 द्वारा नागरिकों को 'सात स्वतंत्रताएँ' प्रदान की गई थीं, पर 44वें संशोधन द्वारा उनमें से एक निकाल दी गई। अब जो छः स्वतंत्रताएँ शेष रह गई हैं, वे इस प्रकार हैं—

(i) भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (Freedom of Speech and Expression)—नागरिकों को भाषण, लेख, रेडियो, टेलीविजन, चलचित्र अथवा अन्य किसी माध्यम से अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। प्रेस यानी समाचारपत्रों की आजादी भी इसी के अंतर्गत आती है। 44वें संशोधन द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 361-A जोड़ दिया गया है जिसके अंतर्गत समाचारपत्रों को संसद व विधानमंडलों की कार्यवाही प्रकाशित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। परंतु राज्य को अधिकार है कि देश की अखंडता, सुरक्षा, शांति, नैतिकता, न्यायालयों के सम्मान और विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों को ध्यान में रखते हुए इन अधिकारों पर 'उचित प्रतिबंध' (reasonable restrictions) लगा सके। ऐसे भाषणों और वक्तव्यों को गैरकानूनी समझा जायेगा जो लोगों को अपराध की ओर प्रेरित करें। इसी प्रकार अश्लील साहित्य के प्रकाशन की छूट नहीं दी जा सकती।

सरकार द्वारा लगाये गए कौन से प्रतिबंध उचित हैं, कौन से नहीं, इन बातों का निर्णय न्यायालय करेंगे। गुजरात सरकार ने 'माओत्से तुंग का दर्शन' (Extracts from Mao Tse-tung) नामक पुस्तक पर इस आधार पर पाबंदी लगा दी थी कि इसमें राजद्रोह (Sedition) से संबंधित सामग्री संकलित है। न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती ने इस पाबंदी को अवैध ठहराया और अपना निर्णय देते हुए टिप्पणी की: "विचारों के टकराव से ही सत्य का जन्म होता है। सत्य की सबसे अच्छी परख यह है कि दूसरे विचारों की तुलना में लोग इसे कहाँ तक स्वीकार करते हैं। इसलिए यदि इस ज्वलंत पुस्तक का प्रकाशक माओत्से-तुंग का साम्यवादी दर्शन लोगों का बताना चाहता है तो उसे ऐसा न करने देने का कोई कारण नहीं है। यह लोगों को ही फैसला करने दें कि वे कौन-सा दर्शन अथवा मत अपनाना चाहते हैं।" उच्चतम न्यायालय ने अपने एक फैसले में अखबारी कागज आयात पर लगाये गये नियंत्रणों को अवैध ठहराया। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि "प्रकाशन पर नियंत्रण लगाने से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अनुचित आघात होता है।" 'सत्यम शिवम् सुंदरम्' नामक फिल्म के निर्माता पर किसी व्यक्ति ने अश्लील फिल्म के निर्माण का आरोप लगाया था। उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि "जिस फिल्म को सेंसर बोर्ड का प्रमाणपत्र मिल चुका है, उस पर फिर न्यायालय में दंड संहिता के अंतर्गत आरोप नहीं लगाया जा सकता।"

उत्तर प्रदेश के एक पुराने अधिनियम के अनुसार कोई व्यक्ति लिखित या मौखिक शब्द द्वारा किसी व्यक्ति या वर्ग को सरकारी दायित्व का निर्वाह न करने के लिए नहीं कह सकता है। डॉक्टर राममनोहर लोहिया के विरुद्ध यह आरोप था कि उन्होंने किसानों को इस बात के लिए उकसाया कि वे नहर के पानी पर लगाये गये करों का भुगतान न करें। उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त अधिनियम को अवैध ठहराते हुए यह निर्णय दिया कि "सरकार की इस आधार पर आलोचना करना कि उसके द्वारा लगाये कर अनुचित हैं, लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में अपराध नहीं

माना जा सकता। ऐसी किसी भी आलोचना का शांति या सार्वजनिक व्यवस्था (public order) से कोई संबंध नहीं है।"

(ii) शांतिपूर्ण ढंग से बिना हथियारों के सभा-सम्मेलन करने की स्वतंत्रता (Freedom to assemble peaceably and without Arms)—नागरिकों को शांतिपूर्ण ढंग से एकत्र होने की स्वतंत्रता प्राप्त है। वास्तव में सभा-सम्मेलन भी विचारों की ही अभिव्यक्ति का एक साधन है। सुरक्षा और शांति की दृष्टि से इस अधिकार पर भी उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्रदर्शन व जुलूस की स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं कि यातायात को ठप्प कर दिया जाए। सार्वजनिक मार्गों के सही इस्तेमाल की दृष्टि से सरकार उचित आदेश जारी कर सकती है। रोगियों या छात्र-छात्राओं को होने वाली असुविधा को टालने के लिए सार्वजनिक स्थानों पर ढोल पीटने या बाजा बजाने की मनाही की जा सकती है अथवा जुलूस के रास्तों को नियंत्रित किया जा सकता है।

(iii) संस्था या संघ बनाना (Freedom to form Associations and Unions)—नागरिकों को संस्था व संघ बनाने की स्वतंत्रता दी गई है, बशर्ते कि उनका उद्देश्य सुरक्षा व शांति को खतरा पहुँचाना न हो। 'संस्था या संघ' के अंतर्गत ये सभी समुदाय आ जाते हैं: राजनीतिक दल, मजदूर यूनियनों, वाणिज्य और उद्योग मंडल, किसान संगठन, अध्यापक और छात्र संगठन, कर्मचारी संगठन तथा जातीय, सांप्रदायिक, भाषायी और धार्मिक समूह। सशस्त्र बलों (armed forces) और सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने वाले बलों (forces) के सदस्यों को संसद किसी भी मौलिक अधिकार से वंचित रख सकती है। दूसरे शब्दों में, सशस्त्र बलों या अन्य बलों के सदस्यों को संघ या समुदाय बनाने का अधिकार नहीं है।

(iv) देश के भीतर घूमने-फिरने का अधिकार (Right to move freely)—नागरिकों को देश की सीमाओं के भीतर घूमने-फिरने का अधिकार प्राप्त है, परंतु सार्वजनिक हितों तथा अनुसूचित जनजातियों (scheduled) की रक्षा के लिए राज्य इस अधिकार पर रोक लगा सकता है। उदाहरण के लिए, ऐसे किसी व्यक्ति के घूमने-फिरने पर उचित प्रतिबंध लगाया जा सकता है जो किसी संक्रमण रोग से ग्रस्त हो। इसी प्रकार सैनिक छावनियों और सामरिक महत्त्व के स्थानों पर नहीं जाने के भी आदेश दिये जा सकते हैं।

(v) देश के किसी भाग में निवास करने और बसने की स्वतंत्रता (Right to reside and settle in any part of India)—नागरिकों को देश के किसी भी भाग में निवास करने और बस जाने की स्वतंत्रता प्राप्त है, परंतु सार्वजनिक हित और अनुसूचित जनजातियों की रक्षा के लिए इस अधिकार पर भी उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। एम. वी. पायली (M.V.Pylee) के शब्दों में, "अनुसूचित जनजातियाँ एक पृथक समुदाय हैं जिनकी अपनी सांस्कृतिक और संपत्ति संबंधी कुछ परंपराएँ हैं। ये सीधे-सादे लोग काफी पिछड़े हुए हैं। इन लोगों की सुरक्षा और लाभ के लिए साधारण नागरिकों द्वारा इनके क्षेत्र में बसने अथवा संपत्ति खरीदने पर प्रतिबंध लगाए गए हैं।"

(vi) किसी भी प्रकार का व्यवसाय अपनाने या कोई भी धंधा करने का अधिकार (Right to practise any Profession or to carry on any Occupation)—भारतीय नागरिकों को कारोबार की स्वतंत्रता प्राप्त है। परन्तु इस अधिकार पर तीन प्रतिबंध लगाए गए हैं।

प्रथम, सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिए कारोबार की स्वतंत्रता को सीमित किया जा सकता है। अभिप्राय यह है कि अनैतिक कारोबार या ऐसे किसी व्यवसाय पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं जो सार्वजनिक स्वास्थ्य या जन-सुरक्षा को खतरा पहुँचाए। बाजी लगाना या जुआ खेलना 'व्यापार' अथवा 'वाणिज्य' के अंतर्गत नहीं आता। इसलिए इन पर नियंत्रण लगाने का यह अर्थ नहीं कि राज्य व्यापारिक गतिविधियों में बाधा उत्पन्न कर रहा है। इसी प्रकार मादक पदार्थों का उत्पादन और विक्रय मौलिक अधिकारों का विषय नहीं बन सकता। यह ऐसा व्यसन है जिससे लोगों के स्वास्थ्य और चरित्र को हानि पहुँचाती है। इसलिए पूर्ण मद्य-निषेध लागू किया जा सकता है अथवा मदिरा के विक्रय पर उचित प्रतिबंध लगाये जा सकते हैं। उच्चतम न्यायालय के 1989 के एक निर्णय के अनुसार, "पटरियों और गली-कूचों में बैठकर या फेरी लगाकर व्यापार करना नागरिकों का मौलिक अधिकार है, पर इसके लिए किसी भी जगह पर स्थायी रूप से बैठने या जम जाने का कोई बुनियादी हक नहीं है।"

नोट

नोट

द्वितीय, किसी भी व्यवसाय या कारोबार के लिए कुछ व्यावसायिक योग्यताएँ निर्धारित की जा सकती हैं। उदाहरण के लिए, वकील या डॉक्टर का पेशा अपनाने के लिए यह जरूरी है कि नागरिक व्यावसायिक योग्यता रखते हों।

तृतीय, राज्य को स्वयं या किसी सरकारी कंपनी द्वारा किसी भी व्यापार या धंधे को अपने हाथों में ले लेने का अधिकार है। उसके इस कार्य का इस आधार पर विरोध नहीं किया जा सकता कि उससे नागरिकों के मौलिक अधिकारों का हनन होता है।

संपत्ति का अधिकार जो अब 'मौलिक अधिकार' नहीं रह गया है

(Right to Property which ceases to be a Fundamental Right)

कोई भी अधिकार इतना विवादपूर्ण नहीं रहा जितना कि संपत्ति का अधिकार। 44वें संशोधन के लागू होने से पहले संविधान के पाँच अनुच्छेद-19 (f), 31, 31A, 31B और 31C संपत्ति के अधिकारों की विवेचना करते थे। कुल मिलाकर संपत्ति के अधिकार के विषय में ये व्यवस्थाएँ की गई थीं:

प्रथम, नागरिकों का यह अधिकार है कि वे संपत्ति का अर्जन कर सकें, उसका उपभोग करें या उसको किसी को दे दें या बेच दें।

दूसरे, अनुच्छेद 31 के अंतर्गत राज्य 'सार्वजनिक उद्देश्य (public purpose) के लिए निजी संपत्ति पर कब्जा कर सकता था, पर उसके लिए यह जरूरी था कि वह संपत्ति के स्वामी को कुछ राशि (amount) अवश्य दे। बदले में जो राशि दी जाएगी, वह पर्याप्त है अथवा नहीं, इसका निर्णय न्यायालय नहीं कर सकते थे।

तीसरे, अनुच्छेद 31A और 31B उन कानूनों को संरक्षण देते हैं जिनके द्वारा राज्य निजी संपत्ति अपने नियंत्रण में ले लेता है। इन अनुच्छेदों में यह कहा गया है कि जिन कानूनों को संविधान की नौवीं अनुसूची (Ninth Schedule) में डाल दिया गया है, न्यायालयों द्वारा उन्हें इस आधार पर गैरकानूनी घोषित नहीं किया जाएगा कि वे संपत्ति के अधिकार के विरुद्ध हैं।

चौथे, नीतिनिर्देशक सिद्धांतों (Directive Principles of State Policy) को अमल में लाने के लिए जो कानून बनाए जाएँगे उन्हें इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता कि वे मूलभूत अधिकारों के विरुद्ध हैं।

44वें संशोधन अधिनियम (The Forty-Fourth Amendment Act)

स्पष्ट है कि समय-समय पर किए गए संशोधनों के कारण संपत्ति का अधिकार बहुत सीमित बन गया था। फिर भी वह एक मौलिक अधिकार अवश्य था। यदि किसी नागरिक को उसकी संपत्ति के बदले में दी जाने वाली रकम बिल्कुल नगण्य या नाममात्र की हो तो वह इस आधार पर जरूर न्यायालय की शरण ले सकता था कि उसके साथ न्याय नहीं किया जा रहा है।

संपत्ति का अधिकार क्योंकि बहुत विवादपूर्ण था, इसलिए 1977 के आम चुनावों के दौरान जनता पार्टी ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में यह कहा कि 'संपत्ति के अधिकार' को मूल अधिकारों की सूची से निकाल दिया जाएगा। फलस्वरूप, 44वें संशोधन (1978) द्वारा संपत्ति का अधिकार मूल अधिकारों की सूची से निकाला जा चुका है। वह नागरिकों का एक सामान्य 'विधिक अधिकार' (only a statutory right) रह गया है। संविधान में एक नया अनुच्छेद 300-A शामिल किया गया है जो यह घोषणा करता है कि "कानून के आदेश के बिना किसी को भी उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा (No person shall be deprived of his property save by the authority of Law)

नये अनुच्छेद में इस बात का कोई जिक्र नहीं किया गया कि राज्य संपत्ति का अधिग्रहण किसलिए करेगा तथा संपत्ति के मालिक को बदले में कुछ देगा या नहीं। परंतु जब तक देश में लोकतंत्र कायम है तब तक यह मानकर क्यों चलें कि संसद अथवा विधानमंडल नागरिकों के साथ न्याय नहीं करेंगे। आखिर उनमें हमारे प्रतिनिधि हैं। स्वतंत्रतावादियों (libertarians) के अनुसार संपत्ति का अधिकार एक ऐसा पवित्र अधिकार है जो किसी भी

अवस्था में रद्द नहीं किया जा सकता है। यहाँ तक कि सार्वजनिक हित के लिए भी निजी संपत्ति का अधिग्रहण उचित नहीं है। 1970 से शुरू होने वाले दशक में ब्रिटेन, अमेरिका, स्वीडन, डेनमार्क और नार्वे आदि देशों में फिर से "अहस्तक्षेप नीति" (*laissez faire*) का प्रभाव बढ़ा है। पर इस संबंध में यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाये जाने की जरूरत है। भारत की समस्याओं का समाधान हमें "कल्याणकारी राज्य" के साँचे में ही ढूँढ़ना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि "उद्योग और वाणिज्य में राज्य के यथोचित हस्तक्षेप के द्वारा धन के न्यायोचित वितरण की व्यवस्था होनी चाहिए।"

1.10 नीतिनिर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy)

संविधान के तीसरे भाग में नागरिकों को कुछ मूलभूत अधिकार प्रदान किए गए हैं, जैसे समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार तथा शोषण के विरुद्ध अधिकार। चौथे भाग में नीतिनिर्देशक सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। मूलभूत अधिकार न्यायिक कार्यवाही द्वारा लागू किए जा सकते हैं, जबकि नीतिनिर्देशक सिद्धांत न्यायालयों के द्वारा प्रवर्तनीय (enforceable) नहीं होंगे।

नीति निर्देशक सिद्धांतों से क्या अभिप्राय है? (What is meant by the Directive Principle)

नीतिनिर्देशक सिद्धांत हमारे संविधान की एक प्रमुख विशेषता है। इन सिद्धांतों पर आयरलैंड के संविधान का प्रभाव देखने को मिलता है। जर्मनी के संविधान में भी इसी प्रकार के लक्ष्यों का प्रावधान है। नीतिनिर्देशक सिद्धांतों का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में 'समता व न्याय' (equality and justice) की स्थापना है। नीतिनिर्देशक सिद्धांतों के माध्यम से संविधान-निर्माताओं ने समाजवादी, उदारवादी और गांधीवादी आदर्शों को हमारे समक्ष रखा है। यद्यपि न्यायालय द्वारा इन्हें लागू नहीं कराया जा सकता, तो भी इन्हें अमल में लाना राज्य का कर्तव्य होगा। प्रो. के. टी. शाह के शब्दों में, "नीतिनिर्देशक सिद्धांत एक ऐसा चैक (Cheque) है जिसका भुगतान तब होगा जबकि बैंक (सरकार) के पास पर्याप्त आर्थिक साधन हों।"

नीतिनिर्देशक सिद्धांतों का वर्गीकरण (Classification of the Directive Principles)

नीतिनिर्देशक सिद्धांतों को निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है—

1. सामाजिक न्याय और गांधीवाद को बढ़ावा देने वाले सिद्धांत (Principles which promote Social Justice and Gandhian Programme)—सामाजिक समता, और न्याय की स्थापना और गांधी जी के प्रोग्राम को लागू करने के लिए राज्य को निम्नलिखित आदेश दिए गए हैं—

- पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक विकास के लिए राज्य विशेष प्रयास करेगा। सामाजिक अन्याय और शोषण से उनकी रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है। इन सिद्धांतों पर गांधीजी की विचारधारा (Gandhian Thought) का प्रभाव देखने को मिलता है।
- राज्य का कर्तव्य है कि वह नागरिकों के लिए पौष्टिक आहार का प्रबंध करे और उनके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाए।
- मादक पदार्थों और उन सभी वस्तुओं के प्रयोग पर रोक लगाई जाएगी जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। अलबत्ता औषधि के रूप में इनका इस्तेमाल किया जा सकता है। ये सिद्धांत भी गांधीवादी विचारधारा (Gandhian Thought) पर ही आधारित है।
- राज्य 14 वर्ष तक के सब बच्चों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा का प्रबंध करेगा। बालकों को स्वस्थ विकास के अवसर दिए जाएँ और आर्थिक व नैतिक शोषण से उनकी रक्षा की जाए।
- राज्य महिलाओं को प्रसूति सहायता (maternity relief) प्रदान करने की व्यवस्था करेगा।

2. आर्थिक समता और समाजवाद को प्रोत्साहन देने वाले सिद्धांत (Principles which promote Economic Equality and Socialism)—निम्नलिखित सिद्धांतों पर समाजवादी विचारधारा की छाप देखने को मिलती है—

नोट

- (i) अनुच्छेद 39 के अनुसार राज्य सभी नागरिकों के लिए रोजगार के साधन जुटाने की कोशिश करेगा। राज्य की आर्थिक नीतियाँ ऐसी होनी चाहिएँ जिससे कि देश के भौतिक साधनों का उचित बँटवारा हो तथा अधिक-से-अधिक लोगों के हित में उनका उपयोग हो सके।
- (ii) स्त्री और पुरुष दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिलना चाहिए। बच्चों और युवकों का आर्थिक व नैतिक शोषण न हो।
- (iii) राज्य का कर्तव्य है कि वह यह देखे कि पुरुषों, महिलाओं और बालकों को आर्थिक मजबूरी के कारण ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु व शक्ति के अनुकूल न हों।
- (iv) अनुच्छेद 41 के अनुसार यदि राज्य के भौतिक साधन इजाजत देंगे तो लोगों को 'काम का अधिकार' (right to work) दिया जाएगा। यह अनुच्छेद बेकारी, बुढ़ापे, बीमारी और अंग-भंग की स्थिति में नागरिकों को आर्थिक सहायता देने की भी चर्चा करता है।
- (v) कृषि-मजदूरों व कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को जीवन-निर्वाह योग्य मजदूरी (a living wage) दिलाने का प्रयास किया जाएगा। इसके अतिरिक्त उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के अवसर भी प्रदान किए जाएँगे।
- (vi) अनुच्छेद 48 के अनुसार खेतीबाड़ी और पशुपालन की व्यवस्था वैज्ञानिक व आधुनिक रीति से की जाएगी। इसके अतिरिक्त पशुओं की नस्ल को सुधारने तथा गाय, बछड़ों और अन्य दुधारू पशुओं के वध को रोकने के लिए प्रयास किए जाएँगे। संविधान की इस धारा पर गांधीजी के विचारों (Gandhian Thought) की छाप देखने को मिलती है।
- (vii) 42वें संविधान संशोधन द्वारा नीतिनिर्देशक सिद्धांतों की सूची में एक नया सिद्धांत और जोड़ दिया गया। अनुच्छेद 43A में कहा गया है कि राज्य ऐसे कदम उठाएगा जिससे उद्योगों के प्रबंध में मजदूरों का भी हाथ रहे।

3. राजनीतिक व प्रशासनिक सिद्धांत (Principles relating to Political and Administrative Matters)—संविधान द्वारा राज्य को दो महत्त्वपूर्ण निर्देश दिए गए हैं—

- (i) ग्राम पंचायतों का गठन किया जाए और उन्हें ऐसे अधिकार दिए जाएँ जिससे वे प्रभावी ढंग से कार्य कर सकें। संविधान का यह अनुच्छेद गांधीवादी दर्शन (Gandhian Philosophy) को दर्शाता है;
- (ii) न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग किया जाए। नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए यह जरूरी समझा गया कि जो अधिकारी 'कार्यकारी अधिकारों' (executive power) का प्रयोग करें उन्हें न्यायिक शक्तियाँ न दी जाएँ। संविधान के इस अनुच्छेद पर उदारवादी दर्शन (Liberal Philosophy) की छाप देखने को मिलती है।

4. कानूनी क्षेत्र में न्याय व समता (उदारवाद) को बढ़ावा देने वाले सिद्धांत (Principles which promote Liberalism, especially Legal Justice and Equality)—सभी नागरिकों के लिए नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) बनाने का प्रयास किया जाएगा। इसका अभिप्राय यह है कि हिंदू, मुसलमान व ईसाइयों के लिए अलग-अलग कानून संहिताएँ नहीं होनी चाहिएँ। जमीन, जायदाद, विवाह और उत्तराधिकार के संबंध में सभी नागरिकों के लिए एक जैसे कानून होंगे। 42वें संशोधन ने निर्देशक सिद्धांतों की सूची में एक और अनुच्छेद जोड़ दिया। यह अनुच्छेद इस बात की घोषणा करता है कि राज्य लोगों को निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करेगा ताकि कोई भी व्यक्ति गरीबी के कारण न्याय से वंचित न रहे।

5. अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा संबंधी सिद्धांत (Principles which promote International Peace and Security)—संविधान की 51वीं धारा अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की ओर संकेत करती है। राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह इस प्रकार कार्य करे जिससे (i) राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण और न्यायपूर्ण संबंधों

नीति

प्रथम, इन सिद्धांतों का वर्गीकरण ठीक नहीं है। बहुत से सिद्धांत अस्पष्ट हैं तथा कई बातों को बार-बार दोहराया गया है। बहुधा अत्यंत आवश्यक मामलों के साथ कई साधारण विषयों को भी जोड़ दिया गया है। नीतिनिर्देशक सिद्धांतों की आलोचना (Criticism of the Directive Principles)

दूसरे, इन सिद्धांतों का कानूनी महत्त्व कुछ भी नहीं है। वे अदालतों के द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 45 का निर्देश है कि "राज्य इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सब बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास करेगा।" संविधान को लागू किए करीब 60 वर्ष हो चुके हैं। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन ने वर्ष 2005 तक सभी को साक्षर बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया था, पर अब ऐसा लगता है कि उस अवधि तक भारत के केवल 75 प्रतिशत व्यक्ति ही साक्षर हो पायेंगे। अनुच्छेद 44 में कहा गया है कि राज्य बकारी, बुढ़ापे, बीमारी और अंग-पंग की स्थिति में नागरिकों को आर्थिक सहायता देने की कोशिश करेगा। परंतु इस निर्देश के आधार पर कोई व्यक्ति राज्य को इस बात के लिए मजबूर नहीं कर सकता कि वह उसे आर्थिक सहायता प्रदान करे। कई विद्वान् तो इन सिद्धांतों को लिक्जुल निर्धक मानते हैं। उनके मतानुसार निर्देशक सिद्धांत 'पवित्र इच्छा' (pious hopes and aspirations) या मात्र 'नैतिक आदेश' बनकर रह गए हैं। उनका वास्तविक मूल्य कुछ भी नहीं है।

तीसरे, अनुच्छेद 31C ने निर्देशक सिद्धांतों के सही रूप के बारे में एक भारी विवाद उत्पन्न कर दिया है। संविधान एक और ती कहेता है कि मौलिक अधिकारों का कभी उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए और दूसरी ओर यह व्यवस्था करता है कि निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने वाले कानून अवैध घोषित नहीं किए जाएंगे, भले ही वे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हों। ऐसी स्थिति में विवाद बढ़ेंगे। एक पक्ष कहेगा कि मौलिक अधिकारों को मान्यता दी जाए और दूसरे पक्ष की दलील होगी कि निर्देशक सिद्धांत ही मान्य होने चाहिए। चौथे, नीतिनिर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए कोई विशेष कानून नहीं किया जा सका है। जिस प्रकार समान नागरिक संहिता संबंधी निर्देशों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, उसी प्रकार इस प्रावधान को भी अनदेखा किया गया है कि "राज्य लोगों के लिए पुष्टिकर भाजन जूटाने, उनके जीवन-स्तर को ऊँचा करने और जनस्वास्थ्य के सुधार की अपना प्राथमिक कर्तव्य समझेगा।" पंचायतें अभी तक प्रशासन की प्रणाली इकाइयाँ नहीं बन सकी हैं। इसलिए यह कहा जाता है कि निर्देशक सिद्धांतों के उल्लंघन की कोई आवश्यकता नहीं थी। यदि इन्हें संविधान में न रखा जाता तो भी देश इतनी ही प्रगति करता जितनी उसने अब की है। उससे एक लाभ यह होता है कि मूल अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों के बीच अनावश्यक कलह न होती।

(Importance, Utility and Purpose of the Directive Principles)

उपर्युक्त आयोगों में कुछ सच्चाई अवश्य है, परंतु इन सिद्धांतों को एकदम निर्धक मानना सरासर भूल होगी। निर्देशक सिद्धांतों को संविधान में शामिल करने के जो कारण हैं, उन्हें इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

1. सिद्धांतों का जनशिक्षण की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है (Principles have an Educative Value)—संविधान के भाग चार में नीतिनिर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत "सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय" जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। ये सिद्धांत राज्य के उद्देश्यों या लक्ष्यों के बारे में जानकारी देते हैं। सिद्धांतों के अध्ययन से पता चलता है कि संविधान-निर्माता एक और ती समाजवादी विचारधारा से प्रभावित थे और दूसरी ओर गांधीजी के विचारों से। वे एक लोककल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे।

2. निर्देशक सिद्धांत इस बात पर बल देते हैं कि राजनीतिक लोकतंत्र ही काफी नहीं है (Directive Principles tell us that Political Democracy is not enough)—ग्रैनविल ऑस्टिन के अनुसार, "भारतीय संविधान प्रथमः और सर्वापरि रूप में एक सामाजिक दस्तावेज है" (The Indian Constitution is first and foremost a social document)। सामाजिक-आर्थिक क्रांति के लिए संविधान निर्माताओं की बचतबद्धता संविधान के भाग तीन और चार में देखने को मिलती है। एक युग था जब यह विचारस किया जाता था

कि नागरिकों को यदि राजनीतिक अधिकार (जैसे वोट देने का अधिकार) दे दिया जाए तो एक सच्चे लोकतंत्र की स्थापना हो सकेगी। परंतु आधुनिक युग में "सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा" (socio-economic security) पर अधिक बल दिया जाता है। निर्देशक सिद्धांतों के माध्यम से संविधान निर्माताओं ने देश में आर्थिक लोकतंत्र लाने पर बल दिया है। नागरिकों को जब तक पौष्टिक भोजन और जीवन-निर्वाह के साधन न दिए जाएँ तब तक राजनीतिक लोकतंत्र का कोई तुल्य नहीं है।

3. राजनीतिक स्थिरता की दृष्टि से इन सिद्धांतों का बड़ा महत्त्व है (Principles provide an element of permanence in Democracy)—लोकतंत्र में सरकारें बदलती हैं। कभी एक दल की सरकार है तो कभी दूसरे दल की। सभी दलों की अपनी अलग-अलग नीतियाँ होती हैं। कुछ दल क्रांतिकारी विचारधारा के होते हैं और कुछ रूढ़िवादी होते हैं। परंतु सरकार चाहे जिस दल की भी हो उसे इन सिद्धांतों के अनुसार ही अपनी नीतियाँ ढालनी पड़ेगी। इस प्रकार नीतिनिर्देशक सिद्धांतों से प्रशासन में स्थिरता आयेगी। सरकार चाहे कांग्रेस की हो या भारतीय जनता पार्टी की अथवा किसी संयुक्त मोर्चे की, सभी के लिए नीतिनिर्देशक सिद्धांतों को मानना जरूरी है।

4. कानूनों की व्याख्या करते समय न्यायालय नीतिनिर्देशक सिद्धांतों को मान्यता दे सकते हैं (The Courts may apply these principles in Interpretation of Laws)—न्यायालय मुकदमों का फैसला करते समय इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हैं। जमींदारों ने जमींदारी उन्मूलन अधिनियमों को अनुच्छेद 14 द्वारा प्रदत्त 'विधि के समक्ष समता' (equality before law) के अधिकार के विरुद्ध बताया था। पटना उच्च न्यायालय ने तो बिहार भूमि सुधार कानून, 1950 को अवैध घोषित कर दिया था। परंतु उच्चतम न्यायालय ने इस कानून को इस आधार पर वैध ठहराया कि उसके द्वारा संपत्ति का विकेंद्रीकरण होगा यानी देश के भौतिक साधनों का अधिक से अधिक लोगों के हित में उपयोग हो सकेगा। इसी प्रकार 'विजय कॉटन मिल' (Bijoy Cotton Mills Ltd. v. the State of Ajmer) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा था कि न्यायपालिका नीतिनिर्देशक सिद्धांतों को अनदेखा नहीं कर सकती।

5. नीतिनिर्देशक सिद्धांतों के पीछे कौन-सा दंड विधान है? (Sanctions behind the Directive Principles)—ऊपर हमने अनुच्छेद 31C की चर्चा की है। नीतिनिर्देशक सिद्धांतों को अमल में लाने के लिए यदि कोई कानून बनाया जाता है तो उसे इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता कि वह अनुच्छेद 14 व 19 द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के विरुद्ध है।

इस 'कानूनी मान्यता' (legal sanction) के अलावा नीतिनिर्देशक सिद्धांतों के पीछे स्वयं संसद और राज्य विधानसभाओं की शक्ति है। यह बात संविधान के मूल पाठ से ही स्पष्ट हो जाती है। अनुच्छेद 37 में यह कहने के पश्चात् कि "इस भाग में सम्मिलित प्रावधान किसी न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराये जा सकेंगे", संविधान-निर्माता यह कहना नहीं भूलते कि ये सभी निर्देश "देश के शासन में मौलिक स्थान रखते हैं और कानून बनाते समय इन सिद्धांतों को प्रयोग में लाना राज्य का कर्तव्य होगा।" वास्तव में, संसद, राज्यों के विधानमंडल और कार्यपालिका, इन सबकी कार्यकुशलता की पहचान यही है कि नीतिनिर्देशक सिद्धांतों को कहाँ तक अमल में लाया गया है। नीतिनिर्देशक सिद्धांतों के पीछे जनमत की भी शक्ति है। चुनावों के समय मतदाता सत्तारूढ़ दल के कार्यों की जाँच इस आधार पर करेंगे कि सरकार ने नीतिनिर्देशक सिद्धांतों को अमल में लाने के लिए क्या कुछ किया है। यदि लोग एक दल की उपलब्धियों से संतुष्ट नहीं हैं तो वे किसी दूसरे दल का समर्थन करेंगे।

नीतिनिर्देशक सिद्धांतों को न्याय योग्य क्यों नहीं बनाया गया? (Why were the Directive Principles not made Justiciable?)

नीतिनिर्देशक सिद्धांतों पर किसी अदालत के जरिए अमल नहीं कराया जा सकेगा। प्रश्न यह है कि इस प्रकार की व्यवस्था क्यों की गई? इसका सीधा-सा उत्तर यह है कि निर्देशक सिद्धांतों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। विदेशी शासकों ने देश के संसाधनों का जी भर के शोषण किया। हमारे पास इतने साधन कभी नहीं रहे कि हम सभी नागरिकों को 'काम का अधिकार' प्रदान कर सकें तथा बालकों, महिलाओं और कमजोर वर्गों को सभी अपेक्षित सुविधाएँ उपलब्ध करा सकें। जैसे-जैसे संसाधन बढ़ेंगे, निर्देशक सिद्धांतों के अमल का दायरा भी बढ़ता जाएगा।

(?) 'समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम' का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाना है। विभिन्न राज्यों में कई योजनाएँ-गाँवों की योजनाएँ लागू की गई हैं, जैसे कर्नाटक की अन्तर्ग्राम योजना, महाराष्ट्र की योजना-गाँवों की योजना, आंध्र प्रदेश की विशेष योजना, तथा जम्मू-कश्मीर, मध्य प्रदेश, नागालैंड, तमिलनाडु और पश्चिमी बंगाल की विशेष योजनाएँ। इन योजनाओं के अंतर्गत हथकरघा, इस्पात तथा उद्योगों की

क्षेत्र का सहयोग हासिल किया जा सकता है।
 है। ये उद्योग हैं: हथियार और रक्षा उपकरण, युद्धपोत व सैन्य विमान, परमाणु ऊर्जा और रेल परिवहन। इनमें भी निजी दिया गया है। अब कुछ गिने-चुने क्षेत्रों को ही सार्वजनिक क्षेत्र (public sector) के लिए आरक्षण रहने दिया गया बनाया जा रहा है। नये उद्योगों की स्थापना और पुराने उद्योगों के विस्तार के लिए लाइसेंस प्रणाली को समाप्त कर "समाजवादी तरह के समाज की स्थापना" वाला राजा बदल दिया गया है और अर्थव्यवस्था को प्रतिस्पर्धा प्रणाली का राष्ट्रीयकरण धन के संकेंद्रिकरण को रोकने की दृष्टि से उठाया गया एक महत्पूर्ण कदम था, पर अब 1999 तक करीब 90 लाख हेक्टेयर भूमि लाखों भूमिहीन लोगों के बीच वितरित की गई। बैंकों और बीमा कंपनियों (?) जमींदार उन्मूलन और भूमि सुधार कानूनों के द्वारा संपत्ति के उचित बँटवारे की कोशिश की गई। जनवरी

2. समाजवाद व आर्थिक कल्याण-इस दृष्टि से निम्नलिखित नीतियाँ अपनाई गई हैं-

दूध व पीछेक आहार दिया जाता है।
 1997 में यह संख्या बढ़कर 7.75 लाख हो गई। बहुत से स्कूलों में गरीब बच्चों को कुपोषण से बचाने के लिए राज्य-सरकारों के बीच सहमति है। प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्कूलों की संख्या 1951 में सिर्फ 2.23 लाख थी। प्राथमिक तथा प्रौढ़ शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देने तथा इसके लिए संसाधन जुटाने के लिए केन्द्र और के लिए जो दोनों एक साथ करते हैं।
 Remuneration Act) के अनुसार कोई भी मालिक स्थियों को कम भुगतान नहीं कर सकता, विशेषकर उस काम तथा उत्प्राधिकार संबंधी कानून शोषण से महिलाओं की रक्षा करते हैं। 1976 के समान वेतन अधिनियम (Equal समाज में महिलाओं का उचित स्थान सुनिश्चित करने के लिए बहुत से कानून बनाए गए हैं। विवाह, तलाक निषेध किया।

1. सामाजिक न्याय और जन-कल्याण-इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए पिछड़े वर्गों और विशेषकर अनुसूचित जातियों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। उन्हें शिक्षा, छात्रवृत्तियाँ व योजनाएँ देने, लाइसेंस और परमिट आदि देने में सरकार ने उदारता की नीति दिखाई है। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा जनजाति आयोग (National Commission for Scheduled Castes and Tribes) इन जातियों के उत्थान के लिए किये गये कानूनों की जाँच करता है। हर दस वर्ष बाद पिछड़े वर्गों (Backward Classes) की सूची में संशोधन करना केंद्रीय सरकार के लिए अनिवार्य होगा। राष्ट्रीय पिछड़े वर्ग आयोग (National Commission for Backward Classes) उन लोगों की शक्तियों की जाँच करेगा जो पिछड़े वर्गों की सूचियों में शामिल होने के लिए आवेदन देते हैं। केन्द्र ने 16 मार्च 2000 को विभिन्न राज्यों की 90 अन्य जातियों को अन्य पिछड़े वर्गों (OBCs) में शामिल करने का संशोधन किया।

(Implementation of the Directive Principles)

नीतिनिर्देशक सिद्धांतों को अमल में लाने का प्रयास
 जबकि स्वयं संविधान ने ही इसकी दे रखी है।
 निर्देशानुसार बालकों को शिक्षा उपलब्ध करानी चाहिए, परंतु उस दिक्की (आदेश) की तो कोई आवश्यकता ही नहीं, तो अधिक-से-अधिक इतना ही कर सकता है कि एक दिक्की (decree) पास करके राज्य की आदेश दे कि उसे साधन किस प्रकार जुटाए जा सकेंगे। न्यायालय इसमें किसी भी प्रकार का योगदान देने में असमर्थ होगा। न्यायालय निषेध कर सकती है कि इसमें कितना धन और समय लगाया, कितने अध्यापकों की आवश्यकता होगी और ये सब बालकों के लिए निःशुल्क शिक्षा के प्रावधान को लें। "केवल कार्यात्मिका और विधायिका मिलकर ही इसका (लागू कराने) के लिए न्यायालय एकदम अनुपयुक्त संस्थाएँ हैं।" उदाहरण के लिए, 14 वर्ष तक के सब दूसरे, जैसा कि प्रो. पी. के. त्रिपाठी लिखते हैं, "इन तत्वों का प्रकार ही कुछ ऐसा है कि इनके प्रवर्तन

नीति
 संघर्ष
 क्षीय नीतियाँ एवं सामाजिक

मानव विकास के लिए स्वतंत्र एवं उन्मुक्त वातावरण होना चाहिए। जब तक समाज भयमुक्त नहीं होगा मानव के विकास के लिए स्वतंत्र एवं उन्मुक्त वातावरण होना चाहिए। जब तक समाज भयमुक्त नहीं होगा तो उसकी महत्ता क्षीण हो जाएगी। नदियों को उसकी धारा से अलग कर दिया जाए तो नदी का महत्त्व समाप्त हो जाएगा। सूखे की किरणों में विद्युत करने की शक्ति उसमें नहीं रहेगी। विद्युतों का कलरव अगर छीन लिया जाए तो उसकी महत्ता क्षीण हो जाएगी। बोलने की अभिव्यक्ति समाप्त हो जाएगी। विद्युतों का पर अगर काट दिया जाए तो आकाश रह सकता है। ऐसा इसलिए होता है कि ये अधिकार उनकी प्रकृति में अन्तर्निहित हैं। मानव का जिह्वा अगर काट मनुष्य की प्रकृति में अन्तर्निहित है। सब कहा जाय तो इस अधिकार के बिना अधिकार के रूप में जीवित नहीं अधिकार उसके साथ-साथ चलना शुरू कर देता है। अतः हम कह सकते हैं कि मानव अधिकार वह अधिकार है जो होगा। वास्तव में मानव का यह अधिकार उसकी सत्ता में ही अन्तर्निहित है। मनुष्य जैसे ही जन्म लेता है, यह है। अगर इन अधिकारों को मानव से वंचित कर दिया जाए तो मानव जीवन के अस्तित्व की कल्पना करना व्यर्थ है। जब तक मानव का विकास संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में मानव के अधिकारों को संरक्षित किया जाना आवश्यक मानव के विकास के लिए स्वतंत्र एवं उन्मुक्त वातावरण होना चाहिए। जब तक समाज भयमुक्त नहीं होगा

1.12 मानव अधिकार (Human Rights)

विस्फोट किए, पर भारत की परमाणु क्षमता पूरी तरह सुरक्षात्मक है; इसमें आक्रमक तौर नहीं है। फिलिस्तीनी स्वशासन क्षेत्र के आम चुनावों का भारत ने स्वागत किया। 1998 में भारत ने सीमित संख्या में परमाणु योगदान रहा है। कुवैत के विरुद्ध इराक की कार्रवाई का हमने कभी समर्थन नहीं किया और जनवरी 1996 में संपन्न इन अवसरों पर राष्ट्र संघ की भरपूर मदद की। चीनी गणराज्य को राष्ट्र संघ की सदस्यता दिलाने में भारत का विशेष योगदान रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ को समय-समय पर सैनिक और गैरसैनिक दोनों तरह की कार्रवाई करनी पड़ी। भारत ने विरोध किया।

विश्व शांति को बढ़ावा देना" रहा है। हमने उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और रोगधर पर आधारित नीतियों का सदैव विरोध किया।

4. विदेश नीति (Foreign Policy) - भारत की विदेश नीति का मूल सिद्धांत "सैनिक गुटों से दूर रहकर न कर पाये, राज्य की ओर से कानूनी सहायता पाने का हकदार है। कानूनी सहायता मिल सके। फौजदारी के मामलों में तो हर वह व्यक्ति जो अपने बचाव के लिए स्वयं बकील नियुक्त कड़े राज्यों में कानूनी सहायता व सलाहकार बोर्ड स्थापित किए जा चुके हैं, ताकि गरीब लोगों को मुफ्त न्यायपालिका को एक-दूसरे से पूर्णतया पृथक किया जा चुका है।

जम्मू-कश्मीर और नागालैंड को छोड़कर शेष सभी राज्यों व संघशासित क्षेत्रों में कार्यपालिका व जाड़े। पंचायती राज संस्थाओं में कम-से-कम 33 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी। के कर्मचारी वर्गों और महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व मिले तथा उन्हें पार्षद शक्तियाँ व वितीय साधन प्रदान किए गये। 73वें संविधान-संशोधन अधिनियम के तहत यह व्यवस्था की गई है कि पंचायतों में समाज

3. राजनीतिक, प्रशासनिक और कानूनी मामलों - जहाँ तक कानूनी मामलों का प्रश्न है, ग्राम पंचायतों का राज्यों में कारगर कदम उठाए गए हैं।

(???) नीवेश की रक्षा के लिए पश्चिमी बंगाल, केरल और पूर्वोत्तर क्षेत्र के राज्यों को छोड़कर और सभी जगह रोजगार योजना का ही मुख्यवास्तव स्वरूप है, जिसका उद्देश्य लाभप्रद रोजगार के अवसर प्रदान करना है। बढ़ावा देने के कार्यक्रम शामिल हैं। पहली अर्ध-शताब्दी 1999 को शुरू की गई जवाहर ग्राम समृद्धि योजना पहले की

- संसार के अधिकतम जनसंख्या वाले देशों में भारत का दूसरा स्थान है। क्षेत्रफल की दृष्टि से उसका विश्व में सातवाँ स्थान है।
- क्षेत्रीय असंतुलन के लिए काफी सीमा तक राजनीतिक और प्रशासनिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी हैं। राज्यों में दल-बदल की राजनीति और सरकारों के उथल-पुथल से विकास-कार्य को हानि पहुँचती है।
- क्षेत्रीय असंतुलन ने तनाव को जन्म दिया है। उत्तर-पूर्वी भारत के क्षेत्र-असम, त्रिपुरा, मणिपुर, नागालैंड और मिजोरम-काफी लंबे असें तक आंदोलन की गिरफ्त में रहे हैं।
- एक ऐसा संविधान बनाया जाए जिससे कि देश की स्वतंत्रता और अखंडता की रक्षा की जा सके और हर नागरिक को न्याय व विकास के अवसर प्राप्त हों।
- किसी भी देश का संविधान 'शून्य' में नहीं बनाया जाता। उस पर देश की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ, इतिहास, भौगोलिक स्थिति और संविधान-निर्माताओं के आदर्शों का प्रभाव पड़ता है।

1.13 सारांश (Summary)

2. भारतीय राज्यव्यवस्था के विषय में संविधान सभा का क्या दृष्टिकोण है?

1. क्षेत्रीय असंतुलन से क्या अभिप्राय है?

छात्र क्रियाकलाप

को प्रदान कर इसे मानवाधिकार के रूप में संरक्षित किया गया है। जिनका वर्णन मानवीय अधिकार की "सार्वभौमिक घोषणा", "नागरिक एवं राजनैतिक प्रसंविदा" तथा "आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक" प्रसंविदा में की गई है। इस प्रकार भारतीय संविधान इस बात का उदाहरण है कि व्यक्ति की स्वतंत्रताओं को मानवाधिकार के रूप में विधान लाकर सुरक्षित एवं संरक्षित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मानवाधिकारों के बेहतर संरक्षण तथा नागरिकों को न्याय दिलाने के उद्देश्य से भारत ने "मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993" पारित कर मानव की स्वतंत्रताओं एवं अधिकारों को मानवाधिकार के रूप में संरक्षित किया।

नोट

संघर्ष

क्षेत्रीय नीतियाँ एवं सामाजिक

- हमारी संस्कृति धार्मिक मूल्यों से ओत-प्रोत रही है। वैदिक काल से भारत में यही सिद्धांत प्रचलित है कि सत्य एक है, जो भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है।
- संविधान के तीसरे भाग में नागरिकों को कुछ मूलभूत अधिकार प्रदान किए गए हैं, जैसे समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार तथा शोषण के विरुद्ध अधिकार।
- मानव के विकास के लिये स्वतंत्र एवं उन्मुक्त वातावरण होना चाहिए। जब तक समाज भयमुक्त नहीं होगा तब तक मानव का विकास संभव नहीं है।

अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)

1. सामाजिक नीति एवं सामाजिक विकास का क्या संबंध है?
2. समस्याओं के समाधान के लिए क्या-क्या तरीके अपनाए गये?
3. सामाजिक नीति और योजना में निहित मूल्य, मौलिक अधिकार और राज्य नीति निर्देश के क्या सिद्धान्त हैं?
4. नीति निर्देशक सिद्धांत क्या हैं?

संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. Social Planning : Concepts and Techniques : P.N. Sharma, C. Shastri, Print House.
2. Social Development Planning : V. Shanmugasundram, Jozef Mihalik.
3. Samajik Bharat : Socio-Political-Economic India, Ten Years After : J.K. Benerjee, Service and Goodwill Mission.

इकाई-II
(Unit-II)

नोट

नीति निर्माण संबंधी दृष्टिकोण (Policy Formulation Approaches)

संरचना (Structure)

- 2.1 उद्देश्य (Objectives)
- 2.2 प्रस्तावना (Introduction)
- 2.3 एकताबद्ध, एकीकृत एवं क्षेत्रीय सामाजिक नीति के नीति निर्माणक दृष्टिकोण (Policy Formulation Approaches to Social Unified Integrated and Sectoral)
- 2.4 विकास : योजना की रणनीति और वैचारिकी
(Development : Strategy and Ideology of Planning)
- 2.5 भारतीय योजनाओं में वृद्धि-मॉडल (Growth Models in Indian Planning)
- 2.6 प्रथम योजना का मॉडल (The First Plan Model)
- 2.7 दूसरी योजना का मॉडल (The Second Plan Model)
- 2.8 तृतीय योजना का मॉडल (The Third Plan Model)
- 2.9 चतुर्थ योजना का मॉडल (The Fourth Plan Model)
- 2.10 पंचम योजना का मॉडल (The Fifth Plan Model)
- 2.11 सामाजिक शोध का योगदान (The Contribution of Social Research)
- 2.12 पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका (Role of Professional Social Worker)
- 2.13 हित समूह अथवा दबाव गुटों की भूमिका (Role of Interest or Pressure Groups)
- 2.14 दबाव गुट और राजनीतिक दल के बीच भेद
(Distinction between Pressure Groups and Political Parties)
- 2.15 भारत में दबाव गुट (Pressure Groups in India)
- 2.16 दबाव गुटों की भूमिका और प्रभाव (Role and Impact of the Pressure Groups)
- 2.17 सारांश (Summary)
 - अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

2.3 एकतावादी, एकीकृत एवं क्षेत्रीय सामाजिक नीति के नीति निर्माणक दृष्टिकोण (Policy Formulation Approaches to Social United Integrated and Sectoral)

आज दुनियाँ में एक लड़ाई चल रही है और यह लड़ाई एशिया के देशों में तीव्रतम है। एक तरफ़ आपूर्तिकर्ता, गाँविकर्ता और विकास की ताकत है, और दूसरी तरफ़ आर्थिक, जन्जाती विकास विरोधी शक्तियाँ हैं जो पूर्व औद्योगिक समाज के समान देख रही हैं। इन देशों की सरकारें इस तर्क पर काम कर रही हैं कि जब तक विकास की गति तेज नहीं की जाती, गरीबी नहीं हटती। ऋणग्रस्तता नहीं हिलती, विद्यालय नहीं खुलते, स्वास्थ्य केन्द्र नहीं बनें तथा सड़कों का जाल नहीं बिछेगा। दूसरी तरफ़ इस तरह के विकास का बराबर विरोध किया जा रहा है। विरोधी यह तर्क देते हैं कि विकास आम आदमी के हित में नहीं है। विकास के नाम पर जो भी हो रहा है, वह उच्च वर्ग व अभिजन के हक में हो रहा है। हमारे प्राकृतिक संसाधनों का दोहन मनमाने ढंग से हो रहा है और हम यह कभी नहीं सोचते कि आने वाली पीढ़ियाँ अपना गुजारा कैसे करेंगी।

हमारे देश में वास्तव में विकास का मूद्रा नेहरू जी बनाम गाँधीजी का है। जब नेहरू जी के प्रधानमंत्री काल में बड़े-बड़े बाँध बनें, भीमकाय कारखाने बनें तब उन्होंने बड़े गर्व से कहा कि वे सब निर्माण आर्थिक भारत के तीर्थ हैं। वास्तव में नेहरू जी आर्थिक भारत के निर्माता कहे जाते हैं। गाँधीजी कुछ और सोचते थे। उनका कहना था कि स्थानीय समाजों को यानी गाँव और कस्बों को स्वावलम्बी बना जाहिये। वे तर्क देते थे कि आधुनिकता के नाम पर जो विकास किया जाता है उसमें जड़ से जुड़े हुए लोग कट जाते हैं। इन दोनों नेतृत्वों के विचार में एक बड़ी समानता है; दोनों ही राष्ट्र का भला चाहते थे। इस समानता के होते हुए भी उनमें एक बड़ा अन्तर था। और यह अन्तर साधनों (Means) का था। नेहरू जी विशाल उत्पादन द्वारा लोगों को आय में वृद्धि करना चाहते थे। वे आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) को बढ़ाना चाहते थे। गाँधीजी कहते थे कि इस तरह के विकास में सामाजिक न्याय और आय के समान वितरण का सिद्धान्त सूली पर चढ़ जाता है। दोनों ही विचारधाराओं के समर्थक भावनात्मक हो जाते हैं।

नेहरू जी विकास को राज्य केन्द्रित (State Centred) बनाना चाहते थे। गाँधीजी शक्ति का विकेंद्रीकरण चाहते थे। यह सही है कि पिछले वर्षों में हमने विकास किया है; यह भी सही है कि खदानों में हम स्वावलम्बी हैं; यह भी सही है कि हमने उद्योगों को बढ़ाया है। लेकिन यह भी सही है कि कोटि-कोटि जनता को इस विकास से कुछ मिला नहीं है। ऐसी अवस्था में प्रश्न उठते हैं: यह किस प्रकार का देश है? इस देश की कौन बला है? इस देश में क्या हो रहा है? ये सभी प्रश्न सही हैं। हम सतियों से कहते आ रहे हैं कि सही भारत में रहता है। लेकिन वास्तव में यह सब नहीं है। सच्चाई तो यह है कि भारत गाँवों में रहता नहीं है, गाँवों में मरता है वास्तविक भारत शहरों में रहता है। गाँव के लोग तो इसलिये अस्तित्व में हैं कि वे शहर के लोगों को सेवा करें और शहर के लोगों को यह दिली कामना है कि गाँव बनें रहें। गाँवों के बने रहने में ही शहरों का अस्तित्व बना रह सकता है।

2.4 विकास : योजना की रणनीति और वैचारिक (Development : Strategy and Ideology of Planning)

दूसरे विश्व युद्ध के बाद सारी दुनियाँ में विकास के ऊपर लम्बी चर्चाएँ चलनीं। तब विकास का अर्थ राजनीतिक और आर्थिक निकाला गया। यह कहा गया कि यूरोप को आगे बढ़ाना है तब उसे अधिकतम औद्योगिक

विकास एक वृहद् अवधारणा है और इसका एक आयाम सामाजिक विकास है। इसके अन्तर्गत सर्वजनसक परिवर्तनों को लिया जाता है। अविजित पाठक (Avinjit Pathak) कहते हैं कि सामाजिक विकास वस्तुतः राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास है। सामाजिक विकास की प्रकृति सर्वजनसक है और इसके माध्यम से समाज में परिवर्तन किया जाता है। पाठक ने समाज कल्याण विभाग द्वारा प्रकाशित भारत में समाज कार्य के

(1) सामाजिक विकास (Social Development)

इन आयामों और विस्तारों का उल्लेख यहाँ करेंगे—
 उपर हमने विकास की परिभाषा दी है। अपनी प्रकृति में यह विकास एकौकित विकास (United Development) है। इसमें प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है और लोगों का सामाजिक विकास भी होता है। योजना आयोग और पंचवर्षीयवादी विकास का आज जो अर्थ लेते हैं उसमें बहुत बड़ा विस्तार है। इसके कई आयाम हैं। हम विकास का विस्तार (Dimensions of Development)

होता है और राज्य गाँवों में रहने वाले लोगों को केन्द्रित करके विकास को करता है। जाता है और इससे आगे सही विकास वह है जिसमें लोगों की भागीदारी हो। यह विकास यमीनी विकास अतिरिक्त सामाजिक विकास भी किया जाता है, आने वाली पीढ़ियों को ध्यान में रखकर विकास किया है। अब विकास बहु-आयामी है। इसके अन्तर्गत प्रतिव्यक्ति आय में तो वृद्धि की ही जाती है, लेकिन इसके को इसका लाभ भी मिलना चाहिये। योजना आयोग की यह राजनीति विकास की सम्पूर्ण परिभाषा को बदल देती है अपनी राजनीति में संशोधन किया। तर्क दिया गया कि आय भी वृद्धि भी होनी चाहिये और अधिकतम लोगों गया कि 10 या 20 प्रतिशत लोगों ने आर्थिक विकास के लाभ को अपने हिस्से में कर लिया। अब योजना आयोग देखा कि हमारी प्रति व्यक्ति आय में तो वृद्धि हुई है लेकिन आम लोगों को इससे कोई लाभ नहीं हुआ। यह पाया विकास से था। लेकिन हमारे अनुभव ने बताया कि विकास का समझने की यह परिभाषा सही नहीं थी। हमने यह की वार्थिक आय में वृद्धि ही। अगर सार रूप में कहें तो कहना होगा कि पिछले दिनों में विकास का अर्थ आर्थिक कुछ वर्षों पहले विकास का अर्थ यह था कि (1) लोगों की जीवन पद्धति में सुधार हो, और (2) लोगों

में रखकर विकास की परिभाषित करेंगे।
 पीढ़ियों के लिये भी लाभदायक सिद्ध हो सके। यहाँ हम पंचवर्षीयवादीयों और विकासवादियों के दृष्टिकोण को ध्यान लोगों को लाभ दे सके। विकास की दृष्टि कसौटी यह है कि विकास वर्तमान पीढ़ी के लिये ही नहीं, आने वाली से किया था उनकी विचारधारा से पंचवर्षीयवादी सहमत है। वे कहते हैं कि वे कार्य विकास है जो आर्थिक अपनी एक पुस्तक का शीर्षक इसी वि श्रेटर कॉमन गूड (The Greater Common Good, 1999) के नाम उनका कहना है कि विकास वह है जो आर्थिक से अधिक लोगों को लाभान्वित कर सके। अन्तर्गत रीय ने आर्ट, सुन्दर लाल बहुगुणा जैसे कई पंचवर्षीयवादी हैं। वे विकास को आर्थिक वृद्धि के साथ नहीं जोड़ते। इस परिभाषा से सहमत हैं। विकास की दृष्टि परिभाषा पंचवर्षीयवादीयों की है। संघा पाठकर, अन्तर्गत रीय, बाबा भारतीय योजना बनाने वालों ने दी है। एक तरह से यह परिभाषा सरकारी परिभाषा है। कई समाजशास्त्रीय विकास की आज हमारे यहाँ विकास को लेकर कोई सर्वसम्मति नहीं है। विकास की एक परिभाषा तो वह है जिसे

विकास किस कहते हैं? (What is Development?)

होना अनिवार्य है। थोड़े में, पूर्णजाद और प्रजातन्त्र विकास के पैराडिग (Paradigm) है। पड़ेगा और इसमें भारत अपवाद नहीं है। बहस का एक निष्कर्ष यह भी रहा कि विकास के लिये प्रजातन्त्र का देशों ने पूर्णजाद की अपनाने के माध्यम विकास किया है। एशिया की भी पूर्णजाद को ही अपना माध्यम बनाया यह थी कि विकास करने के लिये एक मात्र साधन पूर्णजाद है। यूरोप का अनुभव भी यही रहा है। वहाँ के आधुनिकीकरण क्या है? मीडिया ने आधुनिकीकरण को एक लोक चर्चा का विषय बना दिया। इसमें सर्वसम्मत राय कहा है कि इन देशों को आगे बढ़ने के लिये आधुनिकीकरण को अपनाना पड़ेगा। अब बहस चलती कि लिये आधुनिकीकरण को ही अपना राष्ट्रीय लक्ष्य बना सकते हैं। गुनार मिडेल ने भी अपने एशियन ड्रैमा में यह बताना पड़ेगा। जब तीसरी दुनिया के देश अर्थात् वे देश जहाँ अर्पक्षित रूप से कम विकास हुआ था, आगे बढ़ने के

शब्द कोष में सामाजिक विकास पर खुलासा किया है। इस अर्थ में पाठक की टिप्पणी भारत सरकार की योजना पर प्रकाश डालती है। संरचनात्मक परिवर्तन के अन्तर्गत सामाजिक विकास गाँव और शहर के अन्तर को दूर करता है, क्षेत्रीय असंतुलन को कम करता है और सामाजिक विकास का सबसे बड़ा उद्देश्य एक ऐसे नये समाज का निर्माण करना है जो वर्तमान त्रासदी को दूर कर देगा। सामाजिक विकास का एक प्रयास यह है कि इसके माध्यम से सबसे अधिक गरीबों और वंचित लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। सामाजिक विकास उत्पादन को बढ़ावा देता है और राजगार की सम्भावनाओं को पैदा करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि गाँव में जो अतिरिक्त भूमि है उसे भूमिहीनों में बाँटा जाये और छोटे किसानों में जो गैर-बराबरी है उसे दूर किया जाये। सामाजिक विकास के अन्तर्गत ही सरकार तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ कई कार्यक्रमों को चलायेंगी और इन कार्यक्रमों में प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा, कम लागत का आवास, पीने का पानी, सार्वजनिक स्वास्थ्य, जनसंख्या की समस्याएँ, परिवार नियोजन और पारिस्थितिकीय संतुलन (Ecological Balance) बनाये रखना सम्मिलित हैं। सामाजिक विकास तब सफल हो सकता है जब ज़मीन से जुड़े हुए लोगों को अधिकार दिये जाये। वास्तव में कोपनहेगन में सामाजिक विकास की जो घोषणा हुई है वह कुछ निश्चित नीतियों व कार्यक्रमों की सिफारिश करती है।

नोट

इस भाँति सामाजिक विकास जो सामान्य विकास का एक भाग है, आयाम है अपने अन्तर्गत कई संरचनात्मक परिवर्तनों को सम्मिलित करता है।

(2) दीर्घकालीन विकास (Sustainable Development)

कुछ वर्षों पहले एस.आर.मेहता ने अपनी पुस्तक पोवर्टी, पॉपुलेशन एण्ड सस्टेनेबल डवलपमेन्ट (Poverty, Population and Sustainable Development, 1977) में विकास को नये संदर्भ में प्रस्तुत किया था। पहली बात तो यह है कि दीर्घकालीन विकास वस्तुतः विकास का एक आयाम है—विस्तार है। मेहता कहते हैं कि दीर्घकालीन विकास हमारी योजनाओं की रणनीति का परिणाम है। हमने 50 के दशक में आर्थिक विकास की अवधारणा को रखा। तब हमने सोचा कि आर्थिक वृद्धि औद्योगीकरण द्वारा होगी और इसके परिणामस्वरूप योजना आयोग ने औद्योगीकरण, शहरीकरण और आधुनिकीकरण को बढ़ाया। ऐसा करने में हमारी पारिस्थिति गड़बड़ा गयी और तब हमने नयी नीति रखी। हमने कहा कि विकास तभी सम्भव है जब हम इसे दीर्घकालिक बना दें। संसार के पर्यावरण और विकास कमीशन (World Commission on Environment and Development, 1987) ने यह सिफारिश की कि मनुष्य के विकास के लिये आज दीर्घकालीन विकास की आवश्यकता है। योजना आयोग ने दीर्घकालीन विकास की जो व्याख्या की उसके निम्नांकित तत्व हैं—

- (1) राजनीतिक व्यवस्था को ऐसा प्रभावशाली बनाया जाये कि निर्णय लेने के मसलों में नागरिकों की अधिकतम भागीदारी हो सके।
- (2) आर्थिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जो अतिरिक्त उत्पादन करे और तकनीकी ज्ञान की वृद्धि करे।
- (3) एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को बनाया जाये जो विकास के परिणामस्वरूप असंतुलन से जो तनाव पैदा करता है, उसे दूर करे।
- (4) उत्पादन की ऐसी व्यवस्था बनायी जाये जो विकास के लिये जिस पारिस्थितिकीय आधार की आवश्यकता होती है, उसे सुरक्षित रखे।
- (5) ऐसी तकनीकी व्यवस्था बनायी जाये जो लगातार नये निदानों को प्रस्तुत करे।
- (6) एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को विकसित किया जाये जो व्यापार तथा वित्त के दीर्घकालिक प्रतिमान बना सके।
- (7) प्रशासनिक व्यवस्था को इस भाँति लचीला बनाया जाये कि वह अपने अन्दर जो भी दोष हो उसे स्वयं ठीक करती रहे।

लेण्डर (Lender) ने दीर्घकालिक विकास के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कहा है कि लम्बी अवधि तक चलने वाला विकास वास्तव में आने वाली पीढ़ियों के भविष्य को भी सुरक्षित रखता है। यह दीर्घकालिक विकास बराबर परिवर्तनशील होता है और मनुष्यों की आवश्यकताओं के अनुसार बराबर अनुकूलन करता रहता है। योजना आयोग ने विकास की जो नई परिभाषा दी है उसमें दीर्घकालिक विकास की भूमिका उल्लेखनीय है।

नोट

सामान्य विकास का यह एक और आयाम है। इसके अन्तर्गत विकास कार्यक्रमों में आम लोगों की सहभागिता होती है। बात यह है कि विकास वस्तुतः लोगों के लिये और लोगों द्वारा होता है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने उपभोग की वस्तुओं के बारे में राय देने का अधिकार होता है। वह शिक्षा राजनीति, पैदावार आदि पर अपनी पसंदगी दे सकता है। जब विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी होती है तब यह विकास का विशुद्ध रूप होता है। इसमें विकास व्यक्तियों के माध्यम से होता है वे स्वयं श्रम करते हैं और इसलिये इसका लाभ भी उन्हें ही मिलता है। आज जो हम पर्यावरण की हानि की बात करते हैं तो इसका मुख्य कारण यह है कि हमने लोगों को विकास में भागीदारी करने के लिये उत्साहित नहीं किया। यदि लोग भागीदार होते तो जंगल को बाजार में बेचने के लिये कभी काटा नहीं जाता। गाँवों के विकास में भागीदारी के निम्न महत्वपूर्ण बिन्दु हैं—

- (1) गाँव में जो भी प्राकृतिक संसाधन हैं, उनका विस्तार किया जाये।
- (2) गाँव के गोबर आदि से गाँव के लोगों की आवश्यकताओं को पूरा किया जाये।
- (3) गाँव में जो भी वनस्पति के संसाधन हैं उनका समान वितरण हो।

योजना आयोग का कहना है कि विकास की भागीदारी प्रभावशाली हो, इसके लिए गाँव में स्थापित स्वैच्छिक संगठनों और अन्य संगठनों जैसे कि ग्राम सभा, महिला मण्डल, आदि की भूमिका बढ़ायी जानी चाहिये। विकास के अन्दर ज़मीन से जुड़े हुए लोग (Grassroot People) की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। पिछले वर्षों में जो विकास कार्यक्रम हुए, इनमें आम लोगों की सहभागिता न्यूनतम थी। विकास की पूरी रणनीति योजना आयोग और सरकार की हुआ करती थी। अब यह स्थिति बदल गयी है।

(4) जनकेन्द्रित विकास (People's Centred Development)

संयुक्त राष्ट्रसंघ विकास कार्यक्रम (United Nation's Development Programme—UNDP) ने जनकेन्द्रित विकास को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह विकास आम लोगों का विकास होता है, आम लोग ही इसे करते हैं और यह अन्य लोगों के लिये ही होता है (Development of the People, by the People and for the People)। वास्तव में जनकेन्द्रित विकास आम लोगों को अपने विश्वास में लेकर किया जाता है। मुरली देसाई (1998) का कहना था कि जनकेन्द्रित विकास वस्तुतः विकास का एक दृष्टिकोण है और इसमें कई विचारधाराओं का समावेश है। इसके अन्तर्गत मानववाद, प्रजातन्त्र, समाजवाद, मानव अधिकार और कई विचारकों की विचारधाराएँ सम्मिलित हैं।

सामाजिक नीति के विभिन्न मॉडल तथा भारतीय परिस्थितियों के लिए उसका प्रयोग (Different Models of Social Policy and their Applicability to the Indian Situation)

2.5 भारतीय योजनाओं में वृद्धि-मॉडल (Growth Models in Indian Planning)

भारत की पंचवर्षीय योजनाएँ स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से विविध वृद्धि-मॉडलों पर आधारित रही हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना हैरैड-डोमर वृद्धि-मॉडल के सरल संप्रयोग पर आधारित थी, और दूसरी योजना का आधार महालनोबिस का चतुःक्षेत्रीय वृद्धि मॉडल था, तथा उसके बाद की योजनाएँ अधिक सुसंस्कृत मॉडलों पर आधारित थीं। किसी भी योजना-मॉडल को सरकारी प्रतिष्ठा नहीं मिली, यह अलग बात है कि लक्ष्य निर्धारित करने के लिए कुछ मॉडल काम में लाए गए। पर पंचम योजना का मॉडल, जो "Approach to the Fifth Five-Year Plan" शीर्षक दस्तावेज़ में विद्यमान रहा, ऐसा था जिसे सरकारी तौर पर मान्यता दी गई। हम आगे उन वृद्धि-मॉडलों की प्रमुख विश्लेषणात्मक विशेषताओं का विश्लेषण कर रहे हैं जो भारतीय योजनाओं में प्रयोग किए गए हैं।

2.6 प्रथम योजना का मॉडल (The First Plan Model)

प्रथम पंचवर्षीय योजना सन् 1952 में शुरू हुई थी। उसका मॉडल हैरड-डोमर वृद्धि मॉडल के सरल संप्रयोग पर आधारित था—

$$\Delta I \frac{1}{\alpha} = I\sigma$$

जहाँ I निवेश की वार्षिक दर को, σ निवेश की सम्भाव्य सामाजिक उत्पादकता को, α सीमान्त बचत-प्रवृत्ति को और ΔI निवेश की बढ़ोत्तरी में व्यक्त करता है।

यह मॉडल स्पष्ट रूप से तो निष्पन्न (work-out) नहीं किया गया था परन्तु प्रथम पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में दृष्ट (perspective) योजना के संख्यात्मक आंकड़ों में सन्निहित था। बाद में, जो समीकरण अर्थशास्त्रियों ने निष्पन्न किए, वे ये थे—

$$I_t = S_t \quad \dots(1)$$

$$S_t = aY_t - b \quad \dots(2)$$

$$Y_t = \alpha K_t \quad \dots(3)$$

$$I_t = K_t \quad \dots(4)$$

जहाँ I_t तो t अवधि में निवेश है, S_t बचत है, Y_t आय है, और K_t तदनुरूप अवधि का पूँजी स्टॉक है। हैरड-डोमर मॉडल में $MPS = APS$; परन्तु इस मॉडल में दोनों के बीच संबंध समीकरण (2) से स्पष्ट होता है जो हैरड-डोमर से भिन्न है। α पूँजी-उत्पादन अनुपात है। इन संबंधों के दिए हुए होने पर, वृद्धि-प्रक्रिया निम्नलिखित समीकरण से प्राप्त होती है—

$$K_t = (K_0 - b/a\alpha) e^{a\alpha t} + b/a\alpha$$

जहाँ $a\alpha$ व्यवस्था की वृद्धि की अनन्तस्पर्शीय (asymptotic) सापेक्ष दर को सूचित करता है।

पूर्व धारणाएँ—यह मॉडल निम्नलिखित पूर्व धारणाओं पर आधारित है—

- (i) औसत बचत-प्रवृत्ति की अपेक्षा सीमान्त बचत प्रवृत्ति अधिक है।
- (ii) सीमान्त पूँजी-उत्पादन अनुपात तथा औसत पूँजी-उत्पादन अनुपात में कोई अन्तर नहीं है।
- (iii) अर्थव्यवस्था बन्द है।
- (iv) कीमतें स्थिर हैं।

योजना के मॉडल में, 1950-51 में निवेश की दर राष्ट्रीय आय का 5% मान ली गई थी, पूँजी उत्पादन अनुपात का मूल्य 3 : 1 लिया गया था और a का मूल्य 20% माना गया था।

इन पूर्ण धारणाओं के दिया हुआ होने पर विचार यह था कि निवेश की दर 1950-51 के राष्ट्रीय आय के 5% से बढ़कर 1955-56 में 7% और 1960-61 में 11% तथा 1967-68 में 20% हो जाएगी। जनसंख्या-वृद्धि की दर 1.25% वार्षिक मान लेने पर, इस मॉडल ने यह भी स्पष्ट किया कि "सीमान्त बचत की प्रस्तावित दरों से किसी भी अवस्था पर प्रति व्यक्ति उपभोग में कोई कमी नहीं होगी, बल्कि उपभोग स्तरों में धीरे-धीरे वृद्धि करने के लिए पर्याप्त शेष रहेगा।" निवेश में बढ़ती और उत्पादन में बढ़ती के बीच दो वर्ष के समय पश्चायन पर आधारित इस मॉडल के गणितीय प्रक्षेपणों (projections) ने यह भी स्पष्ट किया कि 1971-72 तक राष्ट्रीय आय और 1977-78 तक प्रतिव्यक्ति आय दुगुनी हो जाएगी; तथा 1950-51 की तुलना में उपभोग का औसत स्तर 70% बढ़ जाएगा।

यद्यपि बाद में दूसरी पंचवर्षीय योजना में अपनाए गए निवेश के लक्ष्य मोटे तौर पर इस मॉडल में निर्दिष्ट आयामों (dimensions) के अनुरूप थे, तथापि इसने विकास योजना की कई महत्वपूर्ण समस्याओं की उपेक्षा की।

नोट

इसने उन संरचनात्मक कठिनाइयों पर ध्यान नहीं दिया। जिनका सामना किसी अल्पविकसित देश को इच्छित निवेश दिशाओं में बचतें रूपान्तरित करने में करना पड़ता है। फिर, बचत की स्थिर सीमान्त दर की पूर्वधारणा ने कालपर्यन्त योजनाबद्धता की समस्या की उपेक्षा कर दी।

नोट

2.7 दूसरी योजना का मॉडल (The Second Plan Model)

प्रोफेसर महालनोबिस का सितम्बर 1953 का द्विक्षेत्रीय मॉडल दूसरी पंचवर्षीय योजना के चतुःक्षेत्रीय मॉडल के निर्माण का आधार बना। महालनोबिस का द्विक्षेत्रीय मॉडल निम्नलिखित पूर्व धारणाओं पर आधारित था—

- (i) यह बन्द अर्थव्यवस्था से संबंध रखता है जहाँ विदेशीय व्यापार नहीं होता।
- (ii) अर्थव्यवस्था के दो क्षेत्र होते हैं—उपभोक्ता वस्तु-क्षेत्र तथा पूँजी वस्तु क्षेत्र। कोई मध्यवर्ती क्षेत्र नहीं होता। मध्यवर्ती वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों को उन उपभोक्ता वस्तुओं तथा पूँजी वस्तुओं के साथ इकट्ठा कर दिया जाता है जिनके उत्पादन में वे सहायक होते हैं।
- (iii) किसी भी एक क्षेत्र में जब एक बार पूँजी संसार संस्थापित हो जाता है, तो उसमें किसी प्रकार का विचलन नहीं होता। परन्तु पूँजी वस्तु क्षेत्र के उत्पादन दोनों क्षेत्रों में उपकरणों के रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं।
- (iv) उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र एवं पूँजी वस्तु क्षेत्र, दोनों में ही पूर्ण क्षमता के साथ उत्पादन होता है।
- (v) निवेश को पूँजी वस्तुओं की पूर्ति निर्धारित करती है।
- (vi) कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होते।

इन पूर्व धारणाओं के दिया हुआ होने पर, यह मॉडल अर्थव्यवस्था का वृद्धि-पथ निम्नलिखित रूप में स्पष्ट करता है—

$$Y_t = Y_0 \left[1 + \alpha_0 \frac{\lambda_k \beta_k + \lambda_c \beta_c}{\lambda_k \beta_k} \{ (1 + \lambda_k \beta_k) \}^t - 1 \right]$$

जहाँ Y_t = वर्ष t में सकल घरेलू राष्ट्रीय आय;

α_0 = आधार-वर्ष में निवेश की दर;

λ_k = पूँजी वस्तु क्षेत्र में प्रयुक्त शुद्ध निवेश का भाग;

$\lambda_c = I - \lambda_k$ = उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र को जाने वाला शुद्ध निवेश का भाग;

β_k = पूँजी वस्तु क्षेत्र में सीमान्त उत्पादन-पूँजी अनुपात;

β_c = उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र में सीमान्त उत्पादन-पूँजी अनुपात;

इस मॉडल का व्याख्यात्मक मूल्य यह है कि अर्थव्यवस्था में कुल निवेश के दो भाग होते हैं : एक भाग λ_k पूँजी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए (काम में लाया जाता है) और दूसरा भाग λ_c उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए काम में लाया जाता है इस प्रकार, कुल निवेश $\lambda_k + \lambda_c = 1$ है। समीकरण का यह $\frac{\lambda_k \beta_k + \lambda_c \beta_c}{\lambda_k \beta_k}$ अनुपात समस्त पूँजी गुणक है। β_k तथा β_c को दिया हुआ मान लेने पर, आय की वृद्धि-दर α_0 तथा λ_k पर निर्भर करेगी। आगे, α_0 (आधार-वर्ष में निवेश की दर) को स्थिर मान लेने पर, आय की वृद्धि-दर नीति साधन λ_k पर निर्भर करेगी।

यदि $\beta_c > \beta_k$ दिया हो तो इसका मतलब होगा कि उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में जितने प्रतिशत निवेश अधिक होगा, प्रजनित आय भी उतनी ही अधिक होगी। पर, समीकरण का यह व्यंजक $(1 + \lambda_k \beta_k)^t$ बताता है कि समय के क्रान्तिक परास (critical range of time) के बाद, पूँजी वस्तु उद्योगों में निवेश जितना अधिक होगा, प्रजनित आय भी उतनी ही अधिक होगी। प्रारंभ में, λ_k का ऊँचा मूल्य परिमाण $(1 + \lambda_k \beta_k)^t$ को बढ़ाता है, और समस्त

द्वितीय योजना लगभग उसी वृद्धि मॉडल पर आधारित थी, जिस पर कि द्वितीय योजना, परन्तु द्वितीय योजना के निर्माण में अन्तः उद्योग सामंजस्य अधिक था। इस योजना मॉडल में कृषि एवं उद्योग, आर्थिक एवं सामाजिक विकास, राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक विकास को परस्पर निर्भरता और आन्तरिक एवं विदेशी साधन जुटाने पर बल दिया गया। इसमें वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय उन्नति, उत्पादकता का सामान्य स्तर बढ़ाने के तरीकों और जनसंख्या, योजना तथा सामाजिक परिवर्तन से संबंधित नीतियों पर भी बहुत अधिक बल दिया। दूर आर्थिक विकास के लिए वस्तु क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा गया। ठोस पूँजी आधार निर्मित करने और आत्मनिर्भर एवं आत्म-पोषित वृद्धि के लिए, आर्थिक पूँजी वस्तुओं के उत्पादन पर, विशेष रूप से मशीन निर्माण एवं इंजीनियरिंग उद्योगों पर विशेष बल दिया गया। और फिर मॉडल ने नियतों के विस्तार के लिए ठोस आधार के निर्माण का निर्देश किया ताकि आगामी योजनाओं में विदेशी सहायता पर निर्भरता समाप्त की जा सके।

2.8 तृतीय योजना का मॉडल (The Third Plan Model)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के वृद्धि मॉडल के प्रथम योजना के आँकड़ों पर आधारित गणितीय प्रक्षेपण (projections) प्रथम पंचवर्षीय योजना (1975-76) तक ले जाए गए। इसमें 1961-70 के दौरान जनसंख्या वृद्धि की दर 1.30% वार्षिक मानी गई थी। प्रथम योजना में 1.8:1 वास्तविक सामान्य पूँजी-उत्पादन अनुपात के मुकाबले द्वितीय योजना में पूँजी-उत्पादन अनुपात 2.3 : 1 माना गया था जिसका परिणाम रूप में 6,200 करोड़ के निवेश से राष्ट्रीय आय में होने वाली रूप में 2680 करोड़ की बढ़ोतरी के आधार पर किया गया था। मॉडल में निवेश गुणक (α) 1955-56 में 7% रखा गया जिसके 1960-61 में बढ़कर 11% हो जाने की आशा थी। राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी प्रथम योजना के 25% के मुकाबले 1960-61 में 47% अनुमानित की गई थी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के वृद्धि मॉडल के प्रथम योजना के आँकड़ों पर आधारित गणितीय प्रक्षेपण एवं तकनीकी क्षमता बढ़ाई जाए। या कि योजना के अन्तर्गत बढ़ाए जाएँ, मजबूत पूँजी आधार निर्मित किया जाए और अर्थव्यवस्था के भीतर उत्पादक बल (उत्पादन किया जाए ताकि अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे विस्तार करती चले।" इस मॉडल का निहित आशय यह (feedback) प्रक्रिया होगी जिसमें निरन्तर बढ़ती हुई (योजनाबद्ध) माँग के मुकाबले निरन्तर बढ़ता हुआ (योजना) उत्पादन बढ़कर उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति बढ़ाई जाए... इस प्रकार योजनाबद्धता अनिवार्यतः ऐसी परिष्करण उत्पन्न की जाए, और दूसरी ओर नई माँग को पूरा करने के लिए लक्ष्य एवं गृह उद्योगों में यथासंभव निवेश तथा "याही उद्योगों में निवेश बढ़ाए जाएँ और सेवाओं पर भी व्यय बढ़ाया जाए, कय-शक्ति बढ़ाई जाए और नई माँग श्रम-शक्ति को योजना देने की समस्या हल की जाए। महानौवृत्त के अनुसार आधारभूत कर्तव्योक्ति यह थी कि आदि (उत्पादक क्षेत्र। इन दो क्षेत्रों को जोड़ने का उद्देश्य यह था कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान आंतरिक श-लक्ष्य अथवा धरतू उपभोक्ता वस्तु उत्पादक क्षेत्र (जिसमें कृषि भी सम्मिलित है), और सेवा (स्वास्थ्य, शिक्षा का प्राण्य बनाने का आधार बना। पूँजी, वस्तु क्षेत्र तथा उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र के आंतरिक, मॉडल में दो अन्य क्षेत्र यह द्वितीय मॉडल आगे वृद्धि:क्षेत्रीय मॉडल में और भी स्पष्ट किया गया जो कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना वृद्धि दर देगी।

अधिक ऊँची दर अल्पकाल में तो उपयोग के लिए शांति उत्पादन उपलब्ध करायेंगी परन्तु दीर्घकाल में उपयोग की दर (λ^k) के लिए आवश्यक है कि बचत की सीमाना दर भी अपेक्षाकृत ऊँची हो। पूँजी वस्तुओं पर निवेश की सीमाना दर इससे मॉडल का एक महत्वपूर्ण नीतिविवेक अर्थ यह उपलब्ध होता है कि निवेश की अपेक्षाकृत ऊँची दर $\beta^k = \beta^c$ तो समस्त पूँजी गुणक का व्युत्क्रम (reciprocal) $\frac{\lambda^k \beta^k + \lambda^c \beta^c}{\lambda^k \beta^k} = \lambda^k =$ बचत की

ऊँचे मूल्य से आय की वृद्धि-दर अधिक ऊँची हो जाएगी।

पूँजी गुणक $\frac{\lambda^k \beta^k + \lambda^c \beta^c}{\lambda^k \beta^k}$ को गिराना है। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता है, ज्यों-ज्यों दीर्घकाल में λ^k के अधिक

नोट

मार्थिक इकाइयों में उत्पादन के लक्ष्य मॉडल के बाह्य क्षेत्रों से लिए गए थे। वे क्षेत्र में थो-कच्चा लोहा, लोहा तथा इस्पात, मोटर परिवहन, सीमेंट, रासायनिक उर्वरक, अपरिष्कृत तेल, खाद्यान्न, तंबाकू, पटसन, कोयला तथा रेल-क्षेत्र। मॉडल में अपरिष्कृत तेल तथा रबर का उत्पादन बहिर्जनित रूप से निरिचल किया गया था। सामाजिक उपरिचयों तथा आयतों से संबंधित निवेश अंशतः बाह्यजाल तथा अंशतः अन्तर्जाल रखे गए। कुल पारिभाषिक उपयुक्त सरकारी उपयुक्त, तथा निर्धारित जैसे समष्टि-चर (macro-variables) बाह्यजाल ही माने गए।

मदद जिनका अर्थव्यवस्था के वस्तुतः सभी क्षेत्रों में उपयुक्त किया जाता है।" करती है जिन्हें "सार्वभौम मध्यवर्ती वस्तु" कहा जा सकता है-ईंधन, शक्ति, परिवहन और रसायन-अथवा ऐसी आयत-स्थानापन्नता के लिए महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। एक तीसरा और अपेक्षाकृत छोटा क्षेत्र ऐसी मदद का उत्पादन पर। इनमें से पहला क्षेत्र उपयोक्ता वस्तुओं का प्रमुख स्रोत है, और दूसरा क्षेत्र निवेश-वस्तुओं का स्रोत है तथा (plexes) में होते हैं-जिनमें से एक कृषि पर आधारित है और दूसरा खनन, धातुओं, मशीनी और वनीय उत्पादों" चतुष्कोणित ढाँचे पर व्यक्त की जाती थी। "इस प्रकार के अधिकार लेन-देन दो वस्तुतः स्वतंत्र क्षेत्रों (com-क्षेत्रीय योजना कमी-कमी तो निवेश-निर्धारण के त्रिकोणित ढाँचे पर और कमी-कमी लेन-देन सौंचे के आयों के विवरण, बचतों और धरोक्षेत्रों के प्रजनन की ओर परिवर्तन करती है।"

होती है जिससे यह उस परिशीलन मूल्यांकन से अर्थात् रहीं है जो बाजार-अर्थव्यवस्था में उत्पादन प्रक्रिया से बाह्य व्यवस्था पर विचार करते हुए हम वास्तव में यह मानकर चलते हैं कि सरकार के पास पर्याप्त राजकोषीय शक्ति यह है कि क्षेत्रीय उत्पादन स्तरों, आयतों, और निवेश आवश्यक्तताओं के आन्तरिक रूप से समतल सैट निकालें... खुली निरूपण किया जाए और इन्हें व्यक्तित्व वस्तुओं की अन्तिम मशीनों में रूपान्तरित किया जाए फिर मॉडल का कार्य "खुली" किस्म का है। इस लेण करने के लिए पहला कदम यह है कि सकल धरोक्षेत्र आय के प्रमुख अवयवों का आधारित था। वैसाकि इस मॉडल के प्रवर्तकों ने लक्ष्य किया है-यह सामान्य मॉडल "बन्द" किस्म का न होकर, अपने आय में ऐसी क्षेत्रीय सामंजस्य-मॉडल था जो "लियोपॉल्ड" की परम्परागत अन्तः उद्योग "खुली" व्यवस्था पर (consistency model) बनाया। यह मॉडल 1960 की आधार वर्ष तथा 1970 की समालिख वर्ष मानकर चला, तथा मान्य, अर्थिक रर तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने धारण की चतुर्थ योजना के लिए 1965 में एक सामंजस्यपूर्ण मॉडल योजना के वार्षिक लक्ष्य निर्धारित करने के लिए रूपरेखा (ढाँचा) प्रदान करने के उद्देश्य से एलन एस.

2.9 चतुर्थ योजना का मॉडल (The Fourth Plan Model)

अभाव के कारण नीतियों को आधार पहुँचा।" की कमियों के कारण और भी बढ़ गई क्योंकि तालमेल एवं विकास उद्देश्यों के साथ साधक परिवर्तन समूह के परिणामस्वरूप जो असन्तुलन और अदक्षताएँ उत्पन्न हुईं, वे योजना की तकनीक और नीतियों के वार्षिक परिवर्तन बनाया गया था। परिणामतः परिवर्तन निर्माण एवं चयन प्रक्रिया कुछ-कुछ मनाहल बनकर रह गई। इसके लक्ष्य किया था कि "इस समय-व्यापी अथवा किसी निरिचल समय की चयन-संभावनाओं पर ध्यान दिए बिना ही उत्पादन में लगभग 32% की बढ़ोतरी होगी।" प्रतीय योजना के मॉडल पर टिप्पणी करते हुए डॉ. बी. वी. भट्ट ने लगभग 25% बढ़ जायगा, खनन एवं कैक्टरी संस्थानों के शुद्ध उत्पादन में लगभग 82% की और अन्य क्षेत्रों के शुद्ध (1960-61 की कीमतों पर) राष्ट्रीय आय लगभग 34% बढ़ जायगी। कृषि तथा सहबद्ध क्षेत्रों का शुद्ध उत्पादन जायगी। योजना आयोग का कहना था कि "यदि योजना में समन्वित सभी कार्यक्रम समय पर पूरे हो गए, तो की आशा थी। यह पूर्व धारणा थी थी कि बचत दर जो 1960-61 में 8.5% थी, 1965-66 में 11.5% पर पहुँच रहा गया था। निवेश गुणक (α) 1960-61 में 11% लिया गया जिसके 1965-66 में बढ़कर 14-15% हो जाने 2% वार्षिक होगी। सीमान्त पूँजी-उत्पादन अनुपात (β) 2.3 : 1 माना गया अर्थात् वही जो द्वितीय योजना के लिए प्रतीय पंचवर्षीय योजना के मॉडल की पूर्व धारणा थी कि 1961-71 की अवधि में जनसंख्या वृद्धि की दर

नी

नीति निर्माण संबंधी इतिहास

(?) मशीनरी एवं इस्पात के उत्पादन की प्राथमिक रूप से निवेश उद्देश्यों का स्तर, और खाद्यान एवं सूती कपड़े के उत्पादन की पूर्णता: धरेलू उपयोग का उद्देश्य निर्धारित करता है, तथा घरेलूवियम की वस्तुओं एवं बिजली का उत्पादन दोनों पर निर्भर करता है;

(??) जहाँ धातु-आधारित उद्योगों के उत्पादन स्तर आयात स्थानापन्नता कार्थकर्मों से संबंधित पूर्व-धारणाओं से प्रभावित होते हैं, वहीं अन्य क्षेत्रों के उत्पादन स्तर उनसे प्रभावित नहीं होते;

(???) समस्त निवेश का स्तर आयात स्थानापन्नता कार्थकर्म से प्रभावित होने वाला नहीं है।

योजना आयोग द्वारा बनाई गई वृद्धि पंचवर्षीय योजना के मॉडल में 1980-81 तक वृद्धि-वर्षों के गणितीय योजना आयोग द्वारा बनाई गई वृद्धि पंचवर्षीय योजना के मॉडल में 1980-81 तक वृद्धि-वर्षों के गणितीय प्रक्षेपण खींचे गए थे। दीर्घकालीन प्रक्षेपण जनसंख्या संभावनाओं, कृषि उत्पादन की वृद्धि, आन्तरिक बचतें जुटाने, निवेश की दक्षता, आयात एवं निर्यात स्थानापन्नता की वृद्धि के भावी मूल्यांकन पर आधारित थीं। अतः पूर्वधारणा यह थी कि वृद्धि योजना के दौरान जनसंख्या 2.5% वार्षिक दर से बढ़ेगी और उसके बाद निरत हूँ 1980-81 तक 1.7% वार्षिक दर रह जाएगी।

आय तथा निवेश के लक्ष्य इस पूर्वधारणा पर आधारित थे कि पंचम योजना के बाद विदेशी ऋण में कोई महत्वपूर्ण बढ़ोतरी नहीं होगी। इसका अर्थ यह था कि पंचम योजना के बाद आन्तरिक बचतें इतनी बढ़ जाएंगी कि वे निवेश तथा विदेशी ऋण की देनदारियों के वित्त-प्रबंधन की पर्याप्त होंगी, और अर्थव्यवस्था के विदेशी व्यापार अधिषण की मात्रा विदेशी ऋण पर व्याज के बराबर होगी। बाद की उक्त स्थिति में यह पूर्वकल्पना कर ली गई थी कि निर्यात की वृद्धि 7% वार्षिक दर से और खाद्यतैर आयातों की वृद्धि 5.5% वार्षिक दर से होगी।

समग्र उपयोग व्यय के संबंध में यह निकलपण किया गया था कि वह राष्ट्रीय आय की 6% वार्षिक वृद्धि-दर की तुलना में 5.3% वार्षिक दर से बढ़ेगी। विकास संबंधी सांख्यिकीय व्यय के 8-9% वार्षिक दर से और विकासक्षेत्र एवं रक्षा-व्यय के 4-5% प्रतिवर्ष दर से बढ़ने का अनुमान था।

यह भी अनुमान लगाया गया था कि कृषि उत्पादन 5% वार्षिक दर से तथा औद्योगिक उत्पादन 8-10% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ेगा।

योजना के दौरान 5.7% वार्षिक पूर्वानुमानित वृद्धि दर उपलब्ध करने के लिए यह पूर्वानुमान था कि बचत की औसत दर 1968-69 की 8.8% से बढ़ कर 1973-74 में 13.2% हो जाएगी, और उसी अवधि में निवेश की दर 11.2% से 14.5% हो जाएगी। योजना की समस्त अवधि के लिए सीमान्त पूँजी-उत्पादन अनुपात 2.0 मान लिया गया था।

2.10 पंचम योजना का मॉडल (The Fifth Plan Model)

पंचम पंचवर्षीय योजना का मॉडल "A Technical Note on the Approach to the Fifth Plan of India 1974-79" शीर्षक दस्तावेज पर आधारित था जिसमें भारत योजना आयोग के दृष्ट योजना विभाग ने तैयार किया था। यह मॉडल गरीबी हटाएँ और 1979 तक आत्मनिर्भरता लाने के दो उद्देश्यों को लेकर बनाया गया था। मूल योजना का मॉडल 1971-72 की कीमतों पर तैयार किया था, उस प्रारूप योजना का मॉडल 1972-73 की कीमतों पर, जबकि पंचम योजना का मॉडल 1974-75 की कीमतों पर बनाया गया। परन्तु जहाँ तक पंचम योजना के मॉडल का संबंध है, वह ठीक वैसा है जैसा कि "Technical Note on the Approach to the Fifth Plan" में दिया गया है। इसलिए हम आन्तम पंचवर्षीय योजना 1974-79 शीर्षक दस्तावेज में दिए गए प्रक्षेपणों (projections) के प्रकार में योजना के मॉडल की चर्चा करेंगे।

पंचम योजना का मॉडल अर्थव्यवस्था की उन प्रायोगिकीय विधिराशियों को ध्यान में रख कर तैयार किया गया था जो अन्तः उद्योग संबंधों में प्रकट होती हैं। इसके लिए आगम-निर्यात बूँद (input-output matrix) के प्रयोग तथा शैतिक संतुलनों की व्यापक प्रणाली की बकरत थी। यह एक समष्टि आर्थिक 66 क्षेत्रीय आगत-निर्यात

मॉडल या जिसमें उपयोग संबंधी उपमॉडल रखा गया। "धार्मिक संतुलन अवयवों की शृंखला के माध्यम से वस्तुओं के पूर्ति-माँग संतुलन को हल करके और उन्हें आगत-निर्गत मॉडल के माध्यम से उपलब्ध क्षेत्रीय वृद्धि-दर के अनुकूल बना कर एक-एक वस्तु के उत्पादन-स्तर आँके गए। उत्पादन स्तरों की पहचान के लिए कुछ विशिष्ट वस्तुओं के व्यक्तित्व-स्तर पर कुछ स्वतंत्र अध्ययन भी किए गए।"

उपभोक्ता अनुपालन व्यूह तैयार करने के लिए उन उपभोक्ता-व्यय आँकड़ों को आधार बनाया गया जो राष्ट्रीय सँमल सर्वेक्षण के 25वें वृत्त (1970-71) के वस्तुओं तथा परिमाण वर्गों से और उसके बाद वस्तुओं तथा सेवाओं के विभिन्न समूहों पर होने वाले निजी उपयोग व्यय के अनुमानों से प्राप्त हुए।

आयातों के लिए तरतुज्या व्यूह एक विस्तारित आगत-निर्गत व्यूह के अंग रूप में निर्मित किए गए, जबकि निर्यातों को बाह्यजगत रूप से आँका गया। सांख्यिक उपयोग के संबंध में अनुमान था कि वह औसतन 10% वार्षिक दर से बढ़ेगा, जबकि आयातों के 8.5% वार्षिक दर से बढ़ने का अनुमान था। योजना के अन्तिम वर्ष 1979 में निजी उपयोग तथा आयातों की बहुवर्षीय रूप से आँका गया था। प्रथम योजना के लिए परिकल्पित कुल निवेश व्यय योजना की अवधि पूर्वानुमान समुचित ढंग से अवस्थाबद्ध कर दिया गया था।

अन्तिम वर्ष के लिए 66 क्षेत्रीय सामंजसपूर्ण आगत-निर्गत मॉडल हल करके वृद्धि की समस्त दर से मेल रखने वाली वृद्धि की परस्पर-संगत क्षेत्रीय दरें निकाल ली गई थीं। इन प्रक्षेपणों में महत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए आयात-स्थानानुगत उस सीमा तक परिकल्पित कर ली गई थी जिस तक कि थोड़े अर्थव्यवस्था की उत्पादन संभावनाएँ तथा क्षमता उपयोग अनुमत देते थे "जहाँ तक विस्तारणात्मक उद्देश्य का संबंध था, वृद्धि-मॉडल के अनेक विभिन्न-रूप आजमाए गए थे। परन्तु दो आधारभूत विभिन्न-रूपों पर विशेष बल दिया गया था, जिन में से प्रत्येक एक सीमाकारी स्थिति प्रकट करता था। एक तो 1968-69 वर्ष के आर्थिक असमानता गणक से प्रथम योजना के अन्तिम वर्ष तक के बाह्यजगत पर आधारित था। दूसरा इस गणक की उस परिकल्पित कमी पर आधारित था जो योजना उद्देश्य की शब्दावली में 1978-79 तक गरीबी हटाने के लिए जनसंख्या के लिए आवश्यक औसत प्रति व्यक्ति उपयोग में कम से कम 30% बढ़ोतरी के अनुकूल हो। दूसरा रूप ही अपनाया गया। अन्तिम वर्ष के लिए सामंजस्य मॉडल के अधिमार्गित विभिन्न रूप के समाधान वेक्टर की आधार वर्ष वेक्टर से तुलना करके विभिन्न क्षेत्रों की वृद्धि की औसत वार्षिक दरें निर्धारित की गई थीं।"

प्रथम प्रवर्षीय योजना के अन्तिम दस्तावेज में निकाली गई वृद्धि की क्षेत्रीय दरें उन दरों से कुछ-कुछ भिन्न थीं जो पहले Technical Note और योजना प्रारूप में निकाली गई थीं। इनमें जो अन्तर थे उनके प्रमुख कारण दो थे : (i) 1971-72, 1972-73, तथा 1974-75 के बीच विभिन्न वस्तुओं के कीमत-स्तर में विषय परिवर्तन; (ii) 1973-74 के लिए उत्पादन के परिष्कृत अनुमान; (iii) 1973-74 और 1978-79 के निर्यातों के अपेक्षित ऊँचे अनुमान; और (iv) प्राथमिकताओं में कुछ समायोजन जो हमारे कुछ प्रमुख आयातों की विषय-कीमतों में तीव्र बढ़ोतरी के कारण आवश्यक हो गए थे।

परिणामतः अनुमान यह लगाया गया कि कुल निवेश के 91% के लिए निवृत्त धन प्रबंध धरोख्त खातों से किया जाएगा। समग्र निर्यातों का लगभग 58% सांख्यिक क्षेत्र के लिए और 42% निजी क्षेत्र के लिए परिकल्पित था। समग्र धरोख्त बचतों में से 27% का योगदान सांख्यिक क्षेत्र से आँका गया था, जिसमें सरकारी प्रशासन, विभागीय एवं विभागीय उद्यम, तथा सांख्यिक विधीय संस्थाएँ सम्मिलित हैं। शेष 73% के संबंध में यह आशा थी कि वह निजी क्षेत्र से प्राप्त होगा जिसमें निर्मित उद्यम, सहकारी तथा धरोख्त उद्योग संस्थाएँ सम्मिलित हैं। धरोख्त बचतों की औसत दर के संबंध में प्रक्षेपण यह था कि वे 1973-74 की कीमतों पर 1978-79 की कीमतों पर 14.4% दर से बढ़कर 1975-76 की कीमतों पर 1978-79 में 15.9% हो जाएँगी। सांख्यिक बचतों के 1973-74 में GNP के 2.5% से बढ़कर 1978-79 में 4.6% हो जाने की आशा थी, जबकि निजी बचतों के संबंध में अनुमान था कि वे 1973-74 के 11.9% से फिरकर 1978-79 में 11.3% रह जाएँगी।

गलत हो। इसलिए आवश्यकता इस बात की होती है कि हम न केवल नए तथ्यों के सम्बन्ध में अनुसन्धान कर उनके काम ही होती है। ऐसा भी हो सकता है कि एक तथ्य या घटना के सम्बन्ध में हमारा विद्यमान ज्ञान सर्वथा अशुद्ध हो। इसलिए आज एक तथ्य के सम्बन्ध में जो कुछ हमारा ज्ञान है वह आगे चलकर भी खरा बना रहेगा ऐसी सम्भावना है। सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने पर सामाजिक तथ्यों में भी परिवर्तन हो जाता है और विषय में भी ज्ञान की प्राप्ति सामाजिक शोध का उद्देश्य होता है। सामाजिक तथ्य स्थिर या शाश्वत तथ्य नहीं होते या समस्याओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है। केवल नए तथ्यों के विषय में ही नहीं, अपितु पुराने तथ्यों के की वृद्धि के साधन होते हैं। इस दृष्टि से सामाजिक शोध का सैद्धांतिक उद्देश्य सामाजिक जीवन, घटनाओं, तथ्यों (1) सैद्धांतिक उद्देश्य—(अ) केवल सामाजिक शोध ही नहीं, सभी प्रकार के शोध मूल रूप से ज्ञान (applied) पक्ष की भी अवहेलना नहीं की गई है जैसा कि निम्नलिखित विवेचन से स्पष्ट होगा—

प्रथम उद्देश्य पर बल दिया गया है; परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि इन विद्वानों द्वारा सामाजिक शोध के व्यावहारिक अथवा ज्ञान सम्बन्धी उद्देश्य और द्वितीय, व्यावहारिक अथवा प्रयोगवादी उद्देश्य। उपर्युक्त परिभाषाओं में विशेषतया सामाजिक शोध के उद्देश्यों की मटे रीर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—प्रथम, सैद्धांतिक

सामाजिक शोध के उद्देश्य (Objectives of Social Research)

करने की एक वैज्ञानिक विधि है। निम्नलिखित परिभाषाओं से यह बात और भी स्पष्ट हो सकती। तथा उनमें पाए जाने वाले अन्तःसम्बन्धों से होता है। सामाजिक शोध सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में मूल्य की खोज शोध वैज्ञानिक अनुसन्धान का ही एक विशेष रूप है जिसका कि सम्पर्क सामाजिक तथ्यों, घटनाओं, मानवीय क्रियाकलापों की खोजा जाता है अपितु ज्ञान सामाजिक घटनाओं की भी विवेचना या विश्लेषण किया जाता है। इस अर्थ में सामाजिक की सामान्य वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित होती है और उसी पद्धति के द्वारा न केवल अज्ञात सामाजिक घटनाओं में उल्लेखनीय बात यह है कि ज्ञान-प्राप्ति की वह विधि है जो कि निरीक्षण, वर्गीकरण, प्रयोग तथा निष्कर्षकारण में पाए जाने वाले पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में हम नवीन जानकारी प्राप्त करते हैं। सामाजिक शोध के विषय घटनाओं व उनके कारणों के सम्बन्ध में हमें वैज्ञानिक बोध प्राप्त होता है और साथ ही उन घटनाओं व उनके कारणों की ओर संकेत करता है जिसके द्वारा सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान की वृद्धि सम्भव होती है तथा अन्तः अतः स्पष्ट है कि सामाजिक शोध, वैज्ञानिक नियमानुसार, उच्च मानवीय क्रियाकलाप (human activity)

ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयोग में लाई गई वैज्ञानिक विधि सामाजिक शोध है।

और भी संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक घटनाओं या विद्यमान सिद्धान्तों के सम्बन्ध में नवीन या परिष्कृत करते हैं एवम् विभिन्न घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों की उपलब्ध सिद्धान्तों की पुनः परीक्षा करते हैं। जिसके आधार पर सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में हम नवीन ज्ञान की प्राप्ति करते हैं या विद्यमान ज्ञान को विस्तृत दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक शोध वह क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन-विधि है

तथा जिसकी सहायता से अनुसन्धान किए गए विषय का संस्थापन सम्भव हो।

यथार्थ विधि का उपयोग है। यह यथार्थ विधि इस प्रकार की होती जाहिए जो कि वैज्ञानिक शोधों को पूरी करती हो परीक्षा करने, नवीन घटनाओं की खोजने या कतिपय घटनाओं के बीच नवीन सम्बन्धों की खोजने के उद्देश्य से किसी इस दृष्टिकोण से सामाजिक शोध का अर्थ किसी सामाजिक समस्या का सुलझाने या किसी प्राक्कल्पना की

है जो उसे सामाजिक शोध कहते हैं।

सम्बन्ध निश्चित किया जाता है। यही दोनों तत्व यदि सामाजिक तथ्यों के सम्बन्ध में किए गए अनुसन्धान से विद्यमान है—कारण वशाना—जिसके द्वारा इन तथ्यों का अर्थ, उनका पारस्परिक सम्बन्ध एवं विद्यमान वैज्ञानिक ज्ञान से उनका निरीक्षण—इसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से देखकर हम कतिपय तथ्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं। दूसरा—तत्व वैज्ञानिक होते हैं जिनमें वैज्ञानिक शोध के दो आवश्यक तत्व अवश्य विद्यमान हैं—इनमें से प्रथम तत्व है मानव-क्रिया के सभी क्षेत्रों में शोध का अर्थ ज्ञान तथा बोध की निरन्तर खोज है। परन्तु वही ज्ञान व बोध

2.11 सामाजिक शोध का योगदान (The Contribution of Social Research)

हो सके; वह वह जो एक सिद्धांत के निर्माण में या एक कला को व्यवहार में लाने के काम में सहायक हो।
अध्ययन, विपरीतवर्णन व प्रत्यक्षीकरण करने की एक पद्धति है जिससे कि "ज्ञान का विस्तार, शुद्धिकरण या पुनःपरीक्षा
प्राप्त करना है।" इसी की दृष्टि रखते हैं इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध सामाजिक जीवन का
उद्देश्य-वाहक वह वास्तविक जीवन का समझना और तदनुसार उस पर अधिक नियंत्रण
प्राप्त; उसका विस्तार व पुनःपरीक्षा है। श्रौमती युग (Young) ने लिखा है, "सामाजिक शोध का प्राथमिक
समाज-सुधारकी, राष्ट्र-नेताओं तथा प्रशासकों का होता है। सामाजिक शोध का काम व उद्देश्य तो केवल ज्ञान की
के लिए सामाजिक समस्याओं की सुलझाने या योजना बनाने के लिए ज्ञान का उपयोग नहीं करता; यह काम
सामान्य सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान को व्यावहारिक रूप देने से नहीं होता है। वह स्वयं किसी व्यावहारिक कार्य
इस सम्बन्ध में यह स्पष्टतया समर्थ है कि सामाजिक शोधकर्ता (social researcher) का कोई भी

निष्कर्षोपयोगी ज्ञान ही सामाजिक शोध से ही प्राप्त हो सकता है।
में शोधकर्ता के वैज्ञानिक शोध से ही प्राप्त हो सकता है। जबकि हमें उस प्रथा से सम्बद्ध अन्य परिस्थितियों व कारणों का सही ज्ञान ही। इस प्रकार का
नेते या देते की बुरी प्रथा को एक सामाजिक अधिनियम (social legislation) पारित करके हटाने की अवस्था
में ही जिनका अधिक ज्ञान होता है। उतना उतना अधिक प्रभावपूर्ण होगा से हम उस पर नियंत्रण या सख्तता प्रकृत कर देते हैं।
जाएगा। उदाहरणार्थ, विद्यालय-वर्ग में अन्तर्निहित प्रक्रिया, उनके विचारों, भावनाओं व आचरणप्रणालियों के सम्बन्ध में
है कि घटना-विशेष पर हमारा नियंत्रण उतना ही अधिक होता है जितना कि उस घटना के विषय में हमारा ज्ञान बढ़ता
जाता है। सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान सामाजिक नियंत्रण में सहायक सिद्ध हो सकता है। यह मानी हुई बात

देकर समाज का बड़ा कल्याण कर सकता है।
सामाजिक जीवन के उपर्युक्त विषयों के सम्बन्ध में हमें वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त न हो। सामाजिक शोध हमें यह ज्ञान
ही उपनान में निकाल भी सकता है। योजनाओं में अपनाने का यह पुट जाना तब तक सम्भव नहीं है जब तक
भावनाओं, इच्छाओं, आशाओं तथा आकांक्षाओं का ऐसा समावेश हो कि जनता उन योजनाओं को अपना समर्थकर
है कि योजनाओं को इस धारणा पर प्रस्तुत किया जाए कि उनमें जनता के सामान्य सामाजिक मनीषाओं, विचारों,
तक पूरा नहीं हो सकता जब तक जनता का सहयोग प्राप्त न हो। यह कैसे सम्भव है? इसका सरल उत्तर यह
व व्यावहारिक बनाने में सहायक सिद्ध होती है। परन्तु योजनाओं की सिद्धि के द्वारा जनता की समझ का सफा तब
पक्षों व समस्याओं की कारण सहित व्याख्या प्रस्तुत करता है। ये दोनों ही बातें योजना की आधिकाधिक प्रभावपूर्ण
शोध हमें विभिन्न सामाजिक घटनाओं में अन्तर्निहित नियमों से परिचित कराता है और सामाजिक जीवन के विभिन्न
तक प्राप्त हो सकता है। इन दोनों बातों के लिए सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान उपयोगी सिद्ध होता है। सामाजिक
गया है और द्वितीय यह है कि उस योजना को क्रियान्वित करने में जन सहयोग (public cooperation) किस सीमा
की सफलता से बाधों पर निर्भर करती है-प्रथम तो यह कि योजना को कितने प्रभावपूर्ण व व्यावहारिक ढंग से बनाया
योजना समाज की पुनर्जातिव करती है और उसमें महत्वपूर्ण व युगान्वित परिवर्तन लाती है। पर सामाजिक योजनाओं
(ग) सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान सामाजिक योजनाओं को बनाने में मदद कर सकता है। सामाजिक

अन्तर्विषयों तथा गलत धारणाओं को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।
प्रतिशोधन बनाना कदापि सम्भव नहीं है। सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान सामाजिक जीवन में जड़ पकड़े हुए अनेक
संज्ञान आदि के सम्बन्ध में भी अनेक गलत धारणाएँ प्रचलित हैं। इनकी दूर किए बिना सामाजिक जीवन को
प्रचलित कर लाया निर्दोष यद्दिव्यो के प्राण लिए उससे तो संसार परिचित हो है। इसी प्रकार जालि, राष्ट्र, विवाह,
की कल्पना की गई और नाजियों (Nazis) ने 'आर्य' प्रजाति की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में जिस कल्पित-कथा को
यह समझते रहे कि प्रजाति का सम्बन्ध भाषा, धर्म, संस्कृति या राष्ट्र से है। इसी गलत आधार पर प्रजाति की श्रेष्ठता
धारणा सामाजिक तनाव को जन्म देती है। उदाहरणार्थ, 'प्रजाति' की धारणा को ही लीजिए। अनेक दिनों तक लोग
संज्ञान की बनाए रखने में मदद कर सकते हैं। अनेक बार सामाजिक घटनाओं या तथ्यों के सम्बन्ध में हमारी गलत
(ख) सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान, सामाजिक तनाव (social tensions) को दूर करके, सामाजिक

समस्याओं को सुलझाना केवल सम्बन्ध ही नहीं अपितु सरल भी हो जाता है।
प्राप्त होता है इस ज्ञान की सहायता से राष्ट्रिय नेता, समाजसुधारक तथा विभिन्न प्रशासकों के लिए आधुनिक जटिल
के लिए इनके सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है और यह ज्ञान हमें सामाजिक शोध से सरलतमार्गवक

2.12 पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका (Role of Professional Social Workers)

नोट

किसी भी कार्यक्रम की सफलता लोगों द्वारा इसकी स्वीकृति पर निर्भर करती है। जब तक समस्त समुदाय कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं होगा और इसे अपना कार्यक्रम नहीं समझेगा तब तक वांछित परिणाम कठिन होंगे।

पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ताओं के माध्यम से यह सम्भव हो सकता है क्योंकि जन साधारण के साथ इनके घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं। बड़े परिवार और अधिक लड़के होने के पक्षधर विश्वासों को समाप्त करने, महिला साक्षरता में सुधार करने में, लड़कियों की विवाह आयु में वृद्धि करने में, नवजात शिशु की आवश्यक देखभाल करने में, बच्चों के जन्म में फासला बनाने में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। ऐसे कार्यकर्ताओं के पास न केवल दूरस्थ स्थानों तक पहुँचने की क्षमता होती है बल्कि उनके क्रियाकलाप मूल्य-प्रभावी भी होते हैं। परिवार कल्याण विभाग ने गत वर्षों से परिवार कल्याण कार्यक्रम में पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ताओं की बेहतर भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए कई योजनाएँ चलाई हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं—1. जनसंख्या नियंत्रण और छोटे परिवार प्रतिमान को प्रोत्साहित करने के लिए योजना के मूल्य का 90 प्रतिशत तक कार्यकर्ताओं की सहायता करना। 2. इन योजनाओं को चलाने के लिए इन कार्यकर्ताओं वाले स्वैच्छिक संगठनों को आगे आने का आग्रह करने के लिए सरकार द्वारा विस्तृत प्रचार करना। 3. इन संगठनों की भागीदारी बढ़ाने हेतु गत चार पाँच वर्षों में क्षेत्रीय कान्फ्रेंस कराना। 4. (दिल्ली, मुम्बई, कोलकता, चेन्नई और लखनऊ में) छः बड़े संगठनों को उनके क्षेत्रों में छोटे संगठनों की पहचान करने तथा उनकी योजनाओं की स्वीकृति पर अनुदान देने के लिए उनकी योजनाओं की स्वीकृति पर अनुदान देने के लिए 'मदर यूनिट्स' के रूप में मान्यता देना। 5. परिवार कल्याण सचिव की अध्यक्षता में 'स्वैच्छिक कार्यो पर राज्य स्थाई समितियों' (State Standing Committees) की स्थापना करना जिनको प्रति योजना दस लाख रुपये तक मंजूरी का अधिकार है। 6. स्वास्थ्य कर्मियों को प्रशिक्षण देने हेतु पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ताओं के क्षेत्र में एक संस्था की पहचान करने के लिए राज्यों से कहना। 7. कम सामुदायिक भागीदारी वाले राज्यों में से अच्छा कार्य करने वाले राज्यों में जाने के लिए इनके संगठनों के लिए अध्ययन यात्रा का प्रबन्ध करना।

पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ताओं वाले संगठन निम्नलिखित कार्य कर सकते हैं—1. सलाह और सेवाएँ सरलता से उपलब्ध कराना, विशेष रूप से अल्प-सेवित (under-served) क्षेत्रों में; 2. अस्पतालों और स्वास्थ्य गाइडों के साथ समन्वय करना; 3. कार्यकर्ताओं (functionaries) को प्रशिक्षित करना, विशेष रूप से निम्न स्तरीय कार्यकर्ताओं को; 4. गर्भ निरोधक विधियों की लगातार पूर्ति में सहायक होना; 5. स्वीकारकर्ता (acceptors) को अनुसरण सेवाएँ (follow-up-services) प्रदान करना; और 6. शैक्षिक क्रियाकलापों को अधिक प्रभावी बनाने में योगदान करना।

परिवार नियोजन कार्यक्रमों में इन संगठनों के प्रभावी सिद्ध न होने के निम्न कारण हैं—1. कई संगठन सरकारी सहायता अनुदान योजनाओं से अनभिज्ञ हैं। 2. अनुदान प्राप्त करने के लिए प्रार्थना पत्र प्रक्रिया बड़ी लम्बी और पेचीदा है। 3. छोटे कस्बों में काम करने वाले संगठन अनुदान एजेंसियों तक कम पहुँच पाते हैं। 4. संगठनों के प्रति सरकारी अधिकारियों का रूख सहयोग का होता है। 5. संगठनों के पास कोष तथा प्रशिक्षण देने वाले व्यक्तियों की कमी होती है।

2.13 हित समूह अथवा दबाव गुटों की भूमिका (Role of Interest or Pressure Groups)

राजनीति में 'हित समूह' (Interest Group) कोई नया विचार या सिद्धांत नहीं है। सन् 1908 में आर्थर बेंटले (Arthur Bentley) की पुस्तक 'दि प्रोसेस ऑफ गवर्नमेंट' (The process of Government) प्रकाशित हुई थी जिसमें उसने अनौपचारिक प्रक्रियाओं (चुनाव, मतदान-आचरण, दबाव गुट व मंजदूर आंदोलन) पर

अधिक अवसर होते हैं।

ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस और अन्य लोकतंत्रीय देशों में दबाव गुटों के पास सरकारी निधियों को प्रभावित करने के का कड़ा नियंत्रण होता है। इसलिए गानाशाही व्यवस्था में दबाव गुटों की सक्रियता बहुत कम है। इसके ठीक विपरीत है या गानाशाही; अथवा वहाँ संसदीय शासन है या अध्यक्षीय। गानाशाही शासन में सभी गुटों और वर्गों पर सरकार (Government) - दबाव गुटों की गतिविधि इस बात पर बहुत निर्भर करती है कि एक देश में लोकतंत्रीय सरकार

2. उनके कार्यों पर शासनपद्धति का प्रभाव (Their activities are shaped by the nature of Government) को रक्षा करते हैं।

1. विशेष हित (Particular Interest) - दबाव गुटों के उद्देश्य बहुत सीमित होते हैं। राजनीतिक दलों को बहुत-से मामलों के सम्बन्ध में अपनी नीतियाँ तय करनी पड़ती हैं। इसके ठीक विपरीत प्रत्येक दबाव गुट का एक विशेष हित होता है। बैंक यूनिवर्स अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ती है, जबकि कृषक सब किसानों के हितों

उपरोक्त परिभाषाओं से हित समूहों की प्रकृति भी स्पष्ट हो जाती है। संक्षेप में, उनकी विशेषताएँ इस प्रकार

(Nature and Characteristics of the Interest Groups)

हित समूहों की प्रकृति और लक्ष्य

होते हैं और जो सरकारी विभागों के निधियों को प्रभावित करते हैं।"

3. मैकेन्जी (McKenzie) ने दबाव गुटों को इस प्रकार परिभाषित किया है, "वे संगठित समूह जिनकी बाकायदा एक संरचना (कायदा, कर्मचारी व अफसरशाही) होती है, जिसके सदस्यों के कुछ साझे हित करने की कोशिश करे ताकि उसके अपने हितों की रक्षा और उन्नति हो सके।"

2. पीटर ओडेगार्ड (Peter Odegard) के अनुसार, "दबाव गुट ऐसे व्यक्तियों का औपचारिक संगठन है जिसके एक या एक से अधिक उद्देश्य या हित हो और जो विभिन्न घटनाओं को इसलिए प्रभावित

1. एच. ज़ीगलर (H. Zeigler) के शब्दों में "दबाव गुट उस 'संगठित समूह' को कहते हैं, जो अपने सदस्यों को सरकारी जगहों पर बैठाने के बजाए सरकारी निधियों को प्रभावित करने की कोशिश करता है।" दूसरे शब्दों में, दबाव गुट स्वयं सरकार नहीं बनाता चाहते, पर वे सरकारी नीतियों को बदलने का प्रयास अवश्य करते हैं।

कुछ लेखकों के अनुसार 'दबाव गुट' से यह ध्यान निकलती है कि विभिन्न संघ व समुदाय अपने हितों को पूर्ण के लिए अर्न्तवित साधनों का प्रयोग करते हैं और सरकार पर लगातार दबाव डालते रहते हैं। इसलिए ये लेखक 'दबाव गुट' (Pressure Group) के स्थान पर 'हित समूह' (Interest Group) कहना ज्यादा पसंद करते हैं। एम.ई. फाइजर ने 'दबाव गुटों' के लिए 'लॉबी' (Lobby) शब्द का प्रयोग किया है, पर साथ ही उसने यह भी कहा है कि "इस क्षेत्र में सर्वाधिक प्रचलित शब्द 'दबाव गुट' या 'हित समूह' है।" वास्तव में, राजनीति के अधिकतर विद्वान-जीवन ब्लौडेल, रॉबर्ट बोन और माइरन बीनर-इन विभिन्न शब्दों का एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग करते लगे हैं। 'हित समूह' अथवा 'दबाव गुट' की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

(What is meant by Interest Group or Pressure Group?)

हित समूह अथवा दबाव गुट का क्या अर्थ है?

वे सरकारी निधियों को अपने पक्ष में करने की कोशिश करते हैं। आते हैं। वे समुदाय या गुट संसद-सदस्यों, मंत्रियों, सरकारी पदाधिकारियों और राजनीतिक दलों से संपर्क करते हैं।

यूनिवर्स, बैंक कर्मचारी संघ तथा छात्र और अध्यापक संगठन, ये सब 'हित समूहों' या 'दबाव गुटों' की श्रेणी में सरकार की नीतियों के निर्धारण में एक विशेष भूमिका निभाते हैं। औद्योगिक संघ, मजदूर यूनिवर्स, किसान संघ, रेलवे के बार राजनीतिक विचारकों का ध्यान हित समूहों की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। कारण यह है कि ये समूह अधिक और औपचारिक संस्थाओं (विधानमंडल, कार्यपालिका व न्यायपालिका) पर कम जोर दिया। प्रथम महायुद्ध

नीति

संबंध रखते हैं। इसके ठीक विपरीत राजनीतिक दलों में सभी वर्गों, मजहबों और व्यवसायों के व्यक्ति होते हैं।

(iii) सदस्यता (Membership)—आमतौर पर दबाव गुटों के सदस्य किसी खास वर्ग या व्यवसाय से अपनी माँगें पूरा करते हैं और सीमित वर्गों में दिलचस्पी रखते हैं। नीति तथा शिक्षा, स्वास्थ्य और सांस्कृतिक मामलों। इसके विपरीत दबाव गुटों के उद्देश्य बहुत सीमित होते हैं। वे सीधे अपनी नीतियाँ तय करनी पड़ती हैं। उनका संबंध सभी प्रकार की चीजों से है, जैसे गृह नीति, विदेश नीति, अर्थ (ii) नीति-निर्धारण (Formulation of Policies)—राजनीतिक दलों को अनेक मामलों के संबंध में रक्षा करते हैं।

(2) लक्ष्य (Aim)—राजनीतिक दलों का लक्ष्य राजसत्ता को हाथियाँ है, जबकि दबाव गुट केवल राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। दबाव गुट तो केवल अपने सदस्यों के अधिकारों की से विचार किया जा सकता है—

दबाव गुटों और राजनीतिक दलों के बीच कुछ स्पष्ट भेद दिखाई पड़ते हैं। इन भेदों पर तीन दृष्टिकोणों

2.14 दबाव गुट और राजनीतिक दल के बीच भेद (Distinction between Pressure Groups and Political Parties)

द्वितीय, दबाव गुट प्रचार-साधनों का प्रयोग करके जनमत को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। तृतीय, दबाव गुटों और राजनीतिक दलों के बीच महत्व संबंध देखने को मिलता है। इंग्लैंड में ट्रेड यूनियनों प्रायः लैबर पार्टी का समर्थन करती हैं और चुनावों के समय लैबर पार्टी (मजदूर दल) के उम्मीदवारों को धन भी देती हैं। स्वीडन की बोफोर्स कंपनी ने तीर्थों का आर्डर पाने के लिए 64 करोड़ रुपये की दलाली दी। दलाली किस नीति या अफसर ने दी, यह आज तक एक रहस्य का विषय बना हुआ है।

5. दबाव गुटों के तौर-तरीके (Techniques employed by the Pressure Groups)—प्रथम, दबाव गुटों का यह प्रयत्न रहता है कि मंत्रियों और सरकारी अधिकारियों से संपर्क स्थापित करें। वे संसद-सदस्यों से भी संपर्क स्थापित करने की कोशिश करते हैं। इसके लिए वे बहुत बकालों और एजेंटों की सेवाएँ प्रयोग में लाते हैं। वे सर्वाधिक अधिकारियों को पत्र लिखते हैं, गार भेजते हैं और याचिकाएँ देते हैं।

4. दबाव गुटों पर आर्थिक नीति का प्रभाव (Pressure Group activity depends upon the Economic System)—अमेरिका एक पूँजीवादी देश है। उत्पादन और वितरण के साधनों पर वहाँ पूँजीपतियों का नियंत्रण पाया जाता है। इसलिए वहाँ पूँजीपति वर्ग भी बहुत शक्तिशाली है तथा मजदूरों की भी बड़ी-बड़ी यूनियनों हैं। अमेरिका में व्यापार-मंडल (Chamber of Commerce) तथा उत्पादक संघ बहुत बड़े हित समूह (Big Interests Groups) समझते जाते हैं, जो सरकार पर विशेष रूप से दबाव डालते रहते हैं। इसके विपरीत जिन देशों में समाजवादी नीतियाँ अपनाई जा रही हैं वहाँ उद्योगपतियों को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है।

3. हित समूहों के आचरण पर दलीय पद्धति का प्रभाव (Their behaviour depends upon the Party System)—दबाव गुटों पर दलीय पद्धति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। बहुदलीय व्यवस्था में सरकारें अस्थिर होती हैं तथा कई दलों के मेल-जोल से सरकारों का गठन होता है। ऐसी स्थिति में दबाव गुटों को बन आती है। शक्तिशाली औद्योगिक संगठन तथा मजदूर यूनियनों विभिन्न दलों के नेताओं से सौदेबाजी करती हैं। कभी वे एक दल को अपना समर्थन देती हैं तो कभी दूसरे दल को। दबाव गुट अपनी माँगियों के जरिए सरकार को भ्रष्ट करने की कोशिश करते हैं। इंग्लैंड में हिदलीय पद्धति है तथा संसद-सदस्य पार्टी-अनुशासन में बंधे होते हैं। दबाव गुटों के प्रति उनका अच्छा रव्य हो सकता है, पर वे अपने नेताओं की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते। एक दल पद्धति का अर्थ यह है कि देश में केवल एक ही राजनीतिक दल होता है। फ्रांसिस देशों में नागरिक स्वतंत्रताएँ बहुत सीमित होती हैं। अतः दबाव गुटों की स्वतंत्रता भी कठोरतापूर्वक काट-छूट दी जाती है।

नीट

भारत के विभिन्न नगरों में इस समय बैंक, रेलवे, बीमा निगम, सरकारी कार्यालयों और बिजली व जल-आपूर्ति में लगे हुए कर्मचारियों की जो यूनियन हैं, वे उपरोक्त अखिल भारतीय संगठनों में से किसी एक के साथ संबद्ध हैं। इन संगठनों ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम (National Security Act) तथा आवश्यक सेवाओं की बनाए रखने वाले अधिनियम (Essential Services Maintenance Act) तथा आवश्यक सेवाओं की बनाए

रखने वाले मजदूर संगठन का नाम 'भारतीय मजदूर दल' है। सेंटर ऑफ इंडियन ट्रेड यूनियंस (CITU) पर वामपंथी दलों ने 'हिंद मजदूर संघ' (Hind Majdoor Sabha) की स्थापना की तथा भारतीय जनता पार्टी का समर्थन करने से जना गया। अन्य राजनीतिक दलों के भी अपने-अलग-अलग मजदूर संगठन हैं। उदाहरण के लिए, समाजवादीयों ने मजदूरों का एक दूसरा केंद्रीय संगठन खड़ा किया जो 'इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस' (INTUC) के नाम 'आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' (AITUC) पर पूरी तरह से वामपंथियों का कब्जा हो गया। 1948 में कांग्रेस उदार राजनेताओं के हाथों में रहा। उसके बाद ट्रेड यूनियनों में कम्युनिस्टों का नेतृत्व विकसित हुआ। 1929 तक लगभग एक दशक तक 'आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' का नेतृत्व एन.एम. जोशी और सी.आर. दास जैसे

जोड़ना और श्रमिकों के आर्थिक व सामाजिक हितों की आगे बढ़ाना था।
Trade Union Congress) की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य सभी मजदूर संगठनों के कार्यों को एक-दूसरे से जोड़ना था। 1920 में लाला लाजपत राय और एन.एम. जोशी के प्रयास से 'आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' (All India Congress) की स्थापना की गई। इसी समय मजदूर संघों की स्थापना का प्रयास किया जा रहा था। भारत में मजदूर आंदोलन मुख्य रूप से प्रथम विश्व युद्ध के बाद शुरू हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन के फिलसफे में 1918 व 1920 के दौरान मुंबई, कानपुर, कलकत्ता, जमशेदपुर, बंबई और अहमदाबाद (Bargaining) करना है। भारत में मजदूर आंदोलन मुख्य रूप से प्रथम विश्व युद्ध के बाद शुरू हुआ। राष्ट्रीय सरकार और प्रबंधकों से मजदूरों की दायें, कार्य की शर्तों और अन्य कल्याण-कार्यों के बारे में बातचीत व सौदेबाजी

मजदूरों और कर्मचारियों को 'मजदूर संघ' या 'श्रमिक संघ' कहते हैं। इनका प्रमुख उद्देश्य मिल-मालिकों, मजदूर संघ (Trade Unions)

के उत्थान और आयात-निर्गत करों के बारे में सरकार को अपने सुझाव भेजने हैं।
श्री रक्षा करती है। ये संगठन सरकार की औद्योगिक नीति को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। साथ ही, वस्तुओं की कीमतों, डालिया और हिंदुस्तान लीबरर्स, आदि-का भी प्रतिनिधित्व करती है और छोटे निर्माताओं के हितों की रक्षा करती है। भारत के लघु निर्माताओं व उत्प्रेरकों के केंद्रीय संगठन का नाम 'अखिल भारतीय निर्माता संघ' (All India Manufacturers Organisation) है। फिककी बड़े-बड़े व्यापारिक घरानों-टाटा, बिड़ला, गोयनका, के उत्थान और आयात-निर्गत करों के बारे में सरकार को अपने सुझाव भेजने हैं।

भारत के लघु निर्माताओं व उत्प्रेरकों के केंद्रीय संगठन का नाम 'अखिल भारतीय निर्माता संघ' (All India Manufacturers Organisation) है। फिककी बड़े-बड़े व्यापारिक घरानों-टाटा, बिड़ला, गोयनका, के उत्थान और आयात-निर्गत करों के बारे में सरकार को अपने सुझाव भेजने हैं।
Chambers of Commerce and Industry) अर्थात् 'फिककी' (FICCI) कहते हैं। इसका प्रथम कार्यालय संगठन द्वारा आरम्भ में चूड़े हुए हैं, जिससे 'भारतीय वाणिज्य और उद्योग मंडल संघ' (Federation of Indian Chambers of Commerce) का गठन किया। भारत के विभिन्न वाणिज्य मंडल एक केंद्रीय व्यापारियों तक ही सीमित थीं। भारतीयों ने अपने व्यापारिक हितों की रक्षा के लिए 1887 में 'भारतीय वाणिज्य कलकत्ता 'वाणिज्य मंडल' (Chamber of Commerce) की स्थापना की गई, जिसकी सदस्यता केवल अंग्रेजों तक ही सीमित थी। भारत में 1830 में एक 'व्यापारी संघ' (Traders Association) का गठन हो गया था। 1834 में है। कारण यह है कि उनके पास काफी वित्तीय साधन होते हैं, जिनके माध्यम से वे अपने हितों की रक्षा कर सकते हैं। भारत में मुक्त या निश्चित अर्थव्यवस्था होती है, वहाँ व्यापारिक समूह बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते

व्यापारिक समूह (The Business Groups)
सकता। उद्देश्य या हितों की दृष्टि से भारत में दबाव गुटों को निर्मूलनिष्ठ बर्गों में विभाजित किया जा सकता है। दबाव गुटों की संख्या बहुत अधिक है। इसलिए उनके वर्गीकरण का कोई एक निश्चित आधार नहीं हो

2.15 भारत में दबाव गुट (Pressure Groups in India)

नोट

अध्ययक, छात्र और कर्मचारी संगठन (Teachers, Students and Karamcharis' Groups)

स्कूल, कॉलेज व विरवविद्यालयों में जो लोग शिक्षण कार्य कर रहे हैं, या कार्यालयों व पुस्तकालयों में सेवारत हैं, उनके भी बहुत से संघ व संगठन हैं। ये लोग अपने कार्य की शर्तों वतनमान, पदोन्नति और नौकरी की सुरक्षा के बारे में सचेत हैं और उसके लिए संघर्ष भी करते हैं। 1991 में विरवविद्यालय अनुदान आयोग (संशोधन) विधेयक राज्य सभा में पेश किया गया। देश के सभी केंद्रीय विरवविद्यालयों के शिक्षक और कर्मचारी इस विधेयक के विरुद्ध थे, क्योंकि विधेयक में यह व्यवस्था है कि शिक्षकों, कर्मचारियों, व अधिकारियों की सेवाशर्तें तय करने का अधिकार केंद्रीय सरकार और विरवविद्यालय अनुदान आयोग को प्राप्त हो जाएगा। शिक्षकों और कर्मचारियों का कहना है कि इस विधेयक से विरवविद्यालय की स्वायत्तता समाप्त हो जाएगी और वे सरकारी नौकरियों का शिकार बन जाएंगे।

70 प्रतिशत भाग आज भी खेती पर आश्रित है। इसलिए इन समस्याओं का समाधान जरूरी है। का किसान महमत है—फसल का उचित दाम, उचित खेत मजदूरी और कर्जों से मुक्ति। देश की आबादी का करीब की है। उत्तर प्रदेश के किसानों की समस्या गाने की कीमत की है। फिर भी, तीन ऐसी मांगें हैं, जिन पर देश भर महाराष्ट्र और गुजरात के किसानों की समस्या कपास के समर्थन मूल्य की है तो पंजाब की समस्या सरकारी खेती विरुद्ध है, पर देश की राजनीति नहीं चला सकती। दूसरे, हर प्रदेश के किसान आंदोलन का एक बीसा स्वरूप नहीं है। पार्टी का भविष्य उज्वल नहीं दिखता। सिर्फ किसानों के हितों की बात करके आप एक दबाव गुट तो बना सकते कर रहे थे। 425 संरक्षणीय विधानसभा में इस पार्टी की सिर्फ 8 सीटें मिली थीं। वास्तव में इस तरह की किसी भी भारतीय किसान कानगार पार्टी (BKKP) गठित की गई, जिसका नेतृत्व चौधरी अजीत सिंह और महेंद्र सिंह टिकैत सिंह टिकैत की योजना किसानों की एक अलग पार्टी बनाने की थी। उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों के ठीक पहले मार्च 1996 में महेंद्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में दिल्ली में एक विशाल किसान रैली आयोजित की गई। महेंद्र आयोजित की गई, जिसमें पंजाब, महाराष्ट्र और गुजरात से बहुत बड़ी संख्या में लोग आये।

कर रहे थे। 2 अक्टूबर, 1989 को दिल्ली में बोट क्लब पर किसानों और जवानों की एक विशाल 'पंचायत' 1987 में उत्तर प्रदेश के किसानों ने शामली (मुष्करनगर) में एक जबरदस्त रैली की। इसका नेतृत्व महेंद्र सिंह टिकैत आंदोलन कर्नाटक, आंध्र और महाराष्ट्र तक फैल गया। महाराष्ट्र में आंदोलन का नेतृत्व शारद जोशी कर रहे थे। श्री-सिवाई दरो में कमी की जाए, कर्जों को माफ किया जाए तथा कृषि-उत्पाद का उचित मूल्य मिले। बाद में यह में किसान आंदोलन चला, जो पूरी तरह से एक गैर-राजनीतिक आंदोलन था। आंदोलनकारियों की मुख्य मांगें फिखले कुछ वर्षों के दौरान भारत में पुनः किसान आंदोलन होने लगे हैं। लगभग 20 वर्ष पहले तमिलनाडु औद्योगिक नगरों, जैसे मुंबई, अहमदाबाद व कोलकाता में हजारों मजदूर एक ही लालकार पर खड़े हो सकते हैं। मुश्किल काम है, क्योंकि गाँव काफी दूर-दूर तथा एक-दूसरे से अलग-थलग होते हैं। इसके विपरीत बड़े-बड़े जहाँ उन्हें ज्ञान-विज्ञान के संपर्क में आने के ज्यादा अवसर मिलते हैं। द्वितीय, किसानों को संगठित करना बहुत किसान स्वभाव से कठिनाई होता है। उसे गाँवों में रहकर काम करना पड़ता है, जबकि मजदूर नगरों में रहते हैं, भारत में मजदूर आंदोलन के मुकाबले किसान आंदोलन बहुत स्थिति रहता है। इसके दो कारण हैं। प्रथम, किसान संगठन उत्पत्तीय थे।

की गई। 1937 में प्रांतीय विधान सभाओं के लिए जो चुनाव हुए उनमें कांग्रेस की विजय के लिए काफी दूर तक सभा की नींव डाली गई। 1935 में ही अखिल भारतीय किसान सभा (All India Kisan Sabha) की स्थापना एक बहुत बड़ा आंदोलन (1928-29) किया था। 1927 में बिहार किसान सभा और 1935 में उत्तर प्रदेश किसान किसानों ने लगान देने से मना कर दिया। गुजरात में बारदोली जिले के किसानों ने बल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में प्रथम महाराष्ट्र के बारे में भी जागृत आई। 1919 के असहयोग आंदोलन के दौरान कई जातों पर

किसान संगठन (The Peasant's Organisations)

कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए जाएं। इस समय कई मजदूर संगठन सरकार की नई आर्थिक नीतियों का विरोध कर रहे हैं। वे इस बात के खिलाफ हैं कि इन अधिनियमों के तहत कर्मचारियों को नजरबंद करके मजदूर आंदोलन को दबाने का प्रयास किया जा रहा है। रखने वाले अधिनियम (Essential Services Maintenance Act) का मसूदा विरोध किया। उनका कहना था

नीति निर्माण संबंधी दृष्टिकोण

गोट

1936 में एक आल इंडिया स्टूडेंट्स फेडरेशन (All India Students Federation) की स्थापना की गई, जिस पर धीरे-धीरे कम्युनिस्टों का नियंत्रण हो गया। स्टूडेंट्स फेडरेशन ऑफ इंडिया (SFI) का नेतृत्व मार्क्सवादी पार्टी कर रही है। इस समय कांग्रेस से संबंधित छात्र संगठन का नाम भारतीय राष्ट्रीय छात्र संगठन-आई (NSUI) है। 'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्' (ABVP) पहले जनसंघ का समर्थन किया करती थी और अब वह भारतीय जनता पार्टी की पक्षधर है। जनता विद्यार्थी मोर्चा भी भारतीय जनता पार्टी का समर्थन करता है।

- नोट

जातीय, सांप्रदायिक, भाषाई और धार्मिक समूह

(Caste, Community, Linguistic and Religious Groups)

जातीय और सांप्रदायिक समूह वे हैं जिनके सदस्य किसी विशेष जाति या कबीले से संबंधित हैं। भारत में अनेक ऐसे समूह हैं जिन्हें हम जातीय अथवा सांप्रदायिक गुटों के अंतर्गत रखेंगे। आंध्र में केम्मा जाति के लोग, कर्नाटक में लिंगायत, केरल में ईसाई और मुसलमान, बंगाल में गोरखे और बिहार में भूमिहर व शोषित जातियों के लोग बराबर यह माँग करते आ रहे हैं कि शिक्षा संस्थाओं और सरकारी नौकरियों में उनके लिए कुछ स्थान आरक्षित किए जाएँ। जातीय और मजहबी हितों की रक्षा के लिए जो दबाव गुट इस समय विद्यमान हैं उनमें इनके नाम उल्लेखनीय हैं—वैश्य महासभा, पारसी अंजुमन, यंगमैन्स क्रिस्चियन एसोसिएशन (Young Men's Christian Association—YMCA), सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा सनातन धर्म सभा। 'अनुसूचित जाति संघ' (Scheduled Castes Federation) अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा करता है। प्रो. माइनर (Myron Weiner) ने तो अकाली दल के विभिन्न धड़ों को भी दबाव गुटों की ही संज्ञा दी है, हालांकि ये राजनीतिक पार्टियाँ हैं और बाकायदा चुनावों में हिस्सा लेती हैं।

भाषाई और सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए भी बहुत-से हित समूह विद्यमान हैं, जैसे, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, तमिल संघ, अंजुमन-ए-तरक्की उर्दू तथा साहित्य अकादमी, आदि।

जनकल्याण व जनसेवा संबंधी समुदाय (Welfare Societies and Social Service Groups)

अंत में, हम उन समुदायों का वर्णन करेंगे जो किसी खास वर्ग, जाति या मजहब से संबंध नहीं रखते। वे किन्हीं खास सिद्धांतों, आदर्शों या जीवन-मूल्यों के लिए यत्नशील हैं। भारत में छुआछूत, बाल-विवाह, देहेज-प्रथा और बच्चों की बलि दे देने जैसी कुप्रथाएँ विद्यमान रही हैं। समय-समय पर ऐसे समुदायों व संघों का निर्माण किया गया जो अंधविश्वास और अज्ञान के विरुद्ध अभियान चलाएँ। इस समय कई ऐसे संगठन विद्यमान हैं जो महिलाओं, बुढ़ों, आदिवासियों और समाज के पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए कार्य कर रहे हैं, जैसे सर्वेट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी और भारतीय आदिम जाति संघ।

2.16 दबाव गुटों की भूमिका और प्रभाव

(Role and Impact of the Pressure Groups)

दबाव गुट सरकार की नीतियों को प्रभावित करते हैं तथा जनमत को संगठित करते हैं। वे अपनी मांगों को जनता, सरकार और नेताओं तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं ताकि जो कानून या नीतियाँ बनें वे उनके अनुकूल हों। इसके मुख्य कार्य इस प्रकार हैं—

1. विधायकों पर दबाव डालते हैं (Interest Groups apply pressure upon Legislature)—दबाव गुट विधि-निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इसके लिए वे विधानमंडल के सदस्यों तक अपनी मांगें पहुँचाते हैं। आमतौर पर मजदूरों के वेतन या कार्य के घंटों पर कोई निर्णय लेने से पहले श्रम-मंत्रालय 'मजदूर यूनियनों' से विचार-विमर्श करता है। श्रमिक यूनियनों 'अस्पताल और अन्य संस्थाओं संबंधी विधेयक' (Hospital and Other Institutions Bill) का पुरजोर विरोध करती रही हैं, क्योंकि इस विधेयक द्वारा कई संस्थाओं में 'हड़ताल' को अवैध ठहराया गया है।

संसद सदस्यों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए दबाव गुट बहुत-से तरीके अपनाते हैं। संसद सदस्यों से उनके प्रतिनिधि मिलते हैं, उन्हें तार व पत्र भेजते हैं तथा संसद भवन के समीप प्रदर्शन-रैलियाँ की जाती हैं।

दबाव गुटों की भूमिका का मूल्यांकन (Assessment of the Role of Pressure Groups)

दबाव गुट काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, पर उनके कार्यों की कुछ आधारों पर आलोचना की जाती है। प्रथम, दबाव गुट घुसखोरी या अन्य माजियाँ के जरिए पदाधिकारियों को भ्रष्ट करने की कोशिश करते हैं। नरसिंह राव के शासनकाल के दौरान रेल मंत्रालय पर अनेक सौदों में अनियमितता बरते जाने के आरोप लगे। शहीदी विकास

उन्हें हड़ताल करनी पड़े तो जनमत उनके खिलाफ न हो।

सेवाओं में लगे हुए लोगों की अपनी बात जनता तक पहुँचाना बहुत जरूरी है। ऐसा वे इसलिए करते हैं कि यदि मांगों को जनता तक पहुँचा सकें। बैंक भूतियाँ, यातायात और परिवहन सेवाएँ तथा बिजली और पानी जैसी आवश्यक प्रभावित कर पाता है। प्रचार-साधनों के बड़े जाने के कारण दबाव गुटों के लिए अब यह संभव है कि वे अपनी Opinion)-फिर्ती भी दबाव गुट की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह जनमत को किस सीमा तक Public mobilize (Pressure Groups turn to करने का प्रयास (Public Opinion)-फिर्ती भी दबाव गुट की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह जनमत को किस सीमा तक

6. जनमत को अपने पक्ष में करने का प्रयास (Pressure Groups mobilize Public Opinion)-फिर्ती भी दबाव गुट की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह जनमत को किस सीमा तक

विद्यमान है। व्यापार मंडल और मजदूर संघ कई बार कानूनों को अदालतों में चुनौती देते हैं।

सक्रियता बहुत सीमित है। परंतु कर-प्रणाली, वोटन नीति तथा कर्मचारियों की सेवा शर्तों के संबंध में बहुत से कानून Courts also)-न्यायपालिका कृष्णिक स्थायीन होती है, इसलिए न्यायपालिका के सदस्य में दबाव गुटों की

5. दबाव गुटों को न्यायपालिका की शरण में जाना पड़ता है (The Pressure Groups turn to Courts also)-न्यायपालिका कृष्णिक स्थायीन होती है, इसलिए न्यायपालिका के सदस्य में दबाव गुटों की

हो जाते हैं कि दबाव गुटों के हितों की रक्षा करें।

है अथवा उनके द्वारा प्रकाशित स्मृतिकाओं में विज्ञापन देती है। इस प्रकार राजनीतिक दल इस बात के लिए विवश

कर्मचारी पाठियों की मजदूर सेवाओं की सक्रिय सहयोगिता मिलती है। अन्य राजनीतिक दलों की भी कर्पणियाँ चला देती

करते हैं। चुनावों के समय वे दलों या उम्मीदवारों को चंदे के रूप में भारी रकम देते हैं। भारत में माकसंबादी व

Activities)-बड़े-बड़े औद्योगिक घराने तथा मजदूर संघ राजनीतिक दलों की नीति को प्रभावित करने की कोशिश

4. राजनीतिक दलों की गतिविधियों में सक्रिय योगदान (Groups carry on Political Activities)-बड़े-बड़े औद्योगिक घराने तथा मजदूर संघ राजनीतिक दलों की नीति को प्रभावित करने की कोशिश

करते हैं।

गुट उच्च पदाधिकारियों तक पहुँचने के लिए बड़े शांतिशाली और चतुर लोगों की सेवाएँ हासिल करने की कोशिश

करने के लिए ऐसे लोगों की नियुक्त किया जाए तो किसी समय उच्च सरकारी पदों पर आसिन शं। वास्तव में, दबाव

दबाव गुटों के प्रतिनिधि अधिकारी वगैरे से मिल-जोल बढ़ाते हैं। उनका यह प्रयास होता है कि पदाधिकारियों से संपर्क

3. सरकारी पदाधिकारियों पर दबाव (Interest Groups pressurize the Administrators)-

को प्रभावित करने की कोशिश करेंगी।

उपयोगिता बाजार पर भी कब्जा करने की कोशिश कर रही है इसके लिए वे निरवय ही संवर्धित मंत्रालयों के निर्णयों

विकास के लिए देश-विदेश की निजी पूँजी का स्वागत किया जा रहा है। विदेशी बहुराष्ट्रीय कर्पणियाँ भारत के

भारतीय उद्योगों की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार किया जा रहा है। बिजली, सड़क, संचार, आदि क्षेत्रों के

अपना योगदान करती रहेंगी। 1995 में औद्योगिक नीति को उदार बनाया गया। अब सरकारी नियंत्रण को समाप्त करके

प्रतिष्ठा ही खरीद सकेंगी। उन्होंने यह भी कहा कि सरकारी विधीय संस्थाएँ कर्पणियों में स्थिरता कायम रखने में

में विफलता ने यह स्पष्ट किया कि अग्रवासी भारतीय फिर्ती भी कर्पणों की कुल शीघ्र पूँजी का अधिकतम गाँव

कानून बनाए जाएँ जिससे अग्रवासी भारतीय उनकी कर्पणियों का अधिग्रहण न कर सकें। फलस्वरूप, मई, 1983

बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों ने इस खतरों की घंटी समझा और सरकार के ऊपर यह दबाव डाला कि इस तरह के

भागी संस्था में दो भारतीय कर्पणियाँ, एरकोटर्स तथा फिर्ती कलाथ एंड जनरल फिर्ती के शीघ्र खरीदें। भारत के सभी

उससे एक निश्चित सीमा तक ही लाभ उठा सकते हैं। पिछले दशक के शुरू में अतिवासी भारतीय स्वराजपाल ने

महत्वपूर्ण नीति पर पूरे मंत्रिमंडल की सहमति आवश्यक है। इसलिए दबाव गुट फिर्ती एक मंत्री को प्रभावित करके

के प्रतिनिधि उनसे साठ-गाठ करने की कोशिश करते हैं। जैसे मंत्रियों के सामूहिक उत्तरदायित्व के कारण प्रत्येक

निर्देशन व जापान आदि संसदीय पद्धति वाले देशों में वास्तविक सत्ता मंत्रियों के हाथों में रहती है। इसलिए दबाव गुटों

2. मंत्रियों को प्रभावित करने का प्रयास (Groups seek to influence the Ministers)-भारत,

नीति

नीति निर्माण संबंधी दृष्टिकोण

मंत्रालय के विरुद्ध भी बहुत सारे मामले प्रकाश में आए। भूतपूर्व प्रधानमंत्रियों के एक नवदीकी रिश्तेदार और बिहार के एक सांसद के पुत्र यूरिया घोटाले में फंसे। यूरिया का एक दाना भी आयात हुए बिना ही एक बड़ी राशि विदेशी कंपनी को दे दी गई।

छात्र विद्यार्थियों के लिए

1. दबाव गूट और राजनीतिक दल के बीच क्या भेद है? समझाइये।

2. गैर सरकारी संस्थाओं की क्या भूमिका है? स्पष्ट करें।

3. सामाजिक शोध की उपयोगिता या महत्व क्या है? उल्लेख करें।

2.17 सारांश (Summary)

- इस दृष्टिकोण से सामाजिक शोध का अर्थ किसी सामाजिक समस्या को सुलझाने या किसी प्राक्करण की परीक्षा करने, नवीन घटनाओं को खोजने या कतिपय घटनाओं के बीच नवीन सम्बन्धों को ढूँढने के उद्देश्य से किसी यथार्थ विधि का उपयोग है।
- अनुसन्धान से बोध प्राप्त होता है और वास्तविक शोध ज्ञान का स्रोतक है।
- किसी भी कार्यक्रम की सफलता लोगों द्वारा इसकी स्वीकृति पर निर्भर करती है।

नीति

नोट

- राजनीति में 'हित समूह' (Interest Group) कोई नया विचार या सिद्धांत नहीं है।
- दबाव गुटों की संख्या बहुत अधिक है। इसलिए उनके वर्गीकरण का कोई एक निश्चित आधार नहीं हो सकता।
- दबाव गुट सरकार की नीतियों को प्रभावित करते हैं तथा जनमत को संगठित करते हैं। वे अपनी मांगों को जनता, सरकार और नेताओं तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं।
- ऋण से दबे हुए व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा निम्न होती है। उसे पग-पग पर सामाजिक आपदाओं का मुकाबला करना होता है।
- क्षेत्रीय योजना कभी-कभी तो निवेश-निर्भरता के त्रिकोणीय ढाँचे पर और कभी-कभी लेन-देन साँचे के चतुष्कोणीय ढाँचे पर व्यक्त की जाती थी।

अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)

1. गरीबी किसे कहते हैं?
2. विकास किसे कहते हैं?
3. एकताबद्ध, एकीकृत एवं क्षेत्रीय सामाजिक नीति के नीति निर्माणक दृष्टिकोण क्या-क्या हैं?
4. दबाव गुटों की भूमिका और प्रभाव के बारे में आप क्या जानते हैं?
5. हित समूह अथवा दबाव गुट का क्या अर्थ है?

संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. Samajik Niyantaran Evam Parivartan : Srivastava and Srivastava, S.N., Publishers.
2. Bharatiya Samajik Sanstha : Prakash Narayan Natani, Sublime Publications.
3. Samajik Anusandhan : Ram Ahuja, Rawat Publications.

इकाई-III
(Unit-III)

**ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति
का नीतिगत उद्विकास
(Policies Evolution of Social Policy in
India in a Historical Perspective)**

संरचना (Structure)

- 3.1 उद्देश्य (Objectives)
- 3.2 प्रस्तावना (Introduction)
- 3.3 ब्रिटिश शासनकाल में आर्थिक परिवर्तन (Economic Change under the British Rule)
- 3.4 उपनिवेशवाद और आर्थिक गतिहीनता (Colonialism and Economic Stagnation)
- 3.5 आयोजन की ऐतिहासिक समीक्षा (Historic Review of Planning's)
- 3.6 भारत में लोकतांत्रिक समाजवाद (Democratic Socialism in India)
- 3.7 विकास की रणनीति (Strategy of Development)
- 3.8 भारत की पंचवर्षीय योजनाएँ (Five-Year Plans in India)
- 3.9 शिक्षा (Education)
- 3.10 महिला एवं बाल विकास (Women and Child Development)
- 3.11 महिला एवं बाल कल्याण कार्यक्रम (Women and Child Welfare Programmes)
- 3.12 जनांकिकीय विश्लेषण (Demographic Analysis)
- 3.13 जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion)
- 3.14 जनसंख्या वृद्धि एवं नियंत्रण की सैद्धान्तिक व्याख्याएँ
(Theoretical Explanations of Population Growth and Control)
- 3.15 पिछड़े वर्गों का कल्याण (Welfare of Backward Classes)
- 3.16 अनुसूचित जातियाँ (Scheduled Tribes)
- 3.17 जनजातियों का भौगोलिक वितरण (Geographical Distribution of Tribes)
- 3.18 जनजातीय समाज की समस्याएँ (Problems of Tribal Society)
- 3.19 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जनजातीय विकास के प्रयास
(Tribal Development Efforts after Independence)
- 3.20 स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण (Health and Family Welfares)

नोट

- 3.21 पर्यावरण हास का अर्थ व प्रक्रिया (Meaning of Environmental Degradation)
- 3.22 पारिस्थितिकी हास (Ecology Decline)
- 3.23 पर्यावरणीय प्रदूषण (Environmental Pollution)
- 3.24 वायु प्रदूषण (Air Pollution)
- 3.25 जल प्रदूषण (Water Pollution)
- 3.26 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)
- 3.27 ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)
- 3.28 विकिरण प्रदूषण (Radiation Pollution)
- 3.29 पर्यावरण संरक्षण में राज्य की भूमिका (Role of State in Environmental Protection)
- 3.30 विशिष्ट प्रतिबन्धित सुरक्षित परियोजना क्षेत्र (Special Restricted Safe Project)
- 3.31 भारतीय सन्दर्भ में वन संरक्षण (Forest Protection in Indian Context)
- 3.32 पादप एवं वन संरक्षण (Plant and Forest Conservation)
- 3.33 वन शिक्षा एवं शोध से सम्बद्ध संस्थान
(Forest Education and Research Related Institute)
- 3.34 भारत में प्रदूषण नियन्त्रण की नीतियां (Policy of Pollution Control in India)
- 3.35 पर्यावरण संरक्षण-जन-सामान्य की भूमिका एवं पर्यावरण जागरूकता
(Environment Protection-Peoples Role and Environment Awareness)
- 3.36 वाटरशेड विकास कार्यक्रम एवं संयुक्त वन प्रबन्धन
(Watersheds Development Programme and Joint Forest Management)
- 3.37 शहरी एवं ग्रामीण विकास, आवास तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, महिला, युवा एवं क्षेत्रीय कार्यक्रम
(Urban and Rular Development, Housing and Poverty Alleviation Programme, Woman, Youth and Regional Programme)
- 3.38 शहरी विकास के लिए कार्यक्रम (Programmes for Urban Development)
- 3.39 पर्यावरण (Environment)
- 3.40 आवास एवं गंदी बस्तियाँ (Housing and Slums)
- 3.41 सारांश (Summary)
 - अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

3.1 उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- ब्रिटिश शासन काल में आर्थिक परिवर्तन की जानकारी प्राप्त होगी।
- उपनिवेशवाद, आर्थिक गतिहीनता और आयोजन की ऐतिहासिक समीक्षा की जानकारी प्राप्त की जा सकेगी।
- जनजातियों का भौगोलिक वितरण, जनजातीय समाज की समस्याओं की जानकारी होगी।
- स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, पर्यावरण हास का अर्थ व प्रक्रिया की विशेष जानकारी प्राप्त होगी।

नोट

ब्रिटिश शासन काल में भारत में आर्थिक विकास नहीं हुआ, यह राष्ट्रवादी इतिहासकारों का मत है, लेकिन इसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त आंकड़ों का अभाव है। विश्वसनीय आंकड़ों के अभाव में हमें फुटकर तथ्यों के आधार पर ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचना होगा।

राष्ट्रीय आय सम्बन्धी अनुमान (Estimates of national income)—भारत में आजादी से पहले राष्ट्रीय आय के आंकड़े व्यवस्थित रूप से एकत्रित नहीं किए जाते थे। सच यह है कि भारत के ब्रिटिश शासक यह नहीं चाहते थे कि भारतीयों को इस तरह के कोई प्रमाण मिलें जिनसे इस बात की पुष्टि हो कि भारतीय अर्थव्यवस्था गतिहीन थी। इसके अलावा उनकी स्वयं भारत के आर्थिक विकास में किसी तरह की दिलचस्पी नहीं थी। लेकिन ब्रिटिश काल में विभिन्न वर्षों में राष्ट्रीय आय मालूम करने के लिए कुछ व्यक्तियों ने राष्ट्रीय आय के अनुमान लगाए हैं। इनमें दादाभाई नौरोजी का कार्य काफी महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय आय सम्बन्धी आंकड़े सबसे पहले उन्होंने दिए। उन्होंने 1876 में ब्रिटिश भारत के लिए 1867-68 में राष्ट्रीय आय के अनुमान दिए। इसके बाद विभिन्न वर्षों के लिए राष्ट्रीय आय के सरकारी और गैर-सरकारी अनुमान मिलते हैं। एटकिंसन (Atkinson) ने 1875 और 1895 के लिए प्रतिव्यक्ति आय का अनुमान लगाया था। 1882 में प्रतिव्यक्ति आय का अनुमान भारत की ब्रिटिश सरकार के लिए मेजर ईवलिन बेरिंग (Major Evelyn Baring) और डेविड बार्बर (David Barbour) ने लगाया था। इसी तरह सरकार के लिए 1901 में प्रतिव्यक्ति आय का अनुमान कर्जन (Curzon) ने लगाया था। इनके अलावा होर्न (Horne) ने 1891 और गिफिन (Giffen) ने 1903 के लिए प्रति व्यक्ति आय के अनुमान लगाए हैं।

इन सभी अनुमानों के सांख्यिकीय और सैद्धान्तिक आधार बहुत कमजोर हैं। ये न केवल अपर्याप्त आंकड़ों पर आधारित हैं बल्कि इनकी मान्यताएं और अनुमान के ढंग भी अलग-अलग हैं। इसलिए इनके आधार पर ठोस निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। वी. के. आर. वी. राव ने इन आंकड़ों में आवश्यक संशोधन करके उन्हें तुलनात्मक अध्ययन के लिए ज्यादा उपयोगी बनाने का प्रयास किया है। मोनु मुकर्जी ने इन्हें 1948-49 की कीमतों के आधार पर समायोजित कर निम्नलिखित सारणी के रूप में प्रस्तुत किया है—

सारणी 3.1 समायोजित प्रति व्यक्ति आय

अनुमानकर्ता	वर्ष	प्रति व्यक्ति आय चालू वर्ष की कीमतों पर (रुपये)	प्रति व्यक्ति आय 1948-49 की कीमतों पर (रुपये)
नौरोजी	1867-68	23.5	142
एटकिंसन	1875	24.4	172
बेरिंग और बार्बर	1881	27.0	184
होर्न	1891	28.0	158
एटकिंसन	1895	31.5	178
कर्जन	1901	30.0	148
गिफिन	1903	30.0	167

Source : M. Mukerji "National Income", in V.B. Singh (ed.), *Economic History of India 1857-1956* (New Delhi, 1965), p. 672.

मोनु मुकर्जी के अनुसार ये अनुमान सांख्यिकीय दृष्टि से बहुत कमजोर हैं। इन्हें तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी बनाने के लिए जिन थोक कीमत सूचकांकों का प्रयोग किया गया है वे भी बहुत विश्वसनीय नहीं हैं। इसलिए इनके आधार पर किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुंच पाना सम्भव नहीं है। लेकिन यदि इनसे कोई निष्कर्ष निकालना ही हो तो हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम पैंतीस वर्षों में प्रति व्यक्ति

जनसंख्या का व्यावसायिक आधार पर वितरण (Occupational distribution of population)—अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादितों अधिक होती है। इसलिए देश में जनसंख्या के को गुलना में विनिर्माण उद्योगों और सेवा क्षेत्र में श्रम की उत्पादितों अधिक होती है। इसलिए देश में जनसंख्या के व्यावसायिक आधार पर वितरण से आर्थिक विकास के स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रायः वे सभी देशों विनिर्माण में खड़ी लानों का मुख्य व्यवसाय है, अल्प-विकसित है। इसलिए यदि किसी देश में जनसंख्या अंतरण (transfer) कृषि क्षेत्र से उद्योगों और यंत्रणा, बैंकिंग, व्यापार आदि क्षेत्रों को हो रहा है तो हम यह कह सकते

की गुलना में आधे से भी कम थी।

1916 से 1928 के बीच तो हालत इतनी खराब थी कि इन वर्षों में दोनों ही तरह के श्रमिकों की मजदूरी 1807 पर 1807 की गुलना में 1938 में कुशल और अकुशल दोनों ही तरह के श्रमिकों की मजदूरी 27-29 प्रतिशत कम उत्तर प्रदेश) के लिए 1600 से 1938 तक के वास्तविक मजदूरी के सूचकांक तैयार किए हैं। इन अनुमानों के आधार पर (वर्तमान मजदूरी) आंकड़े नहीं मिलते। राधाकमल मुकुर्जी ने समस्त ऐतिहासिक सामग्री को जुटाकर संयुक्त प्रान्त (वर्तमान में आर्थिक विकास के स्तर को प्रकट करती है। लेकिन भारत में सम्पूर्ण ब्रिटिश काल में वास्तविक मजदूरी से वास्तविक मजदूरी की प्रवृत्तियाँ (Trends in real wages)—वास्तविक मजदूरी के स्तर और प्रवृत्तियाँ

कि अंग्रेजी शासन काल में व्यापक स्तर पर गरीबी एक ऐसी वास्तविकता थी जिससे इनकार नहीं किया जा सकता। के पूरे वर्ष बीतने पर भी एक बार भरपट भोजन नहीं कर पाती।" ये दोनों ही उद्धरण इस बात की पुष्टि करते हैं एलिजट टिप्पणी करते हुए लिखा था, "मुझे यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि आधी खोलेर जनता पूरे में लिखता है, "भारत की चालीस करोड़ आबादी अत्यन्त भोजन पर जीवन निर्वाह करती है।" इसी तरह सर चार्ल्स ने, जो अपने समय का भारतीय सामाजिक तथा आर्थिक मामलों का प्रकाश विद्वान था, 'इंग्लैंड्स वर्क इन इंडिया' इतिहास लिखा है। इसी तरह के साहित्य में प्रायः दो पुस्तकों से अक्सर उद्धरण दिए जाते हैं। बिलियम विन्सन हंट इतिहासकारों ने आंकड़ों के आधार में ब्रिटिश भारत के आधिकारिकों द्वारा गरीबी के सम्बन्ध में लिखी गई चीजों का आंकड़ों के आधार में ब्रिटिश भारत में गरीबी का आकार क्या था, यह तय कर पाना कठिन है। प्रायः

के लेखन में खूब देखने को मिलते हैं।

लाखों लोग सचमुच ही भूखमरी के कारण मौत के मुँह में जा रहे हैं।" गरीबी के इस तरह के वर्णन उस समय संख्या में प्रति वर्ष वृद्धि हो रही है—एक शोचनीय स्थिति में धंसी हुई भूखमरी के कारण पर खड़ी है और प्रति दशक विना का विषय थी। 1891 में अपने एक प्रस्ताव में काँग्रेस ने पास किया था, "पूरी पांच करोड़ जनता जिसकी दिया। उन्होंने लिखा कि "देश लगातार गरीब और पागु बनता जा रहा है।" गरीबी भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की भी होता है कि अंग्रेजी शासन के अंतर्गत गरीबी बढ़ी। राष्ट्रवादिओं में सबसे पहले इस और दावा माँई नौरोजी ने ध्यान गरीबी के बारे में आंकड़े नहीं मिलते लेकिन सरकारी रजिस्ट्रारों में इस तरह के तथ्यों का उल्लेख है जिससे साबित औपनिवेशिक काल में बढ़ती हुई गरीबी इस देश के आर्थिक फिज्डेपन का ही प्रमाण थी। यद्यपि ब्रिटिश काल में हीना देश के अल्प-विकास का सबसे पक्का सूचक माना जाता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि गरीबी का आकार और स्वरूप (Nature and extent of poverty)—व्यापक स्तर पर गरीबी का

है।

यह निश्चित रूप से कह सकना कठिन है कि ब्रिटिश शासन के अंतिम पचास वर्षों में कोई स्पष्ट विकास हुआ इस अवधि में प्रतिव्यक्ति आय में थोड़ी वृद्धि हुई थी। इन अलग-अलग निष्कर्षों पर ले जाने वाले अनुमानों के कारण के बराबर थी, वहाँ सूर्य व. पटेल के अनुसार वह 1901 की गुलना में कम थी। अरोडा व आंधार के अनुसार व्यक्ति आय गरी थी। लेकिन जहाँ के. मुकुर्जी के अनुसार 1947 में प्रति व्यक्ति आय 1901 में प्रति व्यक्ति आय में प्रतिव्यक्ति आय बढ़ी थी। के. मुकुर्जी और सूर्य व. पटेल के अनुमानों के आधार पर आगे 22 वर्षों में प्रति नौ राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय के अनुमान लगाए हैं। इन सभी के अनुसार बीसवीं शताब्दी के पहले 25 वर्षों राष्ट्रीय आय स्थिर थी। 1901 से 1947 की अवधि के लिए के. मुकुर्जी, सूर्य व. पटेल और अरोडा व आंधार

नीचे

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का निर्माण उद्देश्य

नोट

हैं कि देश में आर्थिक विकास हो रहा है। जब भी किसी देश में जनसंख्या मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर हो और फिर भी उसके व्यावसायिक आधार पर वितरण में उद्योग और सेवा क्षेत्र के पक्ष में किसी तरह का परिवर्तन न हो तो यह इस बात का प्रमाण है कि अर्थव्यवस्था का विकास नहीं हो रहा है। जब कभी जनसंख्या का उद्योगों से कृषि क्षेत्र की ओर अंतरण हो तो समझना चाहिए कि अर्थव्यवस्था पीछे की ओर जा रही है। भारत में संपूर्ण अंग्रेजी शासन काल में जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण के आंकड़े नहीं मिलते। 1881 से पहले तो भारत में कोई जनगणना हुई ही नहीं थी और इसके बाद जनगणना हुई भी तो कई बार विभिन्न वर्गों की परिभाषा बदल जाने के कारण आंकड़ों की तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से उपयोगिता कम ही है। लेकिन इस संबंध में अनेक अर्थशास्त्रियों ने कार्य किया है और उनका प्रायः यही निष्कर्ष है कि 1881 से 1951 के बीच जनसंख्या की कृषि पर निर्भरता बढ़ी है। आंकड़े बताते हैं कि 1881 में लगभग 61 प्रतिशत जनसंख्या कृषि और संबंधित व्यवसायों में लगी थी। इसके बाद धीरे-धीरे कृषि पर जनसंख्या की निर्भरता बढ़ी और 1951 में कृषि पर आश्रित जनसंख्या लगभग 72 प्रतिशत हो गई। यह अंग्रेजी शासन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्प-विकास का सबसे ठोस प्रमाण माना जाता है।

परंपरागत कृषि (Traditional agriculture)—भारत में अंग्रेजी शासनकाल में तकनीकी दृष्टि से कोई खास सुधार नहीं हुआ। इस पूरी अवधि में लकड़ी का हल खेती का मुख्य औजार रहा और शक्ति के साधन के रूप में बैल पर निर्भरता बनी रही। बड़ी संख्या में किसान जीवन निर्वाह के लिए ही खेती करते थे। जहां कहीं थोड़ा-सा कृषि का व्यवसायीकरण हुआ उससे न तो सामान्य किसान की आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन हुआ और न ही ग्राम्य जीवन में किसी तरह का सुधार हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में बड़ी संख्या में अकाल पड़े जिनमें मरने वालों की संख्या लाखों में थी। अकालों की व्यापकता कृषि के अल्प-विकास का पक्का प्रमाण मानी जा सकती है। लम्बे अर्से तक भारत के ब्रिटिश शासकों की ओर से सिंचाई की व्यवस्था को सुधार कर अकाल पर काबू पाने की दिशा में कोई ठोस कार्य नहीं किया गया। केवल बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कुछ नहरों का निर्माण किया गया। इससे कृषि को थोड़ा प्रोत्साहन तो मिला लेकिन खेती में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हो सका।

कमजोर औद्योगिक व्यवस्था (Weak industrial structure)—अंग्रेजों के भारत में आगमन से पूर्व इस देश में दस्तकारी बहुत उन्नत हालत में थी, लेकिन जब ब्रिटिश शासकों की व्यापारिक नीति के फलस्वरूप इंग्लैंड के कारखानों में बना कपड़ा और दूसरी वस्तुएं भारतीय बाजारों में बिकने लगीं तो भारतीय उद्योगों का पतन हो गया। भारी संख्या में रोजगार देने वाले कपड़ा उद्योग के नष्ट होने से बड़ी संख्या में जुलाहे बेरोजगार हो गए। 1911 की जनगणना के अनुसार तो धातु और चमड़े का काम करने वाले लोगों की जनसंख्या में कमी हुई। डी. एच. बकानन (D. H. Buchanan) के अनुसार भारत में बड़ी संख्या में लोग लोहा गलाने का काम करते थे लेकिन सस्ते ढंग से तैयार किये गए यूरोपीय लोहे ने लोहा गलाने के उद्योग को भारी धक्का पहुंचाया और इस काम को करने वाले लोग अकुशल मजदूर बनकर रह गए। अंग्रेजी शासनकाल में उद्योगों के पतन से बहुत सारे औद्योगिक नगर पूरी तरह उजड़ गए। ढाका, मुर्शिदाबाद, सूरत आदि नगरों की आबादी में भारी कमी हुई क्योंकि दस्तकार अपना धंधा छोड़कर गांवों में चले गए। उन्नीसवीं शताब्दी के बाद के वर्षों में सूती कपड़ा और जूट उद्योग विकसित हुए, लेकिन इसके साथ व्यापक स्तर पर औद्योगीकरण की प्रक्रिया शुरू नहीं हुई। बीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी शासन काल के वर्षों में कुछ और उद्योगों की स्थापना की गई लेकिन इससे आर्थिक ढांचे का स्वरूप नहीं बदला। 1947 में जब अंग्रेज भारत छोड़कर गए तो उस समय भी देश की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि प्रधान थी।

संक्षेप में, अंग्रेजी शासन के लगभग दो सौ वर्षों में इस देश की अर्थव्यवस्था का कोई विकास नहीं हुआ। प्रति व्यक्ति आय की स्थिरता, गरीबी में वृद्धि, श्रमिकों की मजदूरी में गिरावट, कृषि का परम्परागत स्वरूप, दस्तकारियों का पतन और उसके बाद अपर्याप्त औद्योगिक विकास इस बात को स्पष्ट करते हैं कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण के कारण भारत की अर्थव्यवस्था का अल्प-विकास हुआ। कुछ अर्थशास्त्री यह मानने से इनकार करते हैं कि अंग्रेजी शासन काल में देश की अर्थव्यवस्था पीछे गई है, लेकिन वे भी यह स्वीकार करते हैं कि इस सम्पूर्ण अवधि में आर्थिक गतिहीनता थी।

3.4 उपनिवेशवाद और आर्थिक गतिहीनता (Colonialism and Economic Stagnation)

भारत के प्राकृतिक संसाधन कम नहीं हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के अलावा अन्य किसी देश के पास भारत जितना लोहा और कोयला नहीं है। संभाव्य जल शक्ति (potential power resources) की दृष्टि से भी उसका स्थान विश्व में तीसरा है। इसलिए यह नहीं माना जा सकता कि भारत का अल्प-विकास संसाधनों की कमी की वजह से है। यही नहीं जब अंग्रेज भारत में आए उस समय यहाँ के उत्पादकों का तकनीकी ज्ञान यूरोप के तकनीकी ज्ञान से कम नहीं था। फिर भारत में आर्थिक गतिहीनता के क्या कारण हैं इसका हम विश्लेषण करेंगे।

दादा भाई नौरोजी, रमेशचन्द्र दत्त और बहुत सारे आर्थिक इतिहासकारों के अनुसार अंग्रेजी शासनकाल में आर्थिक गतिहीनता का मुख्य कारण ब्रिटिश शासकों की नीति थी। जहाँ यूरोप के बहुत सारे देशों, अमरीका और जापान में वहाँ की सरकारों की रचनात्मक (positive) भूमिका के कारण वहाँ के आर्थिक विकास में काफी सहायता मिली वहाँ भारत के ब्रिटिश शासकों ने जानबूझकर वहाँ की अर्थव्यवस्था को तोड़ा, यहाँ से इकट्ठी की गई दौलत का इंग्लैंड को निर्यात किया और वहाँ के आर्थिक विकास में तरह-तरह की बाधाएं डालीं। कुल मिलाकर अंग्रेजों की इन सब कार्यवाहियों की वजह से परम्परागत उद्योगों का पतन हुआ, नए उद्योगों का विकास नहीं हुआ और लोगों की कृषि पर निर्भरता बढ़ी। अनेक विचारकों का मत है कि भारत ब्रिटिश शासन से पहले संक्रांति (transition) की अवस्था में था। यहाँ पर औद्योगिक विकास के साथ-साथ पूंजीपति वर्ग विकसित हो रहा था। यदि भारत पर अंग्रेजों का शासन न होता तो समय के साथ वहाँ पर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ होता। इस विचारधारा के मुख्य प्रतिपादक जवाहरलाल नेहरू, रजनी पाम दत्त और एम. एन. राय थे। डी. आर. गाडगिल के अनुसार शायद ऐसा न होता क्योंकि वहाँ की पुरानी व्यवस्था में ऐसी बहुत-सी बाधाएं थीं जो पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के साथ-साथ औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को पूरा नहीं होने देतीं।

राज्य की नीति में रचनात्मक पहलू (Positive Aspects of the State Policy)

कुल मिलाकर यद्यपि ब्रिटिश शासनकाल में राज्य की भूमिका नकारात्मक (negative) ही रही है फिर भी उसकी नीति में कुछ अच्छे पहलू भी थे। इनसे विकास के लिए अनुकूल वातावरण बन सकता था, बशर्ते सरकारी नीति अन्य दृष्टियों से भारत विरोधी न होती। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत राजनीतिक और प्रशासन की दृष्टि से भारत एक इकाई बन गया। शांति और व्यवस्था की दृष्टि से स्थिति में सुधार हुआ। परिवहन और संचार की सुविधाओं में वृद्धि हुई। इसके अलावा शहरों में रूढ़िवादी विचारों की जगह पश्चिम के उदारवादी (liberal) विचारों का असर बढ़ा। ये सब कारक आर्थिक विकास में पुनरुद्धारक भूमिका (regenerative role) अदा करते हैं। लेकिन यदि राज्य विकास के लिए 'भौतिक आधार' (material foundations) तैयार न करे तो इनके बल पर किसी देश में आर्थिक विकास नहीं हो सकेगा। भारत में यही हुआ। राज्य की शोषणकारी आर्थिक नीति ने विकास के पुराने भौतिक आधार को नष्ट कर दिया और उसकी जगह नए भौतिक आधार को विकसित नहीं होने दिया। नतीजा यह हुआ कि राजनीतिक एकीकरण और स्थिरता, परिवहन व्यवस्था के विकास, उदारवादी शिक्षा के विस्तार और मध्यम वर्ग के उदय जैसे कारक पुनरुद्धारक भूमिका अदा करते हुए आर्थिक विकास के कार्य में कोई ठोस योगदान नहीं कर सके।

3.5 आयोजन की ऐतिहासिक समीक्षा (Historic Review of Planning's)

भारत में आयोजन के कर्णधार जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 1938 में राष्ट्रीय आयोजन समिति (National Planning Committee) नियुक्त की गयी। समिति ने आयोजन के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर कई रिपोर्टें प्रकाशित कीं। चूंकि राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू थे, जो स्वतन्त्र भारत के पहले प्रधानमंत्री बने, अतः इस समिति के विचार परवर्ती आयोजन का आधार बने। राष्ट्रीय आयोजन समिति ने यह मत

नोट

व्यक्त किया कि समस्त मूल उद्योगों और सेवाओं, खनिज साधनों, रेलों, जल-मार्गों, नौ-परिवहन और अन्य सार्वजनिक उपयोगिता वाले उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व या नियंत्रण होना चाहिए तथा यह सिद्धान्त उन बड़े पैमाने के उद्योगों पर भी लागू होना चाहिए जिनमें एकाधिकार कायम होने की संभावना है। समिति ने यह स्पष्ट कर दिया कि कुटीर उद्योगों और बड़े पैमाने के उद्योगों में कोई विरोध नहीं है। आर्थिक विकास के लिए अर्थव्यवस्था का औद्योगिकीकरण आवश्यक है। किन्तु औद्योगिकीकरण का अर्थ यह नहीं कि कुटीर उद्योगों की उपेक्षा की जाए। समिति की यह धारणा थी कि कृषि का समावेश किए बिना राष्ट्रीय आयोजन की कोई भी योजना नहीं बनाई जा सकती। इस समिति ने उचित क्षतिपूर्ति (Compensation) देकर जमींदारी प्रथा के उन्मूलन की सिफारिश की। भूमि के वैयक्तिक स्वामित्व के अधिक फैलाव को स्वीकार करते हुए सहकारी खेती (Cooperative farming) के सिद्धांतों पर खेती करने की सिफारिश की गयी। इनके अतिरिक्त ऊंची कृषि-आय पर आयकर की भांति एक आरोही कर (Progressive Tax) लगाना वांछनीय समझा गया। राष्ट्रीय आयोजन समिति ने दस वर्षों में जनता का जीवन-स्तर दुगुना करना अपना लक्ष्य रखा।

राष्ट्रीय आयोजन समिति के अतिरिक्त आठ उद्योगपतियों ने भारत के आर्थिक विकास के लिए एक योजना तैयार की जो बम्बई योजना (Bombay Plan) के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त आचार्य श्रीमन्नारायण ने जो कि गांधी जी के अनुयायी थे, गांधीवादी योजना (Gandhian Plan) में दस वर्ष की अवधि में न्यूनतम जीवन स्तर उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा। इस योजना में कृषि और उद्योग के एक साथ एवं संतुलित विकास पर बल दिया गया। योजना में कुटीर तथा लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करने का विशेष रूप में उल्लेख किया गया। विश्व-प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री. एन. राय. के जनता योजना (People's Plan) प्रतिपादित की। यह योजना रूसी आयोजन के अनुभव से प्रेरित थी। इसमें सामूहिक या सरकारी खेती (Collective or State Farming) पर बल दिया गया और इसके लिए भूमि के राष्ट्रीयकरण की सिफारिश की गयी। योजना के प्रतिपादक एम. एन. राय ने सोवियत रूस के अनुभव के विपरीत उपभोग-वस्तु उद्योगों के विकास पर बल दिया क्योंकि उनके विकास द्वारा जनता के जीवन-स्तर को शीघ्र उन्नत किया जा सकता था। इन सभी योजनाओं का ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि ये सब कागजी योजनाएं थीं जिन्हें क्रियान्वित नहीं होना था। लेकिन इन योजनाओं ने भारत में आयोजन के विभिन्न आयामों के बारे में सोच को अवश्य प्रोत्साहित किया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने 1950 में योजना आयोग की स्थापना की ताकि देश की भौतिक पूंजी एवं मानवीय संसाधनों (Human Resources) की आवश्यकता का अनुमान लगाया जाए और इनका अधिक सन्तुलित एवं प्रभावी प्रयोग किया जाए। प्रथम पंचवर्षीय योजना 1950-51 में आरम्भ हुई और इसके बाद पंचवर्षीय योजनाओं की एक शृंखला चालू हो गयी।

आर्थिक विकास की चेतना को दृष्टि में रखते हुए हमारे संविधान के निर्देशक सिद्धांतों (Directive Principles of the Constitution) में यह उल्लेख किया गया है कि "राज्य अपनी नीति का संचालन खास तौर पर निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करेगा—(क) नागरिकों को—पुरुषों और स्त्रियों, दोनों को समान रूप से जीवन-निर्वाह के पर्याप्त साधनों का अधिकार प्राप्त होगा, (ख) समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्व का वितरण और नियंत्रण इस प्रकार किया जाएगा कि सर्वोत्तम रूप में सबका भला हो; (ग) आर्थिक प्रणाली की कार्यान्विति का परिणाम ऐसा न हो कि धन और उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण (Concentration of wealth and means of production) आम जनता के हितों के विरुद्ध हो जाए।" निर्देशक सिद्धान्त भारत के जनसामान्य की आर्थिक-विकास सम्बन्धी चेतना और प्रेरणा को अभिव्यक्त करते हैं और परिणामतः राष्ट्रीय सरकार ने आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने के लिए आयोजन (Planning) की पद्धति को अपनाया।

आयोजन के अधीन आर्थिक विकास की गति इतनी होनी चाहिए कि इसके प्रभाव को जनसामान्य अनुभव कर सकें। यदि आर्थिक विकास की गति धीमी एवं थोड़ी-सी होती है, तो यह लोगों को प्रोत्साहित न कर सकेगा। आयोजन का उद्देश्य आर्थिक विकास की गति को बढ़ाना है ताकि जो प्रगति अनायोजित समाज (Unplanned Society) द्वारा दीर्घकाल में प्राप्त की जाती है, वह आयोजन के अधीन समाज द्वारा अल्पकाल में प्राप्त की जा

आय की असमानताओं में कमी और समाजवादी समाज की स्थापना से ऐसी परिस्थितियाँ कायम की जाती हैं जिनमें प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा एवं रोजगार में समान अवसर प्राप्त हो सके। ऐसे समाज में आर्थिक शक्ति का संकटन नहीं होगा और एक व्यक्ति द्वारा दूसरे का शोषण भी नहीं होगा। इसी बात का उल्लेख भारत के संविधान के निर्देशक सिद्धान्तों (Directive principles) में किया गया है। ये निर्देशक सिद्धान्त देश की जनता की आकांक्षा और संकल्प की अभिव्यक्ति करते हैं जिसका मूल लक्ष्य न्याय के साथ आर्थिक विकास है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में भारत के आर्थिक आयाजन के दीर्घकालीन उद्देश्यों का स्पष्ट विवरण इस प्रकार दिया गया है—“आर्थिकतम उत्पन्न, पूर्ण रोजगार, आर्थिक समानता तथा सामाजिक न्याय की प्राप्ति जो कि वर्तमान परिस्थिति में आयाजन के स्वीकार्य उद्देश्य समझे जाते हैं, धीमे-धीमे विचार नहीं है बल्कि उन सम्बन्धित उद्देश्यों की भूँखला है जिनकी प्राप्ति के लिए देश को प्रयास करना है। इनमें से किसी एक उद्देश्य की पूर्ति दूसरे को छोड़कर नहीं की जा सकती, विकास की योजना में इन सबकी संतुलित महत्त्व देना अनिवार्य है।”

आर्थिक योजनाओं का उद्देश्य इन सभी शक्तियों को इस प्रकार गतिमान करना है कि सामाजिक तथा वैयक्तिक की असमानताएँ, निर्धनता, प्राप्ति के लिए समान अवसरों का अभाव अधोगामी शक्तियों के उत्पन्न हो जाए। भारत की उद्यम सामाजिक कल्याण सम्बन्धी विधान, श्रम-अधिनियम आदि प्रातिवादी शक्तियों के उत्पन्न हो जाते हैं जबकि आय एक ही दिशा में कार्य करे। कुछ शक्तियाँ प्रगामी होती हैं और कुछ अधोगामी (Retrosressive)। भू-सुधार के अनियमित समाज में विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ कार्यशील रहती हैं। यह आवश्यक नहीं कि सभी शक्तियाँ आयाजन और सामाजिक परिवर्तन

को हटाना है। पहले यह कल्पना की जाती थी कि कृषि एवं औद्योगिक विकास की गति तेज करने से अपने आप ही देश में रोजगार की वृद्धि हो जाएगी। साथ ही बेरोजगारी, अल्परोजगार और गुप्त बेरोजगारी की समाप्ति से एक और कुल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product) की वृद्धि होगी और दूसरी ओर प्रतियोगिता आय की वृद्धि से लोगों का जीवन-स्तर उन्नत हो जाएगा। जब योजना आयोग ने यह अनुभव किया कि कृषि तथा औद्योगिक विकास की वृद्धि के साथ-साथ बेरोजगारी और अल्प-रोजगार में कमी नहीं हुई, बल्कि वास्तव में बेरोजगारी में वृद्धि हुई है, तो इसे आयाजन की रोजगार प्रदान बनाने की ओर बल देना पड़ा।

भारत में आर्थिक आयाजन का मूल उद्देश्य कृषि, उद्योग, संचालन शक्ति, परिवहन एवं संचार और अर्थव्यवस्था के अन्य सभी क्षेत्रों के विकास द्वारा तीव्र आर्थिक विकास करना है। तीव्र आर्थिक विकास द्वारा देश राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय में उन्नति ला सकता है, देश से गरीबी और दीनता को दूर कर सकता है और जनसामान्य के स्तर को उठाना है जो शताब्दियों से निर्धनता के बाँटल में फँसे हुए है। वास्तव में 'न्याय के साथ विकास' और 'गरीबी हटाओ' के नारे इस बात पर स्पष्ट बल देते हैं कि उद्देश्य केवल राष्ट्रीय आय की वृद्धि नहीं, अपितु गरीबी को हटाना है।

आयाजन और गरीबी हटाओ

शोधक के अधीन अध्ययन करेंगे। इन इन चार उद्देश्यों का आयाजन तथा निर्धनता को दूर करना और आयाजन तथा सामाजिक परिवर्तन के

1. उत्पन्न की आर्थिकतम सम्भव सीमा तक बढ़ाना ताकि राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय के उच्च स्तर की प्राप्ति की जा सके;
2. पूर्ण रोजगार प्राप्त करना;
3. आय तथा सम्पत्ति की असमानताओं को कम करना; और
4. सामाजिक न्याय उपलब्ध करना।

परिवर्तन का उपकरण बन सकता है। भारत में आयाजकों ने चार सामाजिक उद्देश्य बताए हैं—

सके। इसी से ही समाज का आयाजन में विरवास कायम हो सकता है और यह सामाजिक एवं आर्थिक विकास में

नोट

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

नोट

विभिन्न योजनाओं की दृष्टि-अल्पकालीन उद्देश्य

मूल या दीर्घकालीन उद्देश्यों के अतिरिक्त जो सभी योजनाओं के लिए साझे हैं, प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में कुछ अल्पकालीन उद्देश्यों पर बल दिया गया। ये विशेष-योजना के उद्देश्य कहे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, पहली योजना में कृषि-विकास, शरणार्थियों के पुनर्वास और स्फीति के नियन्त्रण पर बल दिया गया। दूसरी योजना में तीव्र औद्योगिकीकरण को लक्ष्य रखा गया जिसमें विशेष बल मूल तथा भारी उद्योगों अर्थात् इस्पात, ईंधन एवं संचालन शक्ति का विस्तार करने की ठानी गई और मशीन-निर्माण क्षमता की स्थापना करने का निर्णय किया गया। इसके साथ-साथ कृषि में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। परन्तु चीन और पाकिस्तान के साथ युद्ध छिड़ जाने के कारण योजना का मुख्य बल प्रतिरक्षा (Defence) की ओर परिवर्तित करना पड़ा। चौथी योजना का लक्ष्य राष्ट्रीय आय की 5.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि-दर प्राप्त करना रखा गया। इसके अतिरिक्त सामाजिक न्याय के साथ समानता की ओर प्रगति और देश के कमजोर वर्गों के लिए राष्ट्रीय न्यूनतम जीवन-स्तर (National minimum) प्राप्त करने का संकल्प किया गया। ये उद्देश्य दो उद्देश्यों के रूप में उभरे-गरीबी हटाओ और सामाजिक न्याय के साथ विकास। पाँचवीं योजना में चौथी योजना के नारों को और आगे बढ़ाने का निश्चय किया गया और इसके साथ आत्मनिर्भरता (Self-reliance) पर भी जोर दिया गया। छठी योजना में कृषि एवं लघु-स्तर के उद्योगों के विकास पर बल दिया गया, विशेषकर अधिक रोजगार कायम करने की दृष्टि से।

जब हम इन योजनाओं की सफलता अथवा विफलता की समीक्षा करें, तो अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन-दोनों प्रकार के उद्देश्य दृष्टि में रखने होंगे।

3.6 भारत में लोकतान्त्रिक समाजवाद (Democratic Socialism in India)

राष्ट्र को सामूहिक प्रयत्न करने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से आयोजन का सशक्त दार्शनिक आधार आवश्यक है जिससे विकास योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक प्रेरणा मिल सके। बिना राजनीतिक और सामाजिक दर्शन के आयोजन करना वैसा ही होगा जैसे मंजिल के ज्ञान के बिना जहाज चलाना। प्रत्येक देश को आयोजन के अल्पकालीन और दीर्घकालीन उद्देश्य दृष्टि में रखने पड़ते हैं। अल्पकालीन लक्ष्य चाहे कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न प्रतीत हों, दीर्घकालीन लक्ष्यों पर हावी नहीं होने चाहिए। एक कुशल आयोजक का कार्य अल्पकालीन लक्ष्यों और दीर्घकालीन लक्ष्यों के बीच तालमेल बैठाना है ताकि उसकी कल्पना के समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो सके। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए कुशल आयोजक को प्रस्तावित समाज की स्पष्ट कल्पना होनी चाहिए तथा इस कल्पना में मानवीय व्यक्तित्व के सभी पक्षों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। राष्ट्रीय विकास के आयोजन के प्रति जनता में उत्साह का संचार करने के लिए आयोजन का सुदृढ़ दार्शनिक आधार अपरिहार्य शर्त है।

भारत में लोकतान्त्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) की विचारधारा का विकास-मार्क्स और एंजल्स ने समाजवाद को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इनका विश्वास था विश्व से शोषण मिटाने के लिए उत्पादन के साधनों पर से निजी स्वामित्व समाप्त करना आवश्यक है। मार्क्स और एंजल्स को निजी सम्पत्ति सब बुराइयों की जड़ प्रतीत हुई। मार्क्स और एंजल्स की विचारधारा के अनुयायी बोलशेविकों को 1917 में रूस में सत्ता प्राप्त हुई। उन्होंने मार्क्स और एंजल्स के विचारों को व्यवहार्य रूप देने की चेष्टा की, अतः सोवियत रूस में आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए समग्र राष्ट्रीयकरण (Total nationalisation) पर आधारित आयोजन अपनाया गया। अतः आयोजन का सर्वप्रथम विकास रूस से हुआ। मानव-जाति के इतिहास में यह पहला अवसर था जबकि समाज ने निर्धनता, भूख और बेरोजगारी मिटाने के लिए आयोजन के अनुसार संगठित प्रयत्न किया। रूसी आयोजकों की भारी सफलता का विश्व के पूंजीवादी देशों में अनिवार्य प्रभाव पड़ा। यद्यपि पूंजीवादी देशों की निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त में आस्था नहीं मिट पाई, तथापि उन्हें यह विश्वास हो गया कि सरकार निर्धनता, कष्ट, बेरोजगारी और अज्ञान को कम करने में प्रभावशाली भाग अदा कर सकती है।

स्वतन्त्र होने पर भारत को पश्चिम के समुन्नत राष्ट्रों की तुलना में भिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधान करना था। भारत व्यापक निर्धनता, व्यापक बेरोजगारी और अल्परोजगार में डूबा हुआ था, जिनका स्वरूप संरचनात्मक

नोट

(Structural) था; उसके श्रमिक निरक्षर और अप्रशिक्षित थे, उसकी कृषि अवरुद्ध थी और अर्द्ध-सम्बन्धों (Semi-feudal relations) में जकड़ी हुई थी तथा उसके उद्योग अपेक्षाकृत पिछड़े हुए थे। अतः भारत की समस्याओं के समाधान के लिए विशाल राष्ट्रीय प्रयास आवश्यक था, उसका काम केवल चक्र विरोधी नीति अपनाते से नहीं चल सकता था; फलतः उसने सामाजिक और आर्थिक उत्तोलक (Economic lever) के रूप में 'आयोजन' का सहारा लिया। समाजवादी आयोजन (Socialist planning) से प्रभावित होने के कारण हमने मार्क्सवादियों से समाज की संकल्पना ग्रहण की, किन्तु साथ ही हमारे विचारकों ने न्यायोचित समाज के पूर्ण विकास के लिए पूंजीवादी समाज के लोकतान्त्रिक मूल्यों (Democratic values) को भी अपरिहार्य माना। इस प्रकार हमने दो चरम समाजों के गुणों का लाभ उठाते हुए जिस समाज की कल्पना की वह 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' (Democratic socialism) के नाम से विख्यात हुआ। लोकतान्त्रिक समाजवाद के सिद्धान्त पर आधारित समाज में लोकतन्त्र और समाजवाद वस्तुतः ऐसे समाज की रचना के साधन होते हैं जिसमें जनता का जीवन-स्तर उन्नत करने के लिए एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण रोका जाता है तथा व्यक्ति को आत्माभिव्यक्ति (Self-expression) की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होती है। अतः मानवीय व्यक्तित्व का अपेक्षाकृत पूर्ण और मुक्त विकास लोकतान्त्रिक समाजवाद का सर्वोच्च लक्ष्य है। इस लक्ष्य की सिद्धि में जहां एक ओर निर्धनता और आय तथा सम्पत्ति की असमानताएं बाधक हैं वहां दूसरी ओर लोकतन्त्र का अभाव भी उतनी ही बड़ी बाधा समझी गई है।

सोवियत रूस और पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों के पूर्व में हुए विघटन से यह बात सिद्ध हो गयी है कि विकास के बारे में नेहरू ने लोकतन्त्रीय समाजवाद को केवल आर्थिक शक्तियों के पक्ष में ही सीमित न रखकर इसके प्रति सम्पूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। जबकि प्रतिष्ठित समाजवादी दर्शन में स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की विकास-प्रक्रिया के अंग के रूप में उपेक्षा की गयी, वहां नेहरू ने इसे लोकतन्त्रीय समाजवाद का अंग माना। गत वर्षों में भूतपूर्व सोवियत रूस में भी बाजार-आधारित अर्थव्यवस्था (Market based economy) चालू की गयी है। भारत भी अपनी अर्थव्यवस्था में उदारीकरण (Liberalisation) कर रहा है और सरकारी नियन्त्रण एवं विनियमन को कम करता जा रहा है परन्तु इसके साथ-साथ नेहरू के लोकतान्त्रिक समाजवाद के दर्शन का परित्याग नहीं कर रहा है।

लोकतान्त्रिक समाजवाद के दर्शन की प्रमुख विशेषताएं

लोकतान्त्रिक समाजवाद का दर्शन समाज की समग्र कल्पना पर आधारित है। इसका अभिप्राय यह है कि एकमात्र भौतिक समृद्धि, मानव जीवन को सुखी और सम्पन्न नहीं बना सकती। वस्तुओं और सेवाओं के रूप में जनसाधारण को भौतिक सुख का ऊंचा स्तर उपलब्ध कराने के साथ-साथ सभी नागरिकों को समान अवसर भी उपलब्ध कराए जाने चाहिए ताकि वैयक्तिक और सामूहिक विकास के लिए आवश्यक नीति और आध्यात्मिक मूल्य विकसित किए जा सकें। इस प्रकार उत्पादन अधिकतम करने के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक विषमताओं को कम करने का कार्यक्रम तथा जनता को राष्ट्रीय न्यूनतम आय (National minimum) उपलब्ध कराने का आश्वासन लोकतान्त्रिक समाजवाद के अभिन्न अंग हैं। अतः लोकतान्त्रिक समाजवाद के प्रमुख लक्षणों का विवेचन करना युक्तियुक्त होगा—

1. समाजवादी समाज का सर्वप्रथम उद्देश्य निर्धनता समाप्त करना और राष्ट्रीय न्यूनतम की व्यवस्था करना है—इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि कृषि और औद्योगिक उत्पादन में लगातार वृद्धि की जाए। निर्धनता और अत्यधिक निम्न जीवन-स्तर की चक्की में पिसने वाली जनता के लिए समाजवाद तभी अर्थपूर्ण हो सकता है यदि वह प्रत्येक व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। अतः निकट भविष्य में राष्ट्रीय न्यूनतम के रूप में खाद्य, कपड़ा, आवास, डाक्टरी सहायता और शिक्षा की मूलभूत न्यूनतम आवश्यकताओं की व्यवस्था का आश्वासन प्रदान कर सके। राष्ट्रीय न्यूनतम की व्यवस्था करना चौथी एवं उत्तरोत्तर योजनाओं का एक लक्ष्य था।

2. समाजवादी अर्थव्यवस्था का लक्ष्य आय और सम्पत्ति की असमानताएं कम करना है—तत्त्वतः समाजवाद समाज के श्रमजीवी वर्गों के हित में आय के पुनर्वितरण का आन्दोलन है। अनियमित/पूंजीवादी

नोट

अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप आय की असमानताओं में वृद्धि होती है एवं सम्पत्ति कुछ विशेषाधिकार सम्पन्न वर्गों के हाथों में संकेन्द्रित हो जाती है। जब तक राष्ट्रीय आय में श्रम वर्ग का भाग काफी न बढ़ जाए, तब तक जनसाधारण के लिए लोकतांत्रिक समाजवाद का कुछ अर्थ नहीं होता। मजदूर संघों (Labour unions) के दबाव के राष्ट्रीय आय में श्रमिकों का भाग बढ़ जाता है, किन्तु यह वृद्धि समाजवादी समाज की आवश्यकताओं को देखते हुए बहुत कम होती है। फलतः योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (Planned economy) में आय और सम्पत्ति की असमानताएं कम करने के लिए नीति बनाना अत्यावश्यक है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस प्रश्न का विवेचन करते हुए कहा गया—“वर्तमान युग में विकास का आरम्भ करने वाले अल्पविकसित देशों के समक्ष उत्पादन के साधनों और वर्ग सम्बन्धों (Class relations) का ऐसे रूप में समन्वय करने की समस्या है जिससे कि विकास के फलस्वरूप आर्थिक और सामाजिक असमानताओं में कमी आ जाए; विकास की प्रक्रिया और ढाँचे का सार समाजीकरण (Socialization) में है... असमानताएं कम करने की प्रक्रिया दुहरी है। इसके अतिरिक्त एक ओर निम्नतम स्तर पर आय में वृद्धि करनी आवश्यक है और दूसरी ओर उच्चतम स्तर पर आय में कमी करनी आवश्यक है। इससे यद्यपि पूर्वोक्त मूलतः अधिक महत्वपूर्ण अंग है, किन्तु दूसरे पक्ष के सम्बन्ध में शीघ्र और उद्देश्यपूर्ण किया जाना भी आवश्यक है।”

3. समाजवादी अर्थव्यवस्था का एक उद्देश्य सबको समान अवसर प्रदान करना है—समाजवादी अर्थव्यवस्था में जाति, वर्ग और जन्म के भेदभाव के बिना सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान कराना आवश्यक है। अवसर की समानता (Equality of opportunity) और राष्ट्रीय न्यूनतम की प्राप्ति कराने की एक मूल कसौटी यह है कि सभी समर्थ नागरिकों को लाभकारी रोजगार (Full employment) उपलब्ध कराया जाए। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में आर्थिक ढाँचे की मूलभूत क्रमियों के कारण बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है। सबसे बड़ी कमी पूर्ण रोजगार (Full employment) के लिए पर्याप्त स्तर तक विनियोजन का स्तर उन्नत करने में अर्थव्यवस्था का विफल होना है इसके लिए समाज को भारी त्याग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, भूमि पर आबादी के अत्यधिक दबाव के परिणामस्वरूप देहातों में अल्परोजगार विद्यमान रहता है। देश की जनशक्ति के पूर्ण उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि उद्योगों का विस्तार किया जाए। इसके अतिरिक्त घनी आबादी वाले देहातों में और विशेष रूप से कम काम-काज के मौसम (Slack season) में ग्राम-कार्यों का विशाल पैमाने पर कार्यक्रम चलाया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है ताकि ग्रामीण श्रमिकों को लगातार काम मिलता रहे।

अपेक्षाकृत कम विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों (Less privileged classes) की सहायता करने के लिए शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार करना आवश्यक है ताकि प्रत्येक बच्चे के लिए उसकी योग्यता के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की जा सके। मुक्त और सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा (Universal primary education) की व्यवस्था, तकनीकी और उच्चतर शिक्षा के अवसरों का विस्तार, छात्रवृत्तियों और अन्य प्रकार के सहायता-उपायों की उदार स्वीकृति आदि के कारण जन्ममूलक क्षतियों का प्रभाव काफी सीमा तक कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अक्षम और वृद्ध लोगों की सहायता के लिए सामाजिक बीमे (Social insurance) की योजना से भी समान अवसर जुटाने में काफी सहायता मिल सकती है।

4. सार्वजनिक और सहकारी क्षेत्र के विस्तार में आस्था किन्तु समग्र राष्ट्रीयकरण में आस्था न होना—भारत सरकार ने नीति के लक्ष्य के रूप में समग्र राष्ट्रीयकरण (Total nationalisation) को अस्वीकृत कर दिया। लोकतान्त्रिक समाजवाद की विचारधारा में सम्पत्ति का सर्वथा उन्मूलन वांछनीय नहीं समझा जाता। हमारे देश में दो विचारधाराओं के अनुयायी स्पष्टतः दिखाई पड़ते हैं—वामपंथी (Leftists) और दक्षिणपंथी (Rightists) वामपंथियों की समग्र राष्ट्रीयकरण के सिद्धान्त में आस्था है ताकि सम्पत्ति को पूर्णतया समाप्त किया जा सके। इसके विपरीत दक्षिणपंथियों का निजी क्षेत्र की पूर्ण स्वतन्त्रता में विश्वास है तथा वे मानते हैं कि निजी क्षेत्र आर्थिक विकास के पोषण में समर्थ है। भारत सरकार के मत में ये दोनों विचारधाराएं चरमवादी हैं और देश की आवश्यकताओं की दृष्टि से अनुपयुक्त हैं। अतः उसने निजी क्षेत्र को सर्वथा नष्ट करने के स्थान पर उसे सीमित करना उचित समझा है। जहाँ कहीं भी निजी स्वामित्व समाप्त किया गया है, वहाँ उसके स्थान पर या तो सरकारी स्वामित्व की स्थापना की गई या उपयुक्त सहकारी स्वामित्व (Co-operative ownership) की।

जाता है।

नियन्त्रणों और नियमनों के कारण कीमत प्रणाली के अन्तर्गत नियम को सामाजिक लक्ष्य की दिशा में प्रतिर किया जाता है।

allocation) सम्भव नहीं तथा राज्य की कीमत प्रणाली के माध्यम से कार्य करना आवश्यक होता है। परिणामतः का अर्थ महत्व है। इसमें सन्देह नहीं कि लोकतांत्रिक समाजवादी आयोजन में प्रत्यक्ष बंटन (Direct साधन-साधन स्थूल रूप में संगत हो सके। लोकतांत्रिक समाजवादी अर्थव्यवस्था में उक्त उद्देश्य की पूर्ति के उपायों अर्थिक नीतिगत विकसित की जाएं जिनसे निजी क्षेत्र का विनियोग भी योजना में स्वीकृत सामाजिक लक्ष्य के में विनियोजन विषयक निर्णय लागत और प्रतिकूल के आधार पर किए जाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि ऐसी निर्धारित करते समय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को व्यापक रूप से दृष्टिगत रखा जाता है किन्तु निजी क्षेत्र मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी और सरकारी दोनों क्षेत्रों के लिए स्थान रहता है, सरकारी क्षेत्र के विनियोग की कसौटी राष्ट्रीय आय और योजना में काफी बड़ी हो अर्थात् आय और धन की अपेक्षाकृत अधिक समानता भी विकसित हो।" (Socio-economic relations) के लक्ष्य का इस प्रकार से आयोजन किया जाना चाहिए कि इससे न केवल की मूल कसौटी वैयक्तिक लाभ नहीं बल्कि सामाजिक लाभ होनी चाहिए और विकास लक्ष्य तथा सामाजिक सम्बन्धों के अधीन रहने की कल्पना की जाती है।" तबतः इसका अभिप्राय यह है कि विकास की दिशा निर्धारित करने सामाजिक लाभ ही है—समाजवादी अर्थव्यवस्था में वैयक्तिक लाभ की भावना को सामाजिक लक्ष्य की प्राप्ति 6. समाजवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक निर्णय करने की मूल कसौटी निजी लाभ नहीं अपितु

संगतों को विकास का पूरा अवसर मिल सके।"

स्तर प्राप्त हो, और राष्ट्रीय आयोजन के भीतर उद्यमकर्तृओं, मध्यम और छोटे धैमानों के उद्योगधन्धों और सहकारी औद्योगिक संगठन (Industrial organisation) के ऐसे स्वरूप को बढ़ावा दिया जाए जिसमें उत्पादन के ऊंचे संकेन्द्रण (Concentration of economic power) और एकाधिकार की प्रवृत्तियों को रोककर आर्थिक न्याय की नींव पर आधारित हो। "संक्षेप में, उद्देश्य केवल यह नहीं होना चाहिए कि आर्थिक शक्ति के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ताकि उन समाज-विरुद्धी प्रवृत्तियों का दमन किया जा सके जिनके कारण सामाजिक और एक ऐसे समाज के लिए जिसमें लोकतन्त्रीय समाजवाद का बल ले रहा हो, एकाधिकार पर नियन्त्रण करना

होना प्रयोग में लाना तथा उपयुक्त राजकीय उपायों (Fiscal measures) का प्रयोग करना।

होना से संगठित उद्योगों का विस्तार करना; और राष्ट्रीय, नियन्त्रण और नियमन की सरकार की शक्ति को प्रभावशाली के लिए भारी विनियोग की आवश्यकता होती है; द्वितीय, नए उद्यमकर्तृओं, मध्यम और लघु इकाइयों तथा सहकारी उपाय प्रस्तावित किए गए हैं—प्रथम सरकारी क्षेत्र का उन क्षेत्रों में विस्तार जिनके लिए बड़ी इकाइयों की स्थापना प्रवृत्तियों की रोकथाम के उपाय करने आवश्यक हो जाते हैं। तीसरी योजना में एकाधिकार का सामना करने के अनेक में अधिक शक्ति का संकेन्द्रित हो जाना लोकतांत्रिक समाज के सिद्धान्त के ठीक विपरीत है। अतः एकाधिकारी नए उद्यमकर्तृओं का इन उद्योगों में प्रवेश असम्भव प्रतीत होने लगता है। इसके अतिरिक्त कुछ व्यक्तियों के हाथ प्रवृत्तियों का विकास होता है। एकाधिकारी प्रवृत्तियों (Monopolistic tendencies) के विकास के परिणामस्वरूप से रोकने का प्रयास किया जाना—बड़ी औद्योगिक इकाइयों के विकास के कारण एक बड़ी सामाजिक एकाधिकारी 5. समाजवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण और एकाधिकारी प्रवृत्तियों को पनपने

(Globalization) के दौर में सरकारी क्षेत्र के प्रधान कार्ययोजना को स्वीकार नहीं किया गया।

नेजी से विकसित हो।" किन्तु भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारता (Liberalisation) और वैश्वीकरण करना है तो यह अनिवार्य है कि सरकारी क्षेत्र न केवल कुल रूप में, अपितु साक्षर रूप में निजी क्षेत्र की अपेक्षा परिकल्पित गति के अनुसार आसुर होना है तथा व्यापक सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति में प्रभावशाली होना से अंशदान अर्थव्यवस्था में, सरकारी और निजी क्षेत्र के साथ-साथ विस्तार की काफी गुंजाइश रहती है, किन्तु यदि विकास की अन्तर्गत विनियोजन के सम्पूर्ण लक्ष्य का परिवर्तन करने में इसे प्रमुख भाग अदा करना है। ऐसी विकासमान है जिन्हें आरम्भ करने के लिए निजी क्षेत्र या तो इच्छुक नहीं है या फिर समर्थ नहीं है, अपितु अर्थव्यवस्था के किया गया है—"सरकारी क्षेत्र का तीव्र गति से विकास करना ही है। इसे न केवल वे विकास किए गए आरम्भ करनी द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निजी और सरकारी क्षेत्र के साक्षर महत्त्व का निम्नलिखित शब्दों में उल्लेख

नीति

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

नोट

एक विकासमान अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबावों (Inflationary pressures) के पैदा होने का खतरा सदैव बना रहता है क्योंकि नई आय के उत्पन्न होने तथा उत्पादन बढ़ने में सदैव कुछ-न-कुछ समयान्तर रहता है। परिणामतः उत्पादन की कमी के कारण कीमतों के बढ़ जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि कीमतों की वृद्धि रोकने का मूल उपाय तो उत्पादन बढ़ाना ही है ताकि वस्तुओं की न्यूनता न रह जाए, किन्तु इस बात का ध्यान रखना उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि कहीं व्यापारी न्यूनता की अवस्था का लाभ उठाकर जनता का शोषण न करें। अनिवार्य वस्तुओं और खाद्य जैसी जीवन-रक्षक वस्तुओं की कीमतों के उतार-चढ़ाव के सम्बन्ध में उपर्युक्त तर्क विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

7. वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की सम्पन्नता के लिए लोकतान्त्रिक मूल्यों में आस्था—भारत में लोकतान्त्रिक समाजवाद की जो संकल्पना स्वीकृत की गई है, उसमें वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की सम्पन्नता के लिए लोकतान्त्रिक मूल्यों में विश्वास व्यक्त किया गया है। समाजवाद के साथ जुड़े हुए 'लोकतान्त्रिक' विश्लेषण के कारण इसका रूस और चीन के सर्वाधिकारतन्त्रीय समाजवाद (Totalitarian socialism) से भेद स्पष्ट हो जाता है। भारतीय समाजवाद किसी भी प्रकार के अधिनायकवाद (Dictatorship) में या व्यक्ति, वर्ग, दल अथवा राज्य के हाथ में सम्पूर्ण सत्ता सौंप देने में विश्वास नहीं रखता। भारत की उदार चेतना में मतों और विचारधाराओं को समाने का सामर्थ्य है। यह उल्लेखनीय है कि लोकतन्त्र जीवन तथा सामाजिक व्यवहार की एक ऐसी प्रणाली है जिसमें मतभेदों को शक्ति से नहीं बल्कि विचार-विमर्श से सुलझाया जाता है।

भारतीय आयोजन की विचारभूमि और दर्शन अत्यन्त पुष्ट हैं। लोकतंत्र और निजी उद्यम की प्रणालियों को सुरक्षित रखते हुए आर्थिक विकास की प्रक्रिया का चलाना जटिल और कठिन कार्य है। उत्साही नेतृत्व की आर्थिक विकास के अनुकूल उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण कर सकता है। मिश्रित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में निहित अन्तर्विरोध आर्थिक आयोजन के लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधा है किन्तु आर्थिक विकास की प्रक्रिया केवल तभी सरलता से अग्रसर हो सकती है जबकि निजी, सरकारी और सहकारी क्षेत्रों के रूप में राजनीतिक प्राचल (Parameters) स्पष्ट रूप में निर्धारित किए जाएं और आयोजन-कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने का प्रयत्न भी किया जाए।

3.7 विकास की रणनीति (Strategy of Development)

संविधान की प्रस्तावना और उसके भाग तीन व चार में विकास के सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यों की एक मोटी झलक देखने को मिलती है। "हम भारत के लोग" (We, The people of India) भारत को एक लोकतान्त्रिक गणराज्य बनाने के लिए वचनबद्ध हैं जिससे कि भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय उपलब्ध हो सके। संविधान के भाग तीन में मौलिक अधिकारों का वर्णन मिलता है, जबकि चौथे भाग (Part IV) में नीतिनिर्देशक सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। राज्य का कर्तव्य है कि वह नागरिकों के लिए पौष्टिक आहार का प्रबंध करे और उनके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाए। राज्य की आर्थिक नीतियाँ ऐसी होनी चाहिए जिससे कि देश के भौतिक साधनों का उचित बँटवारा हो तथा अधिक से अधिक लोगों के हित में उनका उपयोग हो सके। राज्य कृषि और उद्योगों में लगे सभी कामगारों (workers) को 'निर्वाह मजदूरी' प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।

पिछले कुछ वर्ष विकास की रणनीति के विषय में गहन वाद-विवाद के वर्ष रहे हैं। इस संबंध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या आजादी के बाद विकास के लिए अपनायी गयी रणनीति सही थी?

नियोजन द्वारा सामाजिक-आर्थिक विकास (Planning for Socio-Economic Development)

नियोजन का आशय यह होता है कि सभी मानवीय और भौतिक संसाधनों की व्यापक जाँच-पड़ताल करके यह निर्णय लिया जाए कि किस वस्तु का कितना उत्पादन होगा और उत्पादित चीजों का बँटवारा किस ढंग से किया जाएगा। आर्थिक नियोजन द्वारा पूंजी-निर्माण की उचित दर को हासिल करने का प्रयास किया जाता है, ताकि विकास की गति में तेजी आए। साथ ही, यह भी प्रयास रहता है कि 'उत्पादन' और 'वितरण' के बीच सामंजस्य बना रहे।

दूसरे शब्दों में, विकास के साथ-साथ 'सामाजिक न्याय' (Social Justice) का भी ख्याल रखा जाता है। संक्षेप में, नियोजन का लक्ष्य यह है कि प्रति-व्यक्ति औसत आय बढ़े, कृषि और उद्योगों का विकास हो तथा देश में विद्यमान सामाजिक अन्याय व विषमताएँ मिटें।

भारत में नियोजन का स्वरूप (Nature of Planning in India)

संविधान की प्रस्तावना में 'समाजवाद' शब्द यद्यपि 1976 में जोड़ा गया, पर भारत में समाजवादी विचारधारा का प्रवेश राष्ट्रीय आंदोलन के शुरू में ही हो गया था। रूस की कम्युनिस्ट क्रांति ने राष्ट्रीय नेताओं के एक बड़े वर्ग को अपनी ओर आकृष्ट किया था। समाजवाद की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उत्पादन के साधनों का संचालन एक निश्चित योजनाक्रम के अनुसार किया जाता है। सर्वप्रथम रूस में पंचवर्षीय योजना का प्रारंभ हुआ था। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1928-33) के समाप्त होने तक रूस एक उन्नत औद्योगिक राष्ट्र बन चुका था।

योजनाबद्ध विकास का प्रेरणा भारत को रूस से मिली, पर भारतीय योजनाओं का स्वरूप कम्युनिस्ट देशों के नियोजन से दो बातों में भिन्न रहा है। एक तो यह कि कम्युनिस्ट देशों में राज्य का स्वरूप 'सर्वाधिकारवादी' (totalitarian) होता है। साम्यवाद के बिखराव से पहले रूस में समूचे अर्थतंत्र के सूत्र सरकार के हाथों में थे। वहाँ आयोजन पूर्णतया केंद्र के 'आदेश व नियंत्रण' (command and control) में चलता था। इसके विपरीत भारत में लोकतांत्रिक समाजवाद के आदर्श को अपनाया गया। इतना ही नहीं, विकास की इस आयोजना का कार्य संघीय शासन प्रणाली के दायरे में किया गया है। जिन विषयों पर राज्य-सरकारों का अधिकार है (जैसे ग्रामीण विकास, शिक्षा और सामाजिक सेवा) उनकी आयोजना का भार काफी हद तक केंद्र द्वारा राज्यों को सौंपा गया है। केंद्र तथा राज्यों में कई अलग-अलग राजनीतिक दलों की सरकारें होने से राजसत्ता व आर्थिक शक्ति का विकेंद्रीकरण और ज्यादा प्रभावी हो जाता है। दूसरे, कम्युनिस्ट देशों में समस्त उत्पादन 'सार्वजनिक क्षेत्र' (public sector) में ही होता है। वहाँ 'निजी क्षेत्र' (private sector) नगण्य हो जाया करता है। पर भारत में 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' (mixed economy) रही है, जिसमें उत्पादन के दो क्षेत्र होते हैं—सरकारी तथा निजी। ये क्षेत्र एक-दूसरे के पूरक होते हैं, विरोधी नहीं।

भारत में 1950 में योजना आयोग (Planning Commission) का गठन किया गया। तथा 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना का श्रीगणेश हुआ। पहली योजना के दो प्रमुख उद्देश्य थे—(i) देश के विभाजन से उत्पन्न असंतुलन को दूर करना, और (ii) संतुलित विकास की प्रक्रिया को शुरू करना।

नियोजन के सामाजिक-आर्थिक लक्ष्य (Socio-Economic Goals or Objectives of Planning)

आयोजन के करीब 60 वर्ष पूरे हो चुके हैं। नौवीं योजना के प्रारूप को जनवरी 1999 में केंद्रीय मंत्रिमंडल की सहमति मिली। अलग-अलग योजनाओं में अलग-अलग बातों पर जोर दिया गया। उदाहरण के लिए, 1951 में देश को बड़े पैमाने पर खाद्यान्न को आयात करना पड़ा, इसलिए पहली पंचवर्षीय योजना में सिंचाई और बिजली परियोजनाओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। इसके ठीक विपरीत दूसरी योजना में आधारभूत और भारी उद्योगों के विकास पर ज्यादा बल दिया गया था। आठवीं योजना को अप्रैल 1990 में प्रारंभ होना था, पर वह पहली अप्रैल, 1992 को शुरू हुई। नौवीं पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 1 अप्रैल 1997 को शुरू हो चुका था, पर उसके प्रारूप को केन्द्रीय मन्त्रिमंडल की सहमति जनवरी 1999 में मिली। इसके बाद राष्ट्रीय विकास परिषद ने उसे मंजूर किया। इस विलम्ब के लिए केंद्र में व्याप्त राजनीतिक अस्थिरता जिम्मेदार है।

कुल मिलाकर आयोजन के निम्नलिखित सामाजिक-आर्थिक लक्ष्य रहे हैं—

1. विकास-दर में वृद्धि (Increasing Growth Rate)—राष्ट्रीय आय में वृद्धि की जाए तथा लोगों के जीवन-स्तर में सुधार हो। प्रथम पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य राष्ट्रीय आय को प्रति वर्ष 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 7 प्रतिशत करना था। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय आय में प्रति वर्ष 2 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया। दूसरी ओर तीसरी योजना में वृद्धि की वार्षिक दर 5 प्रतिशत निर्धारित की गई थी। चौथी और पाँचवीं योजना में वृद्धि की दर 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 5.5 प्रतिशत कर दी गई। छठी योजना द्वारा वार्षिक प्रगति की दर 5.2 प्रतिशत निर्धारित की गई थी और सातवीं योजना का लक्ष्य 5 प्रतिशत की वृद्धि रहा। आठवीं योजना (1992-97) में वृद्धि की वार्षिक दर 5.6 प्रतिशत रही, जबकि नौवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में 6.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

नोट

2. सामाजिक न्याय (Social Justice)—सामाजिक न्याय का अर्थ यह है कि “विकास का अधिकाधिक लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम साधन प्राप्त वर्गों को मिले तथा आय, संपत्ति और आर्थिक शक्ति के चंद हाथों में सिमटने की प्रवृत्ति में लगातार कमी हो।” ‘सामाजिक न्याय’ के विभिन्न पहलू इस प्रकार हैं—आर्थिक असमानता को दूर करना, जनजाति क्षेत्रों और शहरों की गंदी बस्तियों में रहने वाले लोगों का विकास, बच्चों को कुपोषण से बचाना, विकलांगों (नेत्रहीन, बहरे और शारीरिक व मानसिक रूप से अक्षम व्यक्तियों) के प्रशिक्षण और पुनर्वास की व्यवस्था तथा अवांछित, अनाथ व जरूरतमंद बच्चों की उचित देखभाल। वर्ष 2000-2001 का बजट प्रस्तुत करते हुए वित्तमंत्री ने कहा, “इस बात की आवश्यकता है कि गरीब वर्गों को थोड़ा-बहुत सामाजिक सुरक्षा का कवच प्रदान किया जाए।”

3. आत्मनिर्भरता (Self-reliance)—आत्मनिर्भरता का मतलब यह नहीं है कि वस्तुओं का आयात न किया जाए। आयात का स्तर तो घटने की बजाय और बढ़ सकता है, पर ‘व्यापार शेष’ (Balance of Trade) हमारे अनुकूल होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, निर्यात से होने वाली आय आयात के भुगतान से अधिक हो। हमने कभी भी अपनी आयात संबंधी आवश्यकताओं का ठीक से आकलन नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि भुगतान-संतुलन के संकट बार-बार आए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस संबंध में अधिक यथार्थवादी आकलन किया जाए।

4. कृषि उत्पादन में वृद्धि (Increase in Agricultural Production)—अर्थव्यवस्था में स्थिरता बनाये रखने के लिए कृषि व औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि जरूरी है। कृषि के शीघ्र विकास के लिए निम्नलिखित कदम उठाए गए—(i) सिंचाई का विस्तार और नई भूमि को कृषि-योग्य बनाकर उत्पादन में वृद्धि की गई; (ii) पंचवर्षीय योजनाओं में भूमि-सुधारों पर लगातार जोर दिया जाता रहा है। भूमि-सुधार का लक्ष्य जमींदारी, जागीरदारी, आदि प्रथाओं को समाप्त करना था, जिससे ‘राज्य’ और ‘काश्तकारों’ के बीच बिचौलिये न रहें; (iii) 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme) शुरू किया गया जिसमें “कृषि विकास, भूमि सुधार, पशुपालन, स्वास्थ्य और ग्राम सफाई, गोबर गैस संयंत्र, साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा, आदि कार्यक्रम शामिल थे”; (iv) 1965-66 में एक ‘नई कृषि-नीति’ (New Agricultural Strategy) अपनाई गई, जिसके मुख्य अंग हैं—अधिक उपज देने वाले बीजों का प्रयोग, रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव, पानी की सप्लाई; तथा (v) 1999-2000 की रबी की फसल के लिए किसानों को बीमा योजना उपलब्ध कराई गई। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का पुनर्गठन किया गया। किसान क्रेडिट कार्ड कार्यक्रम भी उत्तरोत्तर आगे बढ़ रहा है।

5. औद्योगिक विकास (Industrial Growth)—जहाँ तक औद्योगिक नीति का प्रश्न है, ‘मिश्रित अर्थव्यवस्था’ (mixed economy) पर बल दिया गया अर्थात् हमारे देश में उत्पादन के दो क्षेत्र हैं—सरकारी तथा निजी। ‘सरकारी क्षेत्र’ में वे सारे प्रतिष्ठान आ जाते हैं जिनका स्वामित्व और नियंत्रण राज्य के हाथों में है। स्वतंत्रता के बाद देश के औद्योगिक विकास की एक महत्वपूर्ण बात यह रही कि सरकारी क्षेत्र का तेजी से विस्तार हुआ है।

1951 में 29 करोड़ रुपये के निवेश के केवल पाँच ही गैर-विभागीय (रेलवे, डाक, तार आदि के अलावा) सरकारी उपक्रम थे, पर मार्च, 1998 में इनकी संख्या 240 हो गई, जिनमें 2,04,054 करोड़ रुपये की पूंजी लगी थी। सार्वजनिक क्षेत्र में मुख्यतः भारी उद्योग खड़े किए गए, जिनमें अधिक पूंजी की जरूरत थी और जिनमें उत्पादन शुरू होने में औसत से ज्यादा समय लगता है। सरकारी उद्योगों को एक मात्र लक्ष्य मुनाफा कमाना ही नहीं था, पर निरंतर घाटे की स्थिति भी प्रगति का लक्षण नहीं मानी जाती। 1991 में घोषित नयी औद्योगिक नीति निजीकरण (privatisation) पर विशेष बल देती है। 1995 में औद्योगिक नीति को और ज्यादा उदार बनाया गया। अब रक्षा उपकरणों, आणविक ऊर्जा, पेट्रोलियम, रेलवे परिवहन, कोयला खनन, तथा खनिज तेल जैसे आधारभूत क्षेत्रों को छोड़कर शेष सभी उद्योगों के दरवाजे निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए हैं। 1998-99 के बजट में कोयला समेत कुछ अन्य उद्योगों को भी लाइसेंस मुक्त करने की घोषणा की गई। दिसंबर 1999 के एक अधिनियम द्वारा बीमा क्षेत्र भी निजी कंपनियों के लिए खोल दिया गया।

6. रोजगार अवसरों में वृद्धि (Increase in Employment Opportunities)—कृषि और उद्योगों का उत्पादन बढ़ने से रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है। उसके लिए कई और बातों पर भी ध्यान देना होगा। देहाती

नोट

क्षेत्रों में गैर-खेतिहर रोजगार बढ़े, यह जरूरी है। इससे शहरों की ओर दौड़ को भी नियंत्रण में रखा जा सकता है। 1989 में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए क्रमशः दो रोजगार योजनाएँ शुरू की गईं—जवाहर रोजगार योजना और नेहरू रोजगार योजना। 1996-97 के दौरान केंद्र और राज्यों द्वारा जवाहर रोजगार योजना पर करीब 2048 करोड़ रुपये खर्च किए गए। अप्रैल 1999 में जवाहर रोजगार योजना का नाम बदल कर 'जवाहर ग्राम समृद्धि योजना' कर दिया गया। इसके अतिरिक्त अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बाहुल्यता वाले गाँवों में **आम्बेडकर ग्राम्य विकास योजना** चलाई जा रही है। इस योजना के अंतर्गत बुनियादी ढाँचे (बिजली, परिवहन आदि) के विकास पर विशेष बल दिया जाएगा। पहली अप्रैल 1999 को शुरू हुई **स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना** का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में सूक्ष्म उद्यमों (micro-enterprises) की स्थापना करना है। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) ने अपने चुनाव घोषणापत्र में बेरोजगारी हटाने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी थी।

7. निवेश में वृद्धि (Growth in Investment)—योजनाओं का यह लक्ष्य भी रहा है कि निवेश का अनुपात बढ़ाया जाए। निवेश को प्रोत्साहन देने के लिए 'करों' (Taxation) का उचित ढाँचा जरूरी है। यदि आय का अधिकांश भाग कर के रूप में देना पड़े तो इससे बचत और निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

भारत में राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र, जीवन बीमा, भविष्य निधि और राष्ट्रीय बचत जैसी योजनाओं में निवेश के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन दिए जाते हैं। एक सीमा तक बैंकों में जमा राशि पर ब्याज और यूनित ट्रस्ट में किये गये निवेश भी कर मुक्त हैं। हमारा आर्थिक विकास मुख्य रूप से स्वयं हमारे संसाधनों पर टिका हुआ है। पर हाल ही में विदेशी पूंजी व टेक्नालॉजी ने हमारे विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नयी औद्योगिक नीति का एक विशेष पहलू यह भी है कि विदेशी कंपनियों को भारत में निवेश की छूट होगी। अनिवासी भारतीय (NRI) भारत के विकास में सार्थक योगदान दे सकते हैं। शेयर बाजारों में अनिवासी भारतीयों द्वारा निवेश की प्रक्रिया को बहुत सरल बना दिया गया है। एक खास तरह के कार्ड जारी किए गए हैं, जो कि उन्हें शैक्षणिक, वित्तीय और सांस्कृतिक लाभ प्रदान करेंगे।

3.8 भारत की पंचवर्षीय योजनाएँ (Five-Year Plans in India)

पहली पंचवर्षीय योजना की कार्य-अवधि 1 अप्रैल, 1951 से 31 मार्च, 1956 तक की रखी गई। आठवीं योजना पहली अप्रैल 1992 को शुरू हुई। नौवीं पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 1 अप्रैल 1997 को शुरू हो चुका था परन्तु इसको केंद्रीय मंत्रिमंडल की स्वीकृति जनवरी 1999 में मिली।

पहली योजना (1951-56)—इस योजना का आकार अपेक्षाकृत छोटा था और उसका मुख्य उद्देश्य देश-विभाजन से उत्पन्न असंतुलन को दूर करना था। पहली योजना के लिए स्वीकृत व्यय केवल 2,378 करोड़ रुपये था। इसके अंतर्गत कृषि-विकास पर विशेष बल दिया गया।

दूसरी योजना (1956-61)—इस योजना का मुख्य लक्ष्य तीव्र औद्योगिक विकास रखा गया। रोजगार अवसरों में वृद्धि के लिए श्रम-प्रधान उद्योगों पर भी यथोचित बल दिया गया। द्वितीय योजना के लिए स्वीकृत वित्तीय व्यय 4,500 करोड़ रुपये था।

तीसरी योजना (1961-66)—तीसरी योजना के मुख्य उद्देश्य ये थे—(i) राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि प्राप्त करना; (ii) खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता लाना, (iii) बेरोजगारी दूर करना, और (iv) आधारभूत उद्योगों, विशेषकर मशीन निर्माण की क्षमता बढ़ाना।

वार्षिक योजनाएँ (1967-69)—1962 में चीन के आक्रमण और 1965 में पाकिस्तान से युद्ध छिड़ जाने के कारण प्रतिरक्षा-बजट में अपार वृद्धि की गई। तीन वर्षों तक तीन वार्षिक योजनाएँ चलीं जिन पर कुल मिलाकर 6,626 करोड़ रुपये व्यय किए गये।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74)—चौथी योजना के मुख्य लक्ष्य थे—उत्पादन में वृद्धि लाना, आर्थिक स्थिरता कायम करना, आत्मनिर्भरता, सामाजिक न्याय और रोजगार में वृद्धि। इस योजना के लिए 24,882 करोड़ रुपये के परिव्यय की व्यवस्था की गई।

नोट

पाँचवीं योजना (1974-1979)—पाँचवीं योजना के दो प्रमुख उद्देश्य थे—गरीबी का उन्मूलन और आत्मनिर्भरता। योजना पर वास्तविक परिव्यय कुल 63,770 करोड़ रुपये हुआ।

छठी योजना (1980-85)—छठी योजना का वास्तविक खर्च 1,09,291 करोड़ रुपये रहा। इस योजना के मुख्य लक्ष्य थे—(i) ऊर्जा-संसाधनों का तेजी से विकास, (ii) क्षेत्रीय असमानताओं और गरीबी में उत्तरोत्तर कमी लाना, तथा (iii) नई टेक्नालॉजी और आधुनिकीकरण की गतिविधियों में तेजी लाना।

सातवीं योजना (1985-90)—सातवीं योजना में तीन बातों पर विशेष बल दिया गया—(i) रोजगार के अवसर जुटाना; (ii) कृषि और उद्योगों की उत्पादन-क्षमता में वृद्धि; तथा (iii) खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता। इस योजना के लिए कुल 1,80,000 करोड़ रुपये के व्यय का आयोजन था।

आठवीं योजना (1992-97)—दिसंबर 1989 में राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार बनी और दिसंबर 1990 में श्री चंद्रशेखर ने प्रधानमंत्री पद संभाला। मई-जून 1991 में 10वीं लोकसभा के लिए चुनाव हुए। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने आठवीं योजना का जो प्रारूप तैयार किया था, वह नई सरकार को स्वीकार्य नहीं था। इसलिए आठवीं योजना जो अप्रैल 1990 में शुरू होनी थी, पहली अप्रैल 1992 को शुरू हुई।

आठवीं योजना की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार थीं—(i) स्वास्थ्य, साक्षरता और लोगों की बुनियादी जरूरतें पूरी की जाएँ, जिनमें पेयजल, आवास और कमजोर वर्गों के लिए कल्याण कार्यक्रम शामिल थे, (ii) ग्रामीण इलाकों में रोजगार का विशेष ध्यान रखा गया, तथा (iii) वित्तीय असंतुलन को सुधारने का प्रयास किया गया। आठवीं योजना पर 7,98,000 करोड़ रुपये के निवेश का आयोजन था।

नौवीं योजना (1997-2002 ई.)—नौवीं योजना का उद्देश्य सामाजिक-आर्थिक विकास को उपयुक्त दिशा देना रहा। इस पर कुल 8,59,000 करोड़ रुपये के व्यय का अनुमान था। नौवीं योजना के लक्ष्यों को इस प्रकार परिभाषित किया गया—(i) स्वास्थ्य, साक्षरता और दूसरी बुनियादी जरूरतें पूरी की जाएँ, जिनमें पेयजल, आवास और कमजोर वर्गों के लिए कल्याण कार्यक्रम शामिल रहे; (ii) ग्रामीण इलाकों में रोजगार का विशेष ध्यान रखा गया; (iii) राजकोषीय असंतुलन को समाप्त किया जाए; तथा (iv) बढ़ती आबादी को ध्यान में रखते हुए आगामी दस वर्षों में कृषि-उत्पादन को दुगुना करने का लक्ष्य रखा गया।

**सामाजिक-आर्थिक विकास का मूल्यांकन-योजना का अनुपालन और उपलब्धियाँ
(Evaluation of the Socio-Economic Development—Performance and Achievements of Planning)**

अब हम विश्व के एक बड़े औद्योगिक राष्ट्र के रूप में उभर चुके हैं। हमारे पास अनुसंधान तथा विकास का एक अच्छा आधार मौजूद है। भोजन, वस्त्र और अनेक उपभोक्ता वस्तुओं के मामले में भारत आत्मनिर्भर है। परिवहन और इंजीनियरी माल तथा पेट्रो रसायन सहित अनेक रसायनों के मामले में हम अपनी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम हैं। हमारे पास इस्पात, चीनी और सीमेंट संयंत्रों को कायम करने तथा बिजली की इकाइयों को स्थापित करने के लिए टेक्नालॉजी उपलब्ध है। परंतु इस प्रगति के बावजूद न गरीबी मिटी है और न सभी को रोजगार मिलने की स्थिति पैदा हो सकी है। अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य के बारे में कोई राय बनाने का मुख्य पैमाना पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियाँ हैं।

1. राष्ट्रीय आय में वृद्धि (Increase in the National Income)—जहाँ तक राष्ट्रीय आय में वृद्धि का प्रश्न है, पहली योजना में वार्षिक वृद्धि की दर औसतन 3.6 प्रतिशत रही। दूसरी योजना में यह बढ़कर 4.1 प्रतिशत हो गयी, परंतु तीसरी योजना में घटकर 2.4 प्रतिशत रह गयी। इसके बाद तीन वार्षिक योजनाएँ चालू रहीं, जिनके दौरान वार्षिक विकास दर 4.1 प्रतिशत रही। चौथी योजना के दौरान प्रगति की दर 3.5 प्रतिशत तक सीमित रही। पाँचवीं योजना और छठी योजना की कार्य-अवधि के दौरान वार्षिक दर 5.2 प्रतिशत रही। सातवीं योजना में 5.7 प्रतिशत वार्षिक दर हासिल की गई थी। आठवीं योजना का लक्ष्य 5.6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि था। नौवीं योजना के आरंभिक प्रारूप में 7 प्रतिशत सालाना वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था, पर योजना के शुरू के दो वर्षों (1997 व 1998) में प्राप्त विकास दर लक्ष्य से नीची रही। इसलिए संशोधित प्रारूप में 6.5 प्रतिशत की विकास दर निश्चित की गई।

दिखाई नहीं पड़ता।

पहुँचा देने का लक्ष्य था। पर यह प्रयास इतना विघ्न-पिटा रहा कि योजनाओं के प्रति लोगों में कोई खास उत्साह ज्वाला दृश्यीय बना दिया है। नीची योजना के अंत तक गरीबी रेखा से नीचे जी रहे लोगों की संख्या 18 प्रतिशत तक और अमीर के बीच खाई बढ़ी है। अफसरशाही, गरीबी, दरम और अत्याचार ने आम आदमी के जीवन को बहुत बालझम की समस्या का एक महत्वपूर्ण कारण गरीबी है, हालाँकि इसके लिए और भी कई बातें उत्तरदायी हैं। गरीब तथा बाल मजदूरों की संख्या तो उहँ करीब से भी ज्यादा है। बड़ी संख्या में बच्चों खतरनाक उद्योगों में कार्यरत हैं। में दर्ज बेरोजगारों की कुल संख्या 4 करोड़ 6 लाख थी। देश में बहुआयु मजदूरों की संख्या ढाई लाख से ज्यादा है करने का सवाल है, उस क्षेत्र में बहुत कम प्रगति हो पाई है। जून 1999 के अंत में देश के विभिन्न राज्यों में कार्यालयों की सूची (Socio-economic Justice) - जहाँ तक आर्थिक विषयों की दूर

कंपनियों में बाँटा जाना चाहिए और उन्हें परस्पर प्रतियोगिता की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए।

कम लाभदायक इकाइयों को बंद किया जाना चाहिए। एकान्तिकारी और भीमकाय उद्योगों को कड़े अलग-अलग के लिए ऋण कब तक लेनी रहेंगी? सांख्यिक उद्योगों की प्रतियोगिता (competitive) बनाना पड़ेगा। बोनस और के उद्योगों का प्रबंध एक बुनियादी मुद्दा है। केंद्र और राज्य-सरकारों सांख्यिक क्षेत्र की इकाइयों के घाटों की भरपाई तक औद्योगिक उत्पादन उत्पादनक रहा, पर इसके बाद उसमें गिरावट आई। सांख्यिक क्षेत्र

300 मिलियन टन टैना चाहिए। इसके लिए भूमि और पानी जैसे संसाधनों का उत्तम प्रबंधन जरूरी है।

कि आबादी 2 प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब से बढ़ रही है। इसलिए खानों के उत्पादन का हमारा वार्षिक लक्ष्य लिए हर वर्ष खानों में करीब 70 लाख टन की वृद्धि करनी होगी। इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता जहाँ आबादी के लिए खानों जूटने में संक्षम है। अनुमान है कि हम अपनी भावी आवश्यकताओं की पूर्ति के कारण तीन वर्षों तक हमारी कृषि विकास योजना लक्ष्यों से कम रही, पर इस समय हम देश की 100 करोड़ से उन्नत प्रणाली अपनाकर खानों के मामले में हम आत्मनिर्भर हुए हैं। 1983-84 के बाद मानसून की विफलता के 4. कृषि और औद्योगिक उत्पादन (Agricultural and Industrial Production) - कृषि की

दस्तकार अपना स्वयं ही छोटा कारोबार शुरू नहीं कर सका।

करता है। इसलिए लघु उद्योगों के लिए एक ऋण गारंटी स्कीम शुरू की गई। ऐसी कोई वजह नहीं लगती कि प्रत्येक बजट पेश करते हुए विमर्शों ने यह स्वीकार किया कि लघु उद्योग योजना सृजन में अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा रूप से जुड़े गई है, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा, स्वच्छ पेयजल और बालझम का मामला। वर्ष 2000-01 का बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी तथा अग्रत्यक्ष बेरोजगारी। दरिद्रता और बेरोजगारी के साथ और कड़े समस्याएँ स्वाभाविक करती हैं तथा कृषि व्यवस्था से जुड़ी है। बेरोजगारी की गहराई में विभिन्न श्रेणियाँ देखने को मिलती हैं, जैसे शिक्षित और समाज के कमजोर वर्गों में तो हालत और भी ज्यादा खराब है। भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास सामान्य व्यक्ति ही नहीं, शिक्षित और तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी रोजगार के लिए भटक रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों रोजगार के पथान अवसर जुटाना है। हर साल हमारे देश में रोजगार चाहने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। केवल 3. रोजगार के अवसर (Employment Opportunities) - आज हमारे सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य

की गई।

वर्ष रहा, जैसे कारखाने शुरू और उद्योगों में महाचक्रवात। फिर भी राजकाशीय घाटे को सीमित रखने की कोशिश परीक्षण के बाद अमीरों द्वारा लगे गये प्रतिबंधों का असर पड़ना लगी थी। वर्ष 1999-2000 चुनौतियों का संकट के समाधान के लिए हमें अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक से भारी मात्रा में ऋण लेना पड़ा। परमाणु इस निष्कर्ष पर पहुँचें कि भारत 1956-57 से ही भूतलान-संयोजन की समस्याओं का सामना करता आ रहा है। इस महत्वपूर्ण अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण अब देश में ही होना चाहिए। पर कुछ संशोधन अवधियों को यदि छोड़ें तो हम गया है। भाजन, वस्त्र और अन्यक उपभोक्ता वस्तुओं के मामले में भारत आत्मनिर्भर है। इंजीनियरी माल और 2. आत्मनिर्भरता (Self-reliance) - निर्यात बढ़ा है और बहुत-सी आवश्यक वस्तुओं का आयात घट

नोट

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

अप्रैल 2006 से इस योजना का उच्च प्राथमिक शिक्षा स्कूलों के लिए विस्तार किया गया ताकि 5.4 करोड़ बच्चे इसके आधीन आ जायें। 2008-09 तक दीपहर के योजना की योजना 18 करोड़ बच्चों के लिए तय की गई। इस योजना की सरकारी एवं गैर-सरकारी एजेंसियाँ द्वारा समीक्षा से इस योजना की बहुत-सी कमजोरियाँ सामने आई हैं—अर्थात् उपमानक भोजन (Sub-Standard Meal) या घटिया भोजन, खाना पकाने की घटिया व्यवस्था और भ्रष्टाचार का विद्यमान होना। यह भी देखा गया है कि जिन राज्यों में प्रभावित वर्गों विशेषकर माताओं को व्यवस्था में जोड़ा गया, वहाँ योजना की क्वालिटी उन्नत हो गयी। इसके अतिरिक्त, निगरानी समितियों में माँ-बाप को शामिल करने से इन की प्रभाविता उन्नत हो गयी। इस बात की सख्त जाँच है कि इसमें पारदर्शिता बढ़ायी जाए।

मं 99 रुपये हो गया, फिर इसे बढ़ा कर 2003-04 में 132 रुपये कर दिया गया है। कर 163 रुपये कर दिया गया, परन्तु इसके बाद इस योजना के कारण प्रति विद्यार्थी व्यय 2001-02 बच्चों का इसका लाभ प्राप्त हो सके। किन्तु प्रति विद्यार्थी व्यय जो 1995-96 में 132 रुपये था 1998-99 में बढ़ा खर्च किया। 2004-05 में सरकार ने इस पर आवंटन बढ़ा कर 1,375 करोड़ रुपये कर दिया, ताकि 10.56 करोड़ योजना वाले की। 1995-96 में, सरकार ने इसे 3.34 करोड़ बच्चों को उपलब्ध कराने के लिए 441 करोड़ रुपये दर उन्नत करने के लिए सरकार ने तिमिलनाडु के आधार पर सकल, दीपहर के भोजन (Mid-day Meal) की दीपहर के भोजन की योजना और अन्य सहायक उपाय प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्कूलों में प्रतिव्यय प्रतिव्यय है और इस कारण विना का विषय है।

बाहर रहना और प्राथमिक शिक्षा स्तर पर पढ़ाई छोड़ने वालों की लगभग 51 प्रतिशत दर हमारी भरी विफलता का (Justiciable fundamental right) बना दिया गया। किन्तु 2004-05 तक 72 लाख बच्चों का स्कूल के भारत के संविधान का वर्ष 2002 में संशोधन किया गया और प्राथमिक शिक्षा को न्याय योग्य मूल अधिकार

तक प्राप्त करने का संकल्प किया, देश लगभग 60 वर्षों के बाद भी अभी इस लक्ष्य को प्राप्त करने में बहुत पीछे है। शिक्षा के सर्वव्यापीकरण (Universalisation of Elementary Education) का लक्ष्य 10 वर्षों में 1960 (Retention rate) 43 प्रतिशत था और जनजातियों में 34 प्रतिशत। वहाँ संविधान के निर्माताओं ने प्राथमिक बच्चों में से केवल 490 कक्षा 8 तक 2004-05 में पहुँच पाए। अनुसूचित जातियों में हमारी प्रतिधारण दर सभी कमजोरियों के कारण प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण में हम विफल हुए हैं। कक्षा 1 में 1000 नामांकित लगभग अनुपस्थिति और बच्चों को स्कूलों में शिक्षा के लिए रोक पाने के लिए उचित वातावरण का अभाव। इन में कमी, बँकबादों और अन्य शैक्षणिक सहायक उपकरणों का अभाव, लड़कियों के लिए अलग शौचालयों की 65.9 प्रतिशत थी। इन दोनों वर्गों में स्कूल छोड़ने वालों की दरें, अध्यापकों की अपेक्षाकृत कम उपस्थिति और स्कूलों

3. स्कूल छोड़ने वालों की दर अनुसूचित जातियों में कक्षा 1 से 8 तक 57.3 प्रतिशत और जनजातियों में (Labour force) में, परन्तु वह ती धरलू काम में ही व्यस्त रहती है, अधिकतर भाइयों या बहनों की देखभाल में।" Cost) ग्रामीण क्षेत्र में अधिक है और वह प्रायः कहीं का भी बच्चा नहीं, न तो स्कूल में और न श्रमशक्ति ग्राहकों योजना में ठीक ही उल्लेख किया गया है। "लड़कियों की शिक्षा में अवसर लाना (Opportunity 2. अनुसूचित जातियों एवं जन जातियों में स्कूल छोड़ने वालों में लड़कियों की दर लड़कों से अधिक थी।

बालों का अनुपात लगभग 51 प्रतिशत था। छोड़ने वालों की दर 29 प्रतिशत है और यदि हम कुल प्राथमिक शिक्षा (कक्षा 1 से 8) को देखें, स्कूल छोड़ने उपलब्ध प्राप्त कर ली है, परन्तु स्कूल छोड़ने वालों की दर अभी ऊँची है। प्राथमिक स्तर (कक्षा 1 से 5) में स्कूल 1. वहाँ सरकार ने सकल नामांकन दर (Gross enrolment ratio) के रूप में 96 प्रतिशत से भी ऊपर यदि हम स्कूल छोड़ने वाले बच्चों के प्रतिशत पर ध्यान दें, तो इसमें निम्नलिखित बातें उभरती हैं।

करना संभव होगा। सामाजिक संरचना के आधार पर प्राथमिक शिक्षा में स्कूल छोड़ने वालों (Drop and Out) का अध्ययन 18.2 करोड़ हो गया अर्थात् 2.33 करोड़ की वृद्धि।

प्राथमिक स्तर (कक्षा 1 से 8) पर कुल नामांकन 2001-02 में 15.87 करोड़ से बढ़कर 2004-05 में

नोट

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

नोट

और इसकी निगरानी को उन्नत करने के लिए माँ-बाप, विशेषकर माताओं को इससे जोड़ने से इस योजना में लाभ होगा। किन्तु यह बात अब प्रमाणित हो गयी है कि दोपहर के भोजन की योजना से प्रतिधारण कर (Retention Rate) उन्नत हुई है, विशेषकर कमजोर वर्गों में।

शिक्षा में निजी लागत (Private Cost) को कम करना

स्कूल छोड़ने वालों की दरें घटाने के लिए बहुत-सी सरकारों ने निःशुल्क पोशाक, निःशुल्क पाठ्य-पुस्तकें और स्टेशनरी ऐसे विद्यार्थियों को देने की व्यवस्था की है जो गरीबी-रेखा के नीचे के परिवारों से आते हैं। इसके अतिरिक्त, राज्तीय सड़कों पर निःशुल्क परिवहन के प्रावधान से भी स्कूलों में उपस्थिति उन्नत हुई है, विशेषकर ग्रामों के स्कूलों में चूँकि ये उपाय शिक्षा पर माँ-बाप की निजी लागत कम करते हैं, इस लिए इनसे स्कूलों में हाजिरी और प्रतिधारण दरें बढ़ी हैं। सरकार लड़कियों की शिक्षा के लिए विशेष प्रोत्साहन देती है ताकि माँ-बाप लड़कियों की शिक्षा के लिए अपनी उदासीनता को दूर कर सकें।

माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education) में निष्पादन

जनगणना के अनुसार 15-18 वर्ष के बच्चों की जनसंख्या 2001 में 10.7 करोड़ आंकी गयी और 2006 तक इसके बढ़ कर 11.97 करोड़ हो जाने का अनुमान था। माध्यमिक स्तर के 1.02 लाख और उच्च माध्यमिक स्कूलों के 0.5 लाख स्कूलों में नामांकन 2004-05 में क्रमशः 2.43 करोड़ और 1.27 करोड़ होने का अनुमान है। दोनों में कुल मिलाकर 3.7 करोड़ का नामांकन हो जाता है। यह 14-18 वर्ष के आयु-वर्ग की जनसंख्या का 39.9 प्रतिशत है जो कि काफी नीचा है।

इसके अतिरिक्त, बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों की दर कक्षा 1 से 10 के लिए 2004-05 में 62 प्रतिशत थी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि कक्षा 1 में नामांकन लेने वाले 100 विद्यार्थियों में से केवल 38 प्रतिशत ही कक्षा 11 तक पहुँच सकते हैं जो कि बहुत ही नीचा स्तर है।

इसके अतिरिक्त नामांकन, पढ़ाई छोड़ने वालों की दरों और माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पहुँच में अन्तःराज्तीय असमानताएँ (Inter-state variations) बहुत अधिक हैं। जबकि बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों (Dropouts) की राष्ट्रीय औसत दर 61.9 प्रतिशत है, यह बिहार में 83.1 प्रतिशत, नागालैण्ड में 97.3 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल में 78 प्रतिशत, राजस्थान में 73.9 प्रतिशत, असम में 75 प्रतिशत और अरुणाचल प्रदेश में 70.8 प्रतिशत है जो कि बहुत ही अधिक है। बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों की दरों को कम करने के लिए भारी प्रयास करना होगा ताकि देश माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण (Universalisation of Secondary Education) के लक्ष्य की ओर तेजी से प्रगति कर सके जो कि ज्ञान अर्थव्यवस्था (Knowledge Economy) के विकास के लिए आवश्यक है।

माध्यमिक स्कूलों के प्रबंध का ढांचा

माध्यमिक स्कूलों (Secondary Schools) के प्रबन्ध के ढांचे में संरचनात्मक परिवर्तन हुआ है। जहाँ 1993-94 में सरकार, स्थानीय विकास (Local Bodies) और सहायता प्राप्त स्कूल भारत में कुल स्कूलों के 85 प्रतिशत का प्रबंध करते थे, 2004-05 में इनका भाग गिर कर 70 प्रतिशत हो गया। इसके विरुद्ध, निजी गैर सहायता प्राप्त स्कूलों का भाग जो 1993-94 में 15 प्रतिशत था, बढ़कर 2001-02 में 24 प्रतिशत और 2004-05 में 30 प्रतिशत हो गया। निजी गैर सहायता प्राप्त स्कूलों के भाग का वर्षों में दुगना हो जाना इस बात का संकेत है कि माँ-बाप अपने बच्चों की शिक्षा के लिए अधिक खर्च करने के लिए तैयार हैं यदि उन्हें यह विश्वास हो जाए कि इन स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता (Quality) अच्छी है। इसका अभिप्राय यह कि सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश सरकारी एवं सहायता-प्राप्त स्कूलों (Aided Schools) में बढ़ाया जाना चाहिए ताकि वे भी अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा के केन्द्र बन अधिक विद्यार्थियों को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। केन्द्रीय विद्यालयों का अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि अच्छी प्रकार की शिक्षा कम सम्पन्न परिवारों से आने वाले विद्यार्थियों को सापेक्षित: कम लागत पर उपलब्ध करायी जा सकती है।

नोट

1. पहुँच बढ़ाने के लिए, मापदण्ड यह होगा कि 5 किलोमीटर को अभिसीमा में सैकेन्डरी स्कूल मुहैया कराया जाए और प्रत्येक निवास स्थान से 7-8 किलोमीटर की अभिसीमा में एक हायर सैकेन्डरी स्कूल उपलब्ध कराया जाए। लक्ष्य यह होना चाहिए कि सकल नामांकन अनुपात (Gross Enrolment Ratio) जो 2004-05 में 52 प्रतिशत है बढ़ाकर 2011-12 में 75 प्रतिशत तक उन्नत किया जाए और सैकेन्डरी एवं हायर सैकेन्डरी को जोड़कर सकल नामांकन उसी अवधि में 40 प्रतिशत से बढ़ाकर 65 प्रतिशत किया जाए।
2. वर्तमान स्कूलों में आधार-संरचना (Infrastructure) को मजबूत करने के लिए 3.43 लाख अतिरिक्त कमरे और 5.14 लाख अतिरिक्त अध्यापक बढ़ाए जाएँ।
3. सभी स्कूलों में 2011-12 तक 100 प्रतिशत प्रशिक्षित अध्यापक और 25:1 का विद्यार्थी अध्यापक अनुपात (Pupil Teacher Ratio) प्राप्त करने का लक्ष्य है।
4. ब्लॉक स्तर पर 6, 000 क्वालिटी मॉडल स्कूल स्थापित करना।
5. 15, 000 वर्तमान प्राथमिक स्कूलों को माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तित करना।
6. 1.80 लाख सरकारी एवं सहायता प्राप्त स्कूलों को सूचना एवं संचार टेक्नोलॉजी (Information and Communication Technology) उपलब्ध कराना। इसके लिए प्रत्येक स्कूल में एक कम्प्यूटर प्रयोगशाला (Computer Lab) स्थापित करनी होगी जिसमें 10 कम्प्यूटर, एक सर्वर, एक प्रिंटर इन्टरनेट की व्यवस्था करनी होगी।
7. फीस लगाना—सरकारी एवं सहायता प्राप्त स्कूलों में भी कुछ फीस लगानी होगी ताकि क्वालिटी उन्नत करने के लिए प्रबन्धकों को कुछ साधन उपलब्ध हो सकें। परन्तु गरीबों और कमजोर वर्गों की सहायता के लिए इस वर्ग को उदार रूप में छात्रवृत्तियाँ देनी होगी। इसके साथ-साथ लड़कियों को भी छात्रवृत्तियाँ देनी होगी ताकि बीच में पढ़ाई छोड़ने या अल्पायु में विवाह के जोखिम कम हो सकें।

व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education) 2004-05 के लिए राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आंकड़ों से पता चलता है कि 19-24 आयु वर्ग की जनसंख्या का केवल 5 प्रतिशत ऐसा था जिसने व्यावसायिक शिक्षा द्वारा किसी प्रकार का कौशल प्राप्त कर लिया हो। यहां यह बात ध्यान में रखनी होगी कि शिक्षा आयोग (Education Commission) ने 1966 में यह कल्पना की थी कि 1986 तक सैकेन्डरी स्तर के विद्यार्थियों का 25 प्रतिशत व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करायेंगा। इसके बाद कुलन्दाय स्वामी समिति की रिपोर्ट ने 2000 तक 15 प्रतिशत का व्यावसायिक शिक्षा का लक्ष्य रखा। परन्तु जैसा कि तथ्य व्यक्त किया गया है, देश किसी भी लक्ष्य को पूरा नहीं कर पाया।

व्यावसायिक शिक्षा की विफलता की समीक्षा करते हुए जे.जी.बी. तिलक उल्लेख करते हैं। "व्यावसायिक शिक्षा, विशेषकर सैकेन्डरी स्कूलों में वास्तव में चल नहीं पायी क्योंकि इसका आयोजन गरीबों के लिए द्वितीय श्रेणी की शिक्षा के रूप में किया गया, इसके अतिरिक्त यह अन्तिम रूप में कल्पित की गयी और इसे न ही उच्च शिक्षा के साथ और न ही औद्योगिक या कृषि क्षेत्र के साथ जोड़ गया। इसकी परिकल्पना उच्च शिक्षा की मांग को कम करने की रणनीति के रूप में की गयी। व्यावसायिक शिक्षा, सामान्य सैकेन्डरी शिक्षा से अधिक महंगी थी। इसके अतिरिक्त, व्यावसायिक शिक्षा के स्कूल ग्रेजुएट्स के लिए रोजगार के अवसर बेहतर नहीं थे और परिणामतः व्यावसायिक शिक्षा की आर्थिक प्रत्याय दर (Economic rate of return) सामान्य सैकेन्डरी शिक्षा की तुलना में अपेक्षाकृत कम थी।" (Indian Social Development Report (2009), 36)

ग्यारहवीं योजना में यह कल्पना की गयी है कि मांग-चालित व्यावसायिक शिक्षा (Demand-Driven Vocational Education) के नियोजकों के साथ साझेदारी पर बल देना होगा। ग्यारहवीं योजना के दौरान, 20,000 स्कूलों में 2011-12 तक व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार किया जाएगा और 25 लाख व्यक्ति इससे लाभान्वित होंगे। प्रोग्राम इस प्रकार बनाया जाएगा कि व्यावसायिक, सामान्य और तकनीकी शिक्षा में गतिशीलता (Mobility) की व्यवस्था की जाए। इस दृष्टि में पर्याप्त लोचशीलता की गुंजाइश होनी चाहिए।

खुली और दूरस्थ शिक्षा (Open and Distance Education) स्कूल के स्तर नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओपन स्कूलिंग (National Institute of Open Schooling—NIOS) जैसे बच्चा के लिए जो स्कूली-शिक्षा को असंगत स्थिति में नहीं रख सकती।"

लाएँ यदि निजी क्षेत्र के लिए मानदण्डों और मानकों (Norms) की शर्त लगाई जाती है, तो सरकार अपने संस्थानों निजी क्षेत्र के संस्थानों के लिए मानदण्ड का कार्य करेगी ताकि वे भी अपने मानदण्ड (Standard) इनके स्तर पर उपकरण, विभागीय प्रशिक्षण, पुस्तकालय सुविधाओं और अन्य भौतिक सुविधाओं का भारी अभाव है, ये संस्थान प्रारंभिक योजना में यह बात रेखांकित की गयी कि राज्यीय इंजीनियरिंग कॉलेजों में शैक्षणिक आधारसंरचना (Upgrading) किया जाएगा। वर्तमान संस्थानों की प्रवेश क्षमता में वृद्धि की जाएगी।

की खोज की जाएगी। इसके अतिरिक्त, 200 राज्य इंजीनियरिंग संस्थानों का केन्द्रीय सहयोग द्वारा उन्नयन करती है। इन सभी संस्थानों की स्थापना के लिए निजी-सार्वजनिक साझेदारी (Private Public Partnership) आई.आई.टी., 7 नए आई.आई.एम., 10 नए एन.आई.टी., और 20 नए आई.आई.टी. स्थापित करने की कल्पना विकासशील अर्थव्यवस्था की कुशल मानवशाक्ति की आवश्यकता की पूर्ति की जा सके। इसके लिए योजना 8 नये प्रारंभिक योजना के दौरान, तकनीकी शिक्षा के प्रवेश में 15 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का अनुमान है ताकि एक

प्रारंभिक योजना के तकनीकी शिक्षा सम्बन्धी लक्ष्य

रुपये और 5 करोड़ रुपये प्रदान किए जाएंगे।
नीचा है। प्रारंभिक योजना में, इन कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को एक बार सहयोग के रूप में क्रमशः 1 करोड़ अनुदान (Development grants) के रूप में सहयोग प्रदान की जाती है, परन्तु इसके विस्तार-योग्यता का स्तर बहुत चाहे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 160 राज्यीय विश्वविद्यालयों और 5,625 कॉलेजों को विकास किए जाएंगे। केन्द्रीय विश्वविद्यालय विभाग-आश्रित होंगे और इनके साथ कोई सम्बन्धित कॉलेज नहीं होंगी। स्थापित करने का प्रस्ताव है। निम्नलिखित क्षेत्रों के स्कूल निम्न क्षेत्रों के स्कूल निम्नलिखित और इंजीनियरिंग भी शामिल है, कायम ऐसे राज्य में जहाँ कोई केन्द्रीय विश्वविद्यालय नहीं है, कायम किये जाएंगे। इसमें 14 विश्व स्तरीय विश्वविद्यालय प्रारंभिक योजना के प्रस्तावों में 30 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की स्थापना करना तय किया गया है। इसके 16

योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए एक ही छत के नीचे लाना।

- सभी विश्वविद्यालयों में समान अवसर कार्यालय स्थापित करना और कमजोर वर्गों के सम्बन्ध में सभी एवं अन्य उपायों से सहयोग करना।
- अग्रणी विश्वविद्यालयों, अनुसंधान विभागों, अन्य पृष्ठभूमि, जनजातियों, अन्य पृष्ठभूमि, विकलांगों और लड़कियों के लिए विशेष छात्रवृत्तियाँ, पूर्णकालीन निरंतर समय के लिए प्रोबन्स, होस्टल सुविधाएँ, उपचारालयक शिक्षा
- अग्रणी असंगठित काम करके
- सीमा पर, पहाड़ी, दूरदराज छोटे नगरों और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों के संस्थानों की सहयोग प्रदान
- क्षेत्रीय असंगठित काम करके

के

प्रारंभिक योजना-उच्च शिक्षा के लक्ष्य एवं रणनीति

प्रारंभिक योजना उच्च शिक्षा में सर्वसमावेशी विकास के लक्ष्य को नमूनालिखित उपायों से प्राप्त करना चाहती रहती है।
अर्थ है पाठ्यक्रम विनयेक बोचो-बोच प्रयोगात्मक शिक्षण भी दिया जाता है। इस बात की संज्ञा जरूरत है कि दिया गया है, जैसे नौकरी पर प्रशिक्षण, अंतरकालीन कोर्स, खुली एवं दूरस्थ शिक्षण प्रणालियाँ, सैडविच कोर्स का प्रयोग। शेष 4 करोड़ उम्मीदवार जो अकृशाल या अर्द्धकृशाल रहे, उनके लिए कोई प्रकार की प्रणालियों का सुझाव इन सब प्रयासों के बावजूद, औपचारिक प्रणाली द्वारा केवल 5 प्रतिशत जनसंख्या कोशाल एवं प्रशिक्षण प्राप्त

नीति
में सामाजिक नीति का
ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत
की गति उद्देश्य

प्राप्त करने से वंचित रहे हैं, निरन्तर शिक्षा के अवसर प्रदान करता है। खुली और दूरस्थ शिक्षा द्वारा माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर 14 लाख विद्यार्थी नामांकित हैं।

उच्च शिक्षा के स्तर पर इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय (Indira Gandhi National Open University—IGNOU) दूरस्थ शिक्षा को समन्वित करना है। इसका संचयी नामांकन लगभग 15 लाख है। जिसमें 53 क्षेत्रीय केन्द्रों (Regional Centres) और अध्ययन केन्द्रों (Study Centres) द्वारा 25,000 (Counsellors) की सहायता द्वारा सेवा उपलब्ध करायी जाती है। इसका अपना एफ.एम. रेडियो स्टेशन है और छः टेलीविजन चैनल है। दूरस्थ शिक्षा परिषद् (Distance Education Council) जो IGNOU का एक प्राधिकार है 13 स्टेट ओपन विश्वविद्यालयों और पारम्परिक विश्वविद्यालयों में कार्य कर रहे 119 पत्राचार कोर्सेस (Correspondence Courses) को समन्वित कर रहा है। जबकि दूरस्थ शिक्षा संस्थानों का बड़ी तेजी से विस्तार हुआ है, परन्तु अधिकतर संस्थानों के उन्नयन एवं निस्पादन में सुधार की आवश्यकता है। अधिकतर कारेसपोडेंस कोर्सेस अपने विश्वविद्यालयों के लिए दुधारू गाय बन गए हैं और वे भारी अतिरेक (Surpluses) प्राप्त करते हैं जिसका प्रयोग पारम्परिक विश्वविद्यालयों की योजनाओं के वित्तपोषण के लिए किया जाता है। दूरस्थ प्रणाली द्वारा बहुत से कोर्सेस चलाए जा रहे हैं परन्तु इनके लिए आधारसंरचना (Infrastructure)—भौतिक एवं मानवीय—अत्यन्त अपर्याप्त है। इन असंतुलों एवं कमजोरियों को दुरुस्त करने की आवश्यकता है।

ग्यारहवीं योजना में शिक्षा के लिए वित्तप्रबन्ध

चाहे देश ने जी.डी.पी. का 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने का लक्ष्य बनाया परन्तु इस सम्बन्ध में हमारा निष्पादन प्रत्यांश की तुलना में कहीं कम है। सरकार का शिक्षा पर व्यय जो 1951-52 में जी.डी.पी. का 0.64 प्रतिशत था, बढ़कर 1970-71 में 2.31 प्रतिशत हो गया और फिर 2000-01 में 4.26 प्रतिशत के उच्च स्तर पर पहुँच गया। परन्तु यह 2004-05 में गिर कर 3.49 प्रतिशत हो गया। इसको फिर बढ़ाने की जरूरत है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि शिक्षा पर कुल व्यय कुल बजट का लगभग 12 प्रतिशत है जबकि एक आदर्श बजट में शिक्षा को 20 प्रतिशत प्राप्त होना चाहिए।

शिक्षा में मुख्य उपलब्धियाँ और कुछ सुस्पष्ट विफलताएँ

शिक्षा पर व्यय में लगातार वृद्धि के परिणामस्वरूप सभी स्तरों पर शिक्षा संस्थानों में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है—प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक स्तर पर। देश अब सकल नामांकन अनुपात के रूप में प्राथमिक स्तर पर 96 प्रतिशत उपलब्धि दर्ज कर पाया है चाहे 1 से 8 तक कक्षाओं में बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों (Dropouts) का अनुपात 51 प्रतिशत है जो काफी ऊँचा है। माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर, 14-18 आयु-वर्ग में कुल नामांकन लगभग 40 प्रतिशत था, चाहे 1 से 10 कक्षा तक बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों का अनुपात लगभग 62 प्रतिशत के उच्च स्तर पर था।

उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात 2004-05 में लगभग 11 प्रतिशत था, जबकि विश्व औसत 23.2 प्रतिशत है। देश में उच्च शिक्षा के स्तर पर भारी आधारसंरचना उपलब्ध है जिसमें 378 विश्वविद्यालय और 18,064 कॉलेज हैं। देश इंजीनियरिंग, चिकित्सा, प्रबन्धन में प्रतिष्ठित संस्थान कायम कर चुका है और कृषि एवं विज्ञान में राष्ट्रीय स्तर पर अनुसंधान सम्बन्धी संस्थान स्थापित कर चुका है। इसके परिणामस्वरूप, भारत विश्व में सबसे अधिक शिक्षित मानवशक्ति जनित करता है, केवल चीन को छोड़कर।

विशाल शिक्षा का ढाँचा जिसमें 378 विश्वविद्यालय हैं, 18,064 कॉलेज हैं, 1.52 लाख माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्कूल हैं और 10.43 लाख प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्कूल हैं, देश के लिए गर्व की बात है।

शिक्षा में कुछ महत्वपूर्ण विफलताएँ

किन्तु कुछ महत्वपूर्ण विफलताएँ हैं जिनकी ओर फौरन ध्यान देना चाहिए।

- 60 वर्ष के विकास-नियोजन के पश्चात् भी देश प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाया, जिसे संविधान के अनुसार 1960 में पूरा करना था। देश की स्वतंत्रता के 60 वर्ष बाद भी प्राथमिक शिक्षा के बाहर बच्चों की संख्या बहुत अधिक है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत
में सामाजिक नीति का
नीतिगत उद्दिकास

नोट

- विकलता है जोकि सर्वसमावेश विकास की प्रान्त करने का एक शांतिशांति उपकरण है।
- 3.49 प्रतिशत तक ही पहुँच सका। यह शिक्षा के बारे में हमारी प्राथमिकताओं की एक और भागी पर राष्ट्रीय आयोग (1964-66) द्वारा रखा गया, इसके बावजूद 2004-05 तक जी.टी.पी. के 1986 तक शिक्षा पर सांख्यिक व्यय के रूप में जी.टी.पी. का 6 प्रतिशत खर्च करने का लक्ष्य शिक्षा वर्धन करना है जोकि वे या तो स्वयं-विनियमित या अतिरिक्त-जनन के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।
- 1986 तक शिक्षा पर सांख्यिक व्यय के रूप में जी.टी.पी. का 6 प्रतिशत खर्च करने का लक्ष्य शिक्षा वर्धन करना है जोकि वे या तो स्वयं-विनियमित या अतिरिक्त-जनन के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।
- और इनसे भागी अतिरिक्त अपने विकास के लिए प्राप्त करते हैं। इंद्रिया गांधी राष्ट्रीय खिला विरवारिष्ठालय आरम्भ किया गया था परन्तु विरवारिष्ठालय इन संस्थानों का प्रयोग दुर्धर गाय के रूप में कर रहे हैं।
- दूरस्थ शिक्षा (Distance Education) को देश के विविध भागों को अवसर प्रदान करने के लिए अद्यतनता में महत्त्व की जा रही है।
- अनादी जाति के अल्पसंख्यक भागों को भी भारत की सेवा से सम्पूर्णतः वंचित कर रही जा रही है।
- माता-पितालक व्यावसायिक शिक्षा प्रोग्रामों के लिए निवेशकों के साथ साझेदारी कर एक प्रभावी रणनीति में 1986 तक 25 प्रतिशत का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। अतः इस बात की जरूरत है कि जनसंख्या का केवल 5 प्रतिशत ही कुछ कौशल प्राप्त कर पाया है जबकि शिक्षा आयोग (1964-66) व्यावसायिक शिक्षा को महँगा करने में भागी विकलता है क्योंकि भारत के 19 से 24 आयु वर्ग की उपाय ही जाएँ।
- जोकि राज्य सरकारों के अतिरिक्त, प्रबन्धकों की शिक्षा की गुणवत्ता उन्नत करने के लिए अधिक माध्यम
- सरकारी एवं सहायता प्राप्त स्कूलों में इस बात की जरूरत है कि कुछ महाने योग्य फीस वर्धन की जाए, स्कूलों की आधारसंरचना को शैक्षिक एवं मानवीय दोनों-महत्त्वपूर्ण रूप में मजबूत की जाए।
- माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि निवेश किया जाए जोकि वे अपनी शिक्षा की गुणवत्ता उन्नत कर सकें।
- उपाय है। अतः इस बात की सर्वत्र आवश्यकता है कि सरकारी और सहायता-प्राप्त स्कूलों में अधिक निवेश है यदि उन्हें ऐसा लगता है कि किसी विशेष वर्ग के स्कूलों में अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा हो गया। इसका अभिप्राय यह है कि माँ-बाप अपने बच्चों की शिक्षा के लिए ऊँची फीस देने के लिए सहायता-प्राप्त स्कूलों का अनुपात जो 1993-94 में 85 प्रतिशत था कम होकर 2004-05 में 70 प्रतिशत जो 1993-94 में 15 प्रतिशत था बढ़कर 2004-05 में 30 प्रतिशत हो गया। इसके विरुद्ध, सरकारी और स्कूलों के प्रबन्धकीय ढाँचे में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। गैर-सहायता प्राप्त पब्लिक स्कूलों का भाग अन्तःराष्ट्रीय अन्तर प्राप्त है जोकि वे निरन्तर की जरूरत है जोकि वे अन्तर कम किए जा सकें।
- नामांकन, बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों और माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर बढ़ते अधिक जाकर है।
- संस्थाओं द्वारा अच्छा जीवन उपलब्ध कराने में बहुत-सी कमजोरियाँ बतायी गयी हैं जोकि निरन्तर उपचार की है जिससे स्कूलों में हाजिरी और प्रतिभाग्य दर (Retention Rate) उन्नत हुई है परन्तु गैर-सरकारी
- दोषहर का जीवन प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्कूलों में 18 करोड़ बच्चों की उपलब्ध कराया जाता लिए 44.3 प्रतिशत और लड़कियों के लिए 35.1 प्रतिशत जो कि बहुत नीचा था।
- माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर 2004-05 में नामांकन केवल 39.9 प्रतिशत था-लड़कों के 64 प्रतिशत और लड़कों के लिए 60 प्रतिशत था।
- 10 कक्षा तक पढ़ाई छोड़ने वालों का अनुपात 62 प्रतिशत तक ऊँचा था, यह लड़कियों के लिए
- यह माध्यमिक शिक्षा जो दसवीं कक्षा तक है, शिक्षा समर्पण की अवस्था नहीं है, फिर भी 1 से 65.9 प्रतिशत और 57.3 प्रतिशत है, जोकि समग्र पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों से कहीं अधिक है।
- अनुसूचित जातियाँ एवं जनजातियाँ में बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों का अनुपात (Dropouts) क्रमशः

नीति

एतिसिक्त परिशेष में भारत
में सामाजिक नीति का
नीतिगत उद्देश्य

सदैव विरोधी रहा है।

को नई दिशा दी। उसकी विचारधारा में महिलाओं को बचाना, एक प्रकार का शांण है। और मार्क्सवाद शांण का हुई दुनिया को समझना था। अब स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर अधिकार की माँग करने लगीं। मार्क्सवाद ने महिला आंदोलन विशेष करके अपने पति के प्रति प्रसन्नता का नजरिया अपनाया था। अतः परिवार में नारीवाद का मतलब बदलती की नई परिभाषा की। अब कामवासना की छूट हो गयी। इस धर्म ने कहा कि एक स्त्री को प्रसन्न रहना चाहिए और था। इसका कहना था कि स्त्रियाँ बुराई की जड़ हैं, कामवासना अपने स्वयं में धर है। प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय ने स्त्रियों ही गया और उसका स्थान प्रोटेस्टेंट धर्म ने ले लिया। कैथोलिक धर्म सदैव से स्त्रियों के आगे बढ़ने का विरोधी पूँजीवाद ने उपधाकवावाद को बढ़ावा दिया। इसी समय यूरोप में एक और घटना घटी। वहाँ कैथोलिक धर्म कमजोर है। वहाँ एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक हादसा हुआ। यूरोप में सामन्तवाद की समाप्ति के बाद पूँजीवाद आया और इस औद्योगिक पूँजीवाद और तकनीकियाँ आ गयी हैं। इसके परिणामस्वरूप स्त्रियाँ ने अपने अधिकारों की माँग रख दी दिदेशों में जो नारी आंदोलन चल रहा है उसके पीछे कुछ पुख्ता कारण हैं। वहाँ आधुनिकता, गतिकता, प्रजातन्त्र, भारतीय आधुनिक नारी आंदोलन को परिवार के नारी आंदोलन से पृथक करके नहीं देखा जा सकता।

कानूनी रूप से पुरुषों के बराबर हो गयी।

स्त्रियों की भागीदारी को प्रकट किया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो स्त्रियाँ राष्ट्रीय जीवन की प्रत्येक धारा में जाने वाली क्षेत्रगति का उन्हीं विरोध किया। सन् 1921 के बाद चलने वाले असहयोग आंदोलन में गांधीजी ने की विवाह की न्यूनतम आयु 20 वर्ष होनी चाहिए। वे विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में थे। देवदासी के रूप में चलती गयी स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने में अग्रणी थे। उन्हीं बाल-विवाह का विरोध किया और कहा कि लड़की दयानंद सरस्वती ने बर्तों की उच्चता को स्वीकार करते हुए हिन्दू समाज के सुधार की बात की आगे बढ़ाया। महात्मा तक की मनुस्मृति की खिलफत थी नहीं की। उनके बाद इंदरचन्द्र विद्यासागर ने स्त्री शिक्षा के मसले को उठाया। विशेषता यह है कि जहाँ 1829 में उन्हीं सती प्रथा पर रोक लगाने में सफलता पाई वहीं उन्हीं हिन्दू परम्परा यहाँ वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कड़वाही हिन्दुओं का विरोध किया और नारी सुधार की बात कही। राममोहनराय की स्त्रियों के इस नये आंदोलन से पहले ब्रिटिशकाल में राजा राममोहनराय ने इस आंदोलन को शुरू किया था।

पहले-लिखी स्त्रियों का योगदान विशेष है।

दिया जाता है। हमारे यहाँ भी नारी आंदोलन चल रहा है और उसे गति देने में उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और शहर की वर्गों के समाज विज्ञानों में अपनी स्थानीय समस्याओं के अन्तर्गत जेण्डर समस्या (Gender Problem) को महत्व Liberation Movement), और दुनिया के विभिन्न भागों में इस कड़े अन्य नामों या नामों द्वारा जाना जाता है। कर दिया है। इस आन्दोलन के कई नाम हैं—महिलावाद (Feminism), नारी मुक्ति आंदोलन (Women's आन नारी आंदोलन अपनी पूर्ण गति में है। इस गति को वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण ने अधिक तीव्र

3.10 महिला एवं बाल विकास (Women and Child Development)

पाठित किया गया है और इस हेतु 25000 करोड़ रुपये की राशि आवंटित करने का प्रस्ताव है। प्रभावी कार्यान्वयन की और लगायी जाँहिए। हाल ही में संसद द्वारा शिक्षा अधिकार संबंधी विधेयक साधनों का सीमाबन्धन समाप्त हो जाएगा और देश को अपनी सारी शक्ति प्रस्तावित लक्ष्यों के लिए समिप्त है, व्यय किया जाएगा। ग्यारहवीं योजना की प्राथमिकताओं में शिक्षा पर प्रस्तावित भारी वृद्धि से माध्यमिक शिक्षा (9 से 12) के लिए 30 प्रतिशत उच्च शिक्षा के लिए जिसमें तकनीकी शिक्षा भी 19.4 प्रतिशत हो जाएगा। इसका लगभग 50 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा और साक्षरता के लिए 20 प्रतिशत वार गुना है। साक्षर रूप में शिक्षा पर व्यय 7.7 प्रतिशत से बढ़कर कुल योजना परिव्यय का करोड़ रुपये के परिव्यय का प्रावधान किया गया है। यह दसवीं योजना में 0.54 लाख करोड़ रुपये से • यह बात बड़ी उत्साहवर्धक है कि ग्यारहवीं योजना में शिक्षा पर 2006-07 की कीमतों पर 2.37 लाख

नारी
में सामाजिक नीति का
ऐतिहासिक परिवर्धन में भारत
नीतिगत उर्विकस

करीब 1987 में राजगार और प्रशिक्षण-महिलाओं की राजगार और प्रशिक्षण देने के लिए मदद का कार्यक्रम 1987 में शुरू किया गया। इसका उद्देश्य कृषि, पशुपालन, हथकरघा, हस्तशिल्प, कुटीर और ग्राम उद्योग तथा श्रम कौशल को बढ़ावा देने के लिए परामर्शदाता कार्य में महिलाओं को प्रेरित करना था।

1. **कल्याण और सहयोग सेवाएँ**—इस योजना के अन्तर्गत कामकाजी महिलाओं के लिए छात्रावास का निर्माण किया जाता है। कुछ छात्रावासों में इन महिलाओं के बच्चों के लिए दिन के समय देखभाल करने की सुविधा भी उपलब्ध है।

2. **रोजगार और प्रशिक्षण**—महिलाओं को रोजगार और प्रशिक्षण देने के लिए मदद का कार्यक्रम 1987 में शुरू किया गया। इसका उद्देश्य कृषि, पशुपालन, हथकरघा, हस्तशिल्प, कुटीर और ग्राम उद्योग तथा श्रम कौशल को बढ़ावा देने के लिए परामर्शदाता कार्य में महिलाओं को प्रेरित करना था।

2. महिला विकास (Women Development)

सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में महिलाओं की संख्या 40.71 करोड़ थी जो देश की कुल आबादी का 48.1 प्रतिशत है। स्वतन्त्रता के बाद से ही महिलाओं की उन्नति, विकास योजनाओं का केन्द्रबिन्दु रही है। फिलहाल 60 वर्षों के दौरान इस सन्दर्भ में नीति-निर्माण में कई परिवर्तन आये हैं, जिसमें 70 के दशक तक कल्याण की संकल्पना से 80 के दशक तक 'विकास' की नीति और 90 के दशक में 'आधिकार' पर जोर दिया गया है। महिला व बाल विकास विभाग प्रारम्भ से ही महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक स्तर में सुधार लाने के लिए विशेष प्रकार के कार्यक्रम लागू करता रहा है। महिला और बाल विकास विभाग द्वारा स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण व शहरी विकास आदि जैसे लागू अन्य विकास कार्यक्रम और महिलाओं की अधिकार-सम्पन्न बनाने की दिशा में कार्य गत प्रयास इस प्रकार हैं—

समन्वित बाल विकास सेवा (I.C.D.C.) केन्द्र द्वारा प्रस्तावित योजना है। इसके लिए जहाँ केन्द्र सरकार परियोजना की संचालन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूरा खर्च उठती है, वहीं राज्य सरकारें पूरेक पोषण का खर्च वहन करती हैं।

महिलाओं की सेवाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं।

समन्वित बाल विकास सेवा (I.C.D.C.) केन्द्र द्वारा प्रस्तावित योजना है। इसके लिए जहाँ केन्द्र सरकार परियोजना की संचालन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूरा खर्च उठती है, वहीं राज्य सरकारें पूरेक पोषण का खर्च वहन करती हैं।

बाल विकास सेवा की सबसे निचले स्तर की इकाई जो दूरदराज क्षेत्रों में भी काम करती है, आँगनवाड़ी है। लगभग 1000 की आबादी पर एक आँगनवाड़ी खोली जा सकती है, जबकि जनजातीय क्षेत्रों में 700 की आबादी पर भी एक आँगनवाड़ी होती है। इसकी देखभाल कार्यकर्ता करता है और उसकी मदद के लिए एक सहायक भी उपलब्ध कराया जाता है। आँगनवाड़ी में 6 वर्ष से कम आयु के करीब 60 बच्चों और 12 गर्भवती तथा प्रसूता महिलाओं की सेवाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं।

बाल विकास सेवा की सबसे निचले स्तर की इकाई जो दूरदराज क्षेत्रों में भी काम करती है, आँगनवाड़ी है। लगभग 1000 की आबादी पर एक आँगनवाड़ी खोली जा सकती है, जबकि जनजातीय क्षेत्रों में 700 की आबादी पर भी एक आँगनवाड़ी होती है। इसकी देखभाल कार्यकर्ता करता है और उसकी मदद के लिए एक सहायक भी उपलब्ध कराया जाता है। आँगनवाड़ी में 6 वर्ष से कम आयु के करीब 60 बच्चों और 12 गर्भवती तथा प्रसूता महिलाओं की सेवाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं।

1. समन्वित बाल विकास सेवा (Integrated Child Development Services)

अब हम महिला और बाल विकास कार्यक्रमों का सिलसिले से वर्णन करेंगे—

सन् 1974 में राष्ट्रीय बाल-नीति की घोषणा की गयी और इसके बाद 1975 में इस योजना को लागू किया गया। इसके अन्तर्गत पूरेक पोषण, टीकाकरण, स्वास्थ्य जाँच, स्वास्थ्य परामर्श, स्कूल-पूर्व अनौपचारिक शिक्षा और माताओं के लिए स्वास्थ्य तथा पोषण शिक्षा जैसी सुविधाएँ एकमुद्रत तौर पर उपलब्ध करायी गयीं। इस योजना के लक्ष्य (Target) में गर्भवती तथा प्रसूता महिलाएँ और छः वर्ष तक के बच्चों सम्मिलित हैं। बच्चों और माताओं के लिए बलाय जाने वाला यह एकमात्र सबसे बड़ा कार्यक्रम है। (सन् 2001) के आंकड़ों के अनुसार दो करोड़ 60 लाख से अधिक बच्चों और लगभग 55 लाख गर्भवती तथा प्रसूता महिलाओं को लाभ मिला है। मार्च 2000 तक ऐसी परियोजनाओं की संख्या सारे देश में 4200 थी।

अब हम महिला और बाल विकास कार्यक्रमों का सिलसिले से वर्णन करेंगे—

सन् 1974 में राष्ट्रीय बाल-नीति की घोषणा की गयी और इसके बाद 1975 में इस योजना को लागू किया गया। इसके अन्तर्गत पूरेक पोषण, टीकाकरण, स्वास्थ्य जाँच, स्वास्थ्य परामर्श, स्कूल-पूर्व अनौपचारिक शिक्षा और माताओं के लिए स्वास्थ्य तथा पोषण शिक्षा जैसी सुविधाएँ एकमुद्रत तौर पर उपलब्ध करायी गयीं। इस योजना के लक्ष्य (Target) में गर्भवती तथा प्रसूता महिलाएँ और छः वर्ष तक के बच्चों सम्मिलित हैं। बच्चों और माताओं के लिए बलाय जाने वाला यह एकमात्र सबसे बड़ा कार्यक्रम है। (सन् 2001) के आंकड़ों के अनुसार दो करोड़ 60 लाख से अधिक बच्चों और लगभग 55 लाख गर्भवती तथा प्रसूता महिलाओं को लाभ मिला है। मार्च 2000 तक ऐसी परियोजनाओं की संख्या सारे देश में 4200 थी।

और आवश्यक पढ़ने पर संशोधित भी करता है। इस विभाग के चार ब्यूरो हैं—1. पोषण और बाल विकास, 2. बाल कल्याण, 3. महिला विकास, और 4. बालिका सतर्कता। विभाग के नियंत्रण में तीन संगठन हैं—1. राष्ट्रीय जन सहयोग तथा बाल विकास संस्थान, 2. राष्ट्रीय महिला कोष, और 3. केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड। ये संगठन पूर्ण संस्थागत रूप से कार्य करते हैं। सन् 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग को राष्ट्रीय स्तर की सर्वोच्च विधायी अधिकार प्राप्त संस्थान के रूप में गठित किया गया है। आयोग महिलाओं के लिए संवैधानिक और वैधानिक रक्षा उपायों की जाँच और निगरानी करता है और उन्हें प्रभावशाली ढंग से लागू करने पर भी नजर रखता है।

नीति

और आवश्यक पढ़ने पर संशोधित भी करता है। इस विभाग के चार ब्यूरो हैं—1. पोषण और बाल विकास, 2. बाल कल्याण, 3. महिला विकास, और 4. बालिका सतर्कता। विभाग के नियंत्रण में तीन संगठन हैं—1. राष्ट्रीय जन सहयोग तथा बाल विकास संस्थान, 2. राष्ट्रीय महिला कोष, और 3. केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड। ये संगठन पूर्ण संस्थागत रूप से कार्य करते हैं। सन् 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग को राष्ट्रीय स्तर की सर्वोच्च विधायी अधिकार प्राप्त संस्थान के रूप में गठित किया गया है। आयोग महिलाओं के लिए संवैधानिक और वैधानिक रक्षा उपायों की जाँच और निगरानी करता है और उन्हें प्रभावशाली ढंग से लागू करने पर भी नजर रखता है।

विरलेषण करें।

जो कि विभिन्न समाज विज्ञानों की अवधारणाओं और सिद्धान्तों पर आधारित हैं। यहाँ हम दोनों पक्षों का संक्षेप में स्वास्थ्य, परिवार संरचना, व्यापार क्रियाकलाप, आदि जैसे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तत्वों के बीच सम्बन्ध प्रबन्धन, और गतिशीलता, और (b) जनसंख्या विरलेषण अथवा जनसंख्या परिवर्तन व गरीबी, निरक्षरता, खराब दो विस्तृत क्षेत्र हैं : (a) जनानैतिकीय विरलेषण, अर्थात् आकार, वितरण, रचना, जन क्षमता (fertility), मृत्युदर, सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों पर प्रभाव पर केन्द्रित है। यह कहा जा सकता है कि जनसंख्या विस्तार के भीतर जनसंख्या का अध्ययन इसके आकार, संरचना, वितरण, विकास और इसकी वृद्धि का समाज के आर्थिक,

3.12 जनानैतिकीय विरलेषण (Demographic Analysis)

महिला और बाल कल्याण के लिए कई कार्यक्रम हैं। यदि पर्याप्त जागरूकता है, तो इनका लाभ लिया जा सकता है। सम्बन्ध में कुछ प्रमुख निष्कर्ष निकालना बहुत कठिन है। यह होतै हुए भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि प्राप्त करना होता है। राज्य सरकारें भी अपने स्तर पर मूल्यांकन कर लेती हैं। ऐसी अवस्था में इन कार्यक्रमों के सहायता लेने वाली स्वीडिश संस्थाएँ अपने-अपने ढंग से मूल्यांकन करवाती हैं। उनका उद्देश्य सहायता राशि को अमल में लाती है। जब इन कार्यक्रमों का मूल्यांकन किया जाता है तब बड़ी कठिनाई आती है। सच्चाई यह है कि इन योजनाओं का क्रिया-व्ययन स्वीडिश संस्थाओं द्वारा होता है। कहीं-कहीं स्वयं राज्य सरकार भी इन कार्यक्रमों को महिला और बाल कल्याण योजनाएँ केन्द्र की सहायता से विभिन्न राज्यों में काम कर रही हैं। सामान्यतया

पर लागू होती है।

पौषण सम्बन्धी जरूरतें पूरी कर सकें। यह योजना गरीबी को रोकने से नीचे जीवनमान बढ़ाने वाले परिवारों वाली बालिका की माँ को 500 रुपये की अनुदान राशि दी जाती है ताकि यह बालिका जन्म के बाद अपनी शुरुआत ही अक्टूबर 1997 को हुई। इसके अन्तर्गत 15 अगस्त, 1997 को अथवा उसके बाद जन्म लेने वाली बालिका समृद्ध योजना-इस योजना का उद्देश्य बालिकाओं के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना है। इसकी का प्रयास करना।

6. इंदिरा महिला योजना-यह योजना 1995 में लागू की गयी। इस योजना के उद्देश्य इस तरह हैं-ग्रामीण करने वाले कार्यों में महिलाओं को शामिल करना।

5. स्वशासित परिवारयोजना-यह परिवारयोजना जो पहले ग्रामीण महिलाओं का विकास और अधिकार योजना करने के लिए मदद देना, 3. महिलाओं के बेहतर जीवन स्तर के लिए कार्य करना, और 4. आमदनी अर्जित इस योजना के उद्देश्य हैं-1. महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना, 2. महिलाओं की आवश्यकताओं को पूरा कहलाती थी जो केन्द्र द्वारा प्राथमिकता परियोजना के रूप में 1998 को 5 वर्ष के लिए मंजूर किया गया।

4. जागरूकता कार्यक्रम-केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने 1986-87 में ग्रामीण और निर्धन महिलाओं में जागरूकता कार्यक्रमों के बीच जागरूकता पैदा करना है जिससे वे परिवार और समाज में अपना उपयुक्त योगदान देने के लिए इस योजना को प्रारम्भ किया। इसका मुख्य उद्देश्य विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता पैदा करना और निर्धन महिलाओं में जागरूकता पैदा करना है जिससे वे विभिन्न प्रकार की आमदनी पैदा करने वाली गतिविधियाँ चला सकें।

3. सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रम-यह कार्यक्रम 1958 में शुरू किया गया था। इसके अन्तर्गत स्वीडिश समाज-वर्धन और सीमान्त मजदूरों, निर्धन वर्गों तथा ऐसे परिवारों पर विशेष ध्यान दिया जाता है जिनकी मुखिया महिलाएँ हैं।

वाली महिलाओं को अवसर उपलब्ध करने के लिए उनके हित में सुधार करना है। इस कार्यक्रम में

नीचे

परिवारिक परिवर्धन में भारत में सामाजिक नीति का निर्माण उद्देश्य

पड़ता है।

पुरुषों पर निर्भरता में वृद्धि है। अपरिपक्व आयु में बच्चे को जन्म देने से माँ और शिशु के स्वास्थ्य पर प्रभाव प्रभाव विशेष रूप से शैक्षिक स्तर में कमी, विधवाओं के उच्च अनुपात में वृद्धि, बच्चों की संख्या में वृद्धि, तथा काफी न्यून है। निम्न विवाह आयु सामाजिक प्रस्थिति तथा स्त्रियों के स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। सामाजिक भारत में विवाह की आयु यह दर्शाती है कि लगातार इसमें वृद्धि हो गई है तथापि विकसित देशों की तुलना में यह है और 2.4 प्रतिशत पुरुष व 7.8 प्रतिशत महिलाएँ विधुर/तलाकशुदा/पृथक हैं (वही : 464)। सामान्य रूप में यद्यपि 45.6 प्रतिशत स्त्रियाँ और 54.9 प्रतिशत पुरुषों में विवाह हो नहीं सका, स्त्रियाँ 46.6 प्रतिशत व 42.7 पुरुष विवाहित अविवाहित थे, 44.6 प्रतिशत विवाहित और 5 प्रतिशत विधुर-तलाकशुदा/पृथक किए हुए थे। निम्न आधार पर 15.4 से 19.4 और पुरुषों में 19.9 से 24.7 वर्ष)। वैवाहिक प्रस्थिति के अर्थ में, 1994 में 50.4 प्रतिशत लोग ऊँची है। 1951 के बाद से स्त्रियाँ और पुरुषों दोनों की विवाह आयु में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं (स्त्रियों में स्त्रियाँ 20-24 वर्ष आयु समूह में विवाह अधिक करती हैं। विवाह आयु ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी में काफी 1994 में विवाह की औसत आयु स्त्रियों की 24.7 वर्ष थी (वही : 462)। शहरी

वैवाहिक रचना (Marital Composition)

1998 : 15)

है। 13 राज्यों में निम्न अनुपात राष्ट्रीय स्तर से ऊँचा है तथा 12 राज्यों में निम्न है (Manpower Profile, योजना तथा अन्य कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में चले जाते हैं। अलग राज्यों में भी निम्न अनुपात में अंतर निःसन्देह ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा नगरीय क्षेत्रों में निम्न अनुपात अधिक ऊँचा है क्योंकि एकल पुरुष शिक्षा,

1991 and Manpower Profile, India, 1998 : 10)

है। 1901 में 972 से 1931 में 950, 1951 में 946, 1991 में 930, और 1991 में 927 रहा। (Census of India, बच्चे की जन्म पर मृत्यु, स्त्रियों के साथ बुरा व्यवहार, और कठिन कार्दा। निम्न अनुपात लगातार गिरता चला जा रहा 927 स्त्रियों का अनुपात आता है। निम्न असन्तुलन के कारण हैं—स्त्री बाल हत्या, बालिकाओं की उपेक्षा, बाल विवाह, तब कि प्रयोजन दर पर भी पड़ता है। 1991 की जनसंख्या आकड़ों के अनुसार भारत में प्रति 1000 पुरुषों पर जनसंख्या में निम्न अनुपात महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इसका प्रभाव विवाह दर, मृत्यु दर, जन्म दर और यहाँ

लिंग रचना (Sex Composition)

उत्पादकता।

तेजी से जनसंख्या वृद्धि 3. काम करने वाले लोगों पर अधिक लोगों का निर्भर होना; और 4. श्रम की निम्न की स्वास्थ्य, शिक्षा, वित्तिय सहायता आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक धन का आवंटन; 2. एक वर्ष में जनसंख्या में वृद्धि हुई है; इसका कारण मृत्यु दर में कमी है। इस आयु संरचना के प्रभाव इस प्रकार रहे 1. बच्चों 60 प्रतिशत 15-59 वर्ष आयु समूह के लोगों। (India, 1992 : 19)। 1951 से 25 वर्ष से कम आयु समूह की के अन्त तक कुल जनसंख्या का लगभग 32 प्रतिशत 14 वर्ष आयु समूह के, 8 प्रतिशत 60 वर्ष से ऊपर और समूह के और 6.66 प्रतिशत 60 + वर्ष आयु समूह के हैं (वही : 16)। अनुमान है कि इस वर्ष (2000 A.D.) की आयु समूह के हैं, जबकि स्त्रियों में 37.79 प्रतिशत 0-14 वर्ष आयु समूह के, 55.55 प्रतिशत 15-59 वर्ष आयु प्रतिशत 0-14 वर्ष आयु समूह के, 55.60 प्रतिशत 15-59 वर्ष आयु समूह के, और 6.67 प्रतिशत 60 वर्ष से ऊपर + आयु समूह में आती है (Manpower Profile, India, 1998 : 19)। निम्न के आधार पर पुरुषों में 37.73 37.8 प्रतिशत जनसंख्या 0-14 वर्ष आयु समूह में, 55.5 प्रतिशत 15-59 वर्ष आयु समूह में और 6.7 प्रतिशत 60 का स्तर, और आवश्यक सेवाएँ, सभी आयु से प्रभावित होती हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में वृद्धि से महत्वपूर्ण है। उत्पादक कार्य, आयु में भागीदारी, प्रजनन (reproduction) प्रक्रिया में भागीदारी, उपभोग जनसंख्या, मृत्यु, विवाह आयु, प्रयोजन, आदि। इसका वितरण (distribution) भी सामाजिक आर्थिक प्रभाव की देश में लोगों की आयु रचना जनसंख्या परिवर्तन के तत्वों से सम्बद्ध होती है, जैसे

आयु रचना (Age Composition)

नीचे

वैवाहिक परिवेश में भारत में सामाजिक नीति का गीतान उद्बोधक

नोट

ग्रामीण-शहरी रचना (Rural-Urban Composition)

सन् 1991 के जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या के 25.73 प्रतिशत शहरी और 74.27 प्रतिशत ग्रामीण हैं। 1998 में शहरी जनसंख्या अनुमानतः 28.3 प्रतिशत थी (*Manpower Profile, India, 1998:14*) यद्यपि शहरी जनसंख्या के प्रतिशत में काफी वृद्धि हुई है (1901 में 10.8 प्रतिशत से 1951 में 17.3 प्रतिशत और 1981 में 23.7 प्रतिशत); तथापि 1991 में 26 प्रतिशत जनसंख्या को शहरीकरण का उच्च स्तर नहीं कहा जा सकता। लगभग 224.9 मिलियन लोगों में से (या भारत की कुल जनसंख्या का 26.6%), जो 1991 में अपने पुराने निवास से नयी जगहों में जाकर बस गए, 64.5 प्रतिशत गाँव से गाँव में प्रव्रजन वाले थे, 17.7 प्रतिशत गाँव से शहरों में, 11.8 प्रतिशत शहरों से शहरों में, और 6 प्रतिशत शहरों से गाँवों में जाने वाले थे (वही : 26)। पश्चिम में प्रव्रजन गतिशीलता, जो शहरीकरण के साथ-साथ होती है, अच्छी मानी जाती है क्योंकि यह रोजगार के अवसर तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान करती है लेकिन भारत में यह ग्रामीण गरीबी को शहरों में जाना दर्शाती है और इस प्रकार गरीब बस्तियों में धीमी वृद्धि के बावजूद नगरों और कस्बों में जनसंख्या दबाव का पैमाना तेजी से बढ़ रहा है। गाँवों से शहरी क्षेत्रों में प्रव्रजन में वृद्धि से औद्योगिक व वाणिज्य के क्षेत्रों में सस्ते श्रम की पूर्ति की अपेक्षा की जाती है लेकिन साथ ही इससे शहरों और कस्बों में अधिक समस्याएँ पैदा होने की भी अपेक्षा की जाती है। यद्यपि भारत की ग्रामीण जनसंख्या में भी वृद्धि हुई है तथापि कुल जनसंख्या (अर्थात् 74.2%) का लगभग 18.44 प्रतिशत 1000 व्यक्तियों से भी कम व्यक्तियों वाले छोटे गाँवों में और 36.57 प्रतिशत 2000 जनसंख्या से कम के गाँवों में रहते हैं।

व्यावसायिक संरचना (Occupational Structure)

आर्थिक रूप से सक्रिय लोगों (15 से 59 वर्ष आयु) पर निर्भर आश्रितों (14 वर्ष से कम या 60 वर्ष आयु से अधिक) की संख्या बहुत अधिक है। 1993-1994 में भारत में लगभग 45 प्रतिशत लोग (44.86%) (15-59 वर्ष आयु समूह में) अनुमानतः आर्थिक रूप से सक्रिय या कार्यरत थे और लगभग 55 प्रतिशत आर्थिक रूप से निष्क्रिय थे (वही : 128)। 1993-94, में 44.9 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में और 36.3 प्रतिशत लोग शहरी क्षेत्रों में श्रमशक्ति में लगे थे (वही : 49)। लिंग के संदर्भ में 67.6 प्रतिशत पुरुष (15-59 आयु समूह के) और 32.4 प्रतिशत स्त्रियाँ उत्पादक कार्यों में लगे हैं। 15 से 19 वर्ष की आयु समूह में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में पुरुषों की क्रियाशीलता की दर क्रमशः 73.8 प्रतिशत और 26.2 प्रतिशत है; जबकि स्त्रियों में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में यह दर क्रमशः 14.9 प्रतिशत तथा 85 प्रतिशत है (वही : 129)। 1993-94 में 64.6 प्रतिशत लोग प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) में, 14.2 प्रतिशत लोग द्वितीयक क्षेत्र (निर्माण) में और 21.2 प्रतिशत लोग तृतीयक क्षेत्र (नौकरी) में लगे थे (वही : 229)। पुरुषों में कार्य न करने वालों की सबसे बड़ी संख्या पूर्णकालिक छात्रों की है और स्त्रियों में घरेलू काम करने वाली स्त्रियों की। व्यावसायिक रचना की यह संरचना का प्रभाव सामाजिक स्तर पर पड़ता है जो पुनः स्त्रियों की सामाजिक प्रस्थिति को प्रभावित करता है। श्रम शक्ति में शहरी भागीदारी दोनों के लिए (स्त्री-पुरुष) ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरों में काफी कम है। 0-14 वर्ष आयु समूह में विशेष रूप से क्रियाशीलता की दर दर्शाती है कि शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में बाल श्रम प्रथा स्त्री और पुरुषों दोनों में प्रचलित है। 1993-94 में ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों में यह दर 5-9 वर्ष आयु समूह में 1.1 प्रतिशत और 10-14 वर्ष आयु समूह में 13.8 प्रतिशत थी तथा स्त्रियों में 5-9 वर्ष आयु समूह में 1.4 प्रतिशत और 10-14 वर्ष आयु समूह में 14.1 प्रतिशत थी। शहरी क्षेत्रों में पुरुषों में 10-14 वर्ष आयु समूह में यह दर 0.5 प्रतिशत और स्त्रियों में 4.5 प्रतिशत थी।

साक्षरता संरचना (Literacy Structure)

1991 की जनगणना में साक्षरता स्तर 7 वर्ष और उससे ऊपर की आयु की जनसंख्या के लिए किया गया था। पूर्व की जनगणना में इस उद्देश्य के लिए 5 वर्ष और इससे ऊपर आयु समूह की गणना की जाती थी। 1991 में कुल जनसंख्या का 52.21 प्रतिशत साक्षर पाए गए (64.3% पुरुष, 39.29% स्त्रियाँ) (वही : 142)। एन.एस.एस. का अनुमान है कि 1997 के अन्त तक पुरुषों की साक्षरता दर 72 प्रतिशत और स्त्रियों की 49 प्रतिशत हो गई (*The Hindustan Times, April 17, 2000*)। सर्वाधिक साक्षरता दर (1997 में) मिजोरम में (95%) है और न्यूनतम बिहार में (38.38%) है। शैक्षिक रचना के उपलब्ध आंकड़े कुछ विशेषताएँ दर्शाते हैं—1. साक्षरों की अपार

संख्या कुछ ही वर्षों तक स्कूल जाती है और स्कूल छोड़कर जाने वालों की संख्या बहुत अधिक है। 1991 में भारत में कुल साक्षरों में से 56.7 प्रतिशत 3 वर्ष से भी कम स्कूल गये थे, 23.8 प्रतिशत 3-6 वर्ष की शिक्षा प्राप्त थे, 11 प्रतिशत 7-11 वर्ष, 6.8 प्रतिशत 12-14 वर्ष और 1.7 प्रतिशत 14 वर्ष से अधिक की शिक्षा प्राप्त किए हुए थे (वही : 48)। 2. एक ओर उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की कमी है और दूसरी ओर हमें अधिक संख्या में शिक्षित बेकारों का सामना करना पड़ रहा है।

भाषायी रचना (Language Composition)

हमारे संविधान में वर्णित 15 प्रमुख भाषाओं में से सर्वाधिक प्रतिशत में लोग हिन्दी बोलते हैं (43%), इसके बाद बंगला, तेलुगू और मराठी बोलने वाले (8% प्रत्येक), तमिल और उर्दू (6% प्रत्येक), गुजराती (5%), मलयालम, कन्नड़ और उड़िया (4% प्रत्येक), पंजाबी (3%) और अन्य भाषाएँ (असामी, कश्मीरी, सिन्धी, संस्कृत आदि सहित) (1%) बोलने वाले लोग हैं।

धार्मिक रचना (Religious Composition)

यद्यपि संविधान में भारत को धर्मनिरपेक्ष देश कहा गया है तथापि यहाँ अनेक धर्मों का सम्मिश्रण है। कुल जनसंख्या का (1991 में) 82.6 प्रतिशत हिन्दू, 11.4 प्रतिशत मुसलमान, 2.4 प्रतिशत ईसाई, 2.0 प्रतिशत सिख, 0.7 प्रतिशत बौद्ध, 0.5 प्रतिशत जैन और 0.4 प्रतिशत अन्य हैं। जहाँ जैन लोग (60%) और उसके बाद मुस्लिम (29%) अधिकतर शहरवासी हैं वहीं हिन्दू अधिकतर ग्रामवासी हैं (शहर की जनसंख्या का 76% और ग्रामीण का 84%)।

अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ (Scheduled Castes and Scheduled Tribes)

अनुसूचित जाति के लोग अधिकतर हिन्दू धर्म के हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या का 16.48 प्रतिशत भाग अनुसूचित जाति और 8.08 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियों में थे। (*Manpower Profile, India, 1998 : 34*)। इस प्रकार मोटे तौर पर भारत में 4 लोगों में से एक व्यक्ति अनुसूचित जाति या जनजाति का है। इन समूहों के राज्यवार वितरण में बड़ी भिन्नताएँ हैं। कुल अनुसूचित जातियों में अधिकतम संख्या उत्तर प्रदेश में, फिर पश्चिम बंगाल, बिहार, तमिलनाडु, और आन्ध्र प्रदेश में है, जबकि नागालैण्ड, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश में अनुसूचित जाति के लोग बिल्कुल नहीं हैं। (वही : 34-35)। नागालैण्ड व मेघालय में 80 प्रतिशत से अधिक अनुसूचित जनजाति के लोग हैं और हरियाणा, जम्मू और कश्मीर, पंजाब, सिक्किम और गोआ में अनुसूचित जनजाति के लोग बिल्कुल नहीं हैं। अनुसूचित जनजातियों के लोगों की सर्वाधिक संख्या मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, बिहार और गुजरात में पाई जाती है। कुल अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या का लगभग तीन-पाँचवाँ भाग (62.75%) उपरोक्त पाँच राज्यों में है (वही-34)।

3.13 जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion)

द्वितीय महायुद्धोत्तर काल (अर्थात् 1945 के बाद का समय) को जनानिकी में जनसंख्या विस्फोट का काल कहा जाता है। यह वह काल था जिसमें भारत सहित सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या में अभूतपूर्व तथा तेज गति से वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए, जब 1600 ए.डी. में भारत की अनुमानित जनसंख्या 10 करोड़ थी, वहीं 1800 में 12 करोड़, 1901 में 23.84 करोड़, 1951 में 36.11 करोड़, 1991 में 84.96 करोड़, 1997 में 95.52 करोड़ तथा मई 2000 में यह 100 करोड़ थी (*Manpower Profile, India, 1998 : 12 and Crime in India, 1997 : 12*)। इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ 1600 ए.डी. और 1800 ए.डी. के बीच 200 वर्षों में इसमें 20 प्रतिशत वृद्धि हुई और अगले 100 वर्षों में (तथा 1801 और 1901 के बीच) लगभग 100 प्रतिशत (98.66%) वृद्धि हुई, वहीं अगले 100 वर्षों में (1901 से 2000 तक) यह वृद्धि 319 प्रतिशत हुई। यदि जनसंख्या वृद्धि को पुनः तीन स्पष्ट अवधियों में विभाजित करें—(a) 1901 से 1931 तक, (b) 1931 से 1961 तक, और (c) 1961 से 1999 तक, तो पता चलता है कि 30 वर्ष की प्रथम अवधि में केवल 17 प्रतिशत की वृद्धि हुई, अगले 30 वर्षों में 57.4 प्रतिशत की वृद्धि

नोट

हुई और अगले 38 वर्षों (या लगभग चार दशकों में) में 127 प्रतिशत की विस्फोटक वृद्धि हुई। इस प्रकार 1921 से पूर्व जनसंख्या वृद्धि मन्थर गति से (sporadic), 1921 से 1951 के बीच तीव्र गति से (rapid), और 1951 के बाद इसको विस्फोटक (explosive) कहा जा सकता है।

जनसंख्या में वृद्धि (Increase in Population)

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा 1997 में तैयार किए गए राष्ट्रीय जनसंख्या नीति पत्रक के अनुसार कुल प्रजनन शक्ति दर (total fertility rate or TFR), यानी 2.1, सन् 2010 तक प्राप्त कर लिया जायेगा। लेकिन रजिस्ट्रार जनरल की प्रेक्षाओं के अनुसार, 2.1 का टी.एफ.आर. वर्ष 2026 से पूर्व प्राप्त नहीं किया जा सकता (यदि मौजूदा जनानिकी प्रवृत्ति जारी रहे)। यह दर्शाता है कि सरकार और राष्ट्र जनसंख्या वृद्धि नियंत्रण करने में कितने उदासीन रहे हैं।

विस्फोटक गति से वृद्धि करती हुई भारत में जनसंख्या के निम्नलिखित पक्ष प्रमुख हैं—

- आजादी से पहले भारत की जनसंख्या में 10 करोड़ की वृद्धि में साढ़े बारह साल, दूसरे 10 करोड़ में सवा नौ साल, तीसरे 10 करोड़ में साढ़े सात साल, चौथे 10 करोड़ में सवा छह साल और पाँचवें 10 करोड़ में मात्र पाँच साल दो महीने का समय लगा।
- एक दशक पूर्व विश्व में प्रत्येक छठा व्यक्ति भारतीय था और शताब्दी के बदलते ही प्रत्येक पाँचवाँ व्यक्ति भारतीय है।
- भारत की जनसंख्या में हर मिनट में 30 और प्रतिदिन 43,200, और हर वर्ष 1.55 करोड़ व्यक्ति जुड़ जाते हैं। (Census Commissioner Indian, *The Hindustan Times*, August 18, 1999)
- भारत की जनसंख्या में वृद्धि 15 दिन में एक चंडीगढ़ (6,40,725 जनसंख्या) और प्रत्येक माह में एक आस्ट्रेलिया (1.85 करोड़) की जनसंख्या के बराबर हो जाती है। भारत में हर वर्ष में जनसंख्या में वृद्धि (1.55 करोड़) फ्रांस (58.4 मिलियन जनसंख्या) ब्रिटेन (58.8 मिलियन जनसंख्या) और इटली (57.6 मिलियन जनसंख्या) की मिश्रित जनसंख्या से कुछ कम है।
- 2035 तक भारत चीन से आगे निकलकर विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश हो जायेगा। जब भारत में जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर 3.5 प्रतिशत है वहीं चीन में यह 2.1 प्रतिशत है। 1999 के अन्त में चीन की आबादी 125.9 करोड़ थी और भारत की 99.5 करोड़ थी। चीन की जनसंख्या को 2010 तक 140 करोड़ पर नियंत्रित करने का तथा वृद्धि दर 1.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष के नीचे रखने का लक्ष्य तय किया गया है। (Bhaskar, May 8, 2000)।
- भारत की जनसंख्या में एक दशक में लगभग 40 प्रतिशत की वृद्धि चार राज्यों—बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश—में ही है। (जिन्हें बीमारू—BIMARU के नाम से भी जाना जाता है।)
- जो जोड़े (couples) पुनरोत्पादी विस्तृति (reproductive span) से बाहर हो जाते हैं उनका तीन गुणा इस चक्र में प्रवेश कर जाते हैं। जो पुनरोत्पादी चक्र में प्रवेश करते हैं उनकी प्रजनन क्षमता तीन गुणी अधिक होती है, अपेक्षाकृत उनके जो चक्र से बाहर हो चुके हैं।
- वृद्धि की वर्तमान दर पर अधिकतर भारतीयों का जीवन असह्य (unbearable) हो जायेगा—चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराना मुश्किल होगा, शिक्षा, आवास आदि पर व्यय अधिक हो जायेगा, प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा मात्र अभिजात वर्ग को ही विशेषाधिकार बन जायेगा और भोजन की कमी एक बार फिर से आधे से अधिक राष्ट्र को गरीबी रेखा से नीचे ले जायेगी।

जनसंख्या वृद्धि या जनानिकी उथल-पुथल के विश्लेषण में यह कहा जा सकता है कि देश तीन विविध चरणों से गुजरता है जिसमें प्रत्येक में विभिन्न प्रवृत्तियाँ होती हैं। वह तीनों चरण अधिक जन्म-अधिक मृत्यु, अधिक जन्म-कम मृत्यु, और कम मृत्यु-कम जन्म की शृंखला दर्शाते हैं। प्रथम 'स्थिर' (stationary) चरण में जन्म और मृत्यु दोनों ही दर ऊँची और अनियंत्रित होती हैं, इसलिए जनसंख्या वृद्धि कम होती है। दूसरा चरण 'विस्तार'

परिवार नियोजन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्त्रियों की शिक्षा से है और स्त्री शिक्षा विवाह के समय आयु, स्त्रियों की प्रस्थिति, उनकी प्रजनन शक्ति, बाल मृत्यु दर आदि से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है। एन.एस.एस. के द्वारा 1999 के आँकड़ों के अनुसार भारत में समूचा साक्षरता प्रतिशत 62 प्रतिशत था जबकि 1991 में 52.21 तथा 1981 में 43.56 प्रतिशत था। 1991 में पुरुष साक्षरता प्रतिशत 64.13 था जबकि स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत 39.29 था।

3. उच्चशिक्षिता (High Literacy)

न कि 15-18 या 18-21 वर्ष आयु समूह में। नियोजन करना है तो स्त्रियों का विवाह (ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में) 21-23 या 23-25 आयु समूह में किया जाये। हम देखते हैं कि जैसे जैसे आयु समूह अधिक होता है, प्रजनन दर कम होती जाती है। यदि जनसंख्या वृद्धि पर और 46 थी। यदि हम जनन क्षमता दर को आयु समूहों से जोड़ें (प्रति स्त्री से जन्म बच्चों की औसत संख्या) तो क्षेत्रों में बाल मृत्यु दर (1978 में) क्रमशः 141, 112 और 85 थी जबकि शहरी क्षेत्रों में यह दर क्रमशः 78, 66 वर्ष से कम, 18 वर्ष से 20 वर्ष तक, तथा 21 वर्ष से अधिक-तब हम देखते हैं कि इन तीनों समूहों में ग्रामीण 49 प्रति हजार पर थी। यदि विवाह के समय स्त्रियों की आयु के सन्दर्भ में उन्हें तीन समूहों में विभाजित करें-18 दर 1000 प्रति जीवित जन्म (live births) पर 74 थी-ग्रामीण क्षेत्रों में यह दर 80 तथा शहरी क्षेत्रों में यह दर बाल मृत्यु दर का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्त्री की विवाह के समय आयु से है। 1995 में भारत में औसत बाल मृत्यु रूप से या मनोवैज्ञानिक और आयु क्रम से ही विवाह के लिए तैयार होती है।

आज भी बड़ी संख्या में लड़कियों का विवाह ऐसी आयु में ही जाता है जब वे न तो सामाजिक रूप से या भावात्मक में विवाह की औसत आयु में वृद्धि हुई है। यद्यपि अनुमान है कि विवाह की औसत आयु में वृद्धि हो रही है तथापि 15 वर्ष की आयु से पूर्व और 34 प्रतिशत 10 वर्ष की आयु से पूर्व सम्पन्न हो जाते थे। तब से स्त्री पुरुषों दोनों हमारे देश में बाल विवाह आम बात रही है। 1931 की जनगणना के अनुसार, भारत में 72 प्रतिशत विवाह

2. विवाह के समय कम आयु (Low Age at Marriage)

पहुँचते हैं कि परिवार के प्रजनन काल में प्रत्येक पाँच में से एक भारतीय स्त्री हर समय गर्भवती रहती है। (है) को जन्म की वार्षिक संख्या में जोड़ें (0.17 करोड़) जो कि देश में होते हैं, तो हम इस बात का निष्कर्ष पर के आँकड़ों (1 करोड़ से 1.1 करोड़ के बीच, जिसमें 0.4 करोड़ स्वतःपाल और 0.67 करोड़ प्रेरित गर्भपात शामिल बच्चों की औसत संख्या) 1950 के दशक में 6 से घटकर 1993-94 में 4.4 हो रहे गये। यदि हम वार्षिक गर्भपात देखी गई है, अतः इस वृद्धि दूरी ने हमारी जनसंख्या को तेजी से बढ़ाया है। प्रजनन दर (प्रति स्त्री जन्म दिए गए (Manpower Profile, 1998: 37)। इस प्रकार वार्षिक जन्म दर में उधेक्षण कमी और मृत्यु दर में तीव्र कमी 28.1 हो गई। मृत्यु दर भी 1951-61 में प्रति हजार जनसंख्या में 27 से घटकर 1996 में 9.1 हो रही है। भारत में वार्षिक औसत जन्म दर जो 1951-61 में प्रति हजार जनसंख्या पर 42 थी, 1996 में घटकर 1. जन्म एवं मृत्यु दर के बीच विस्तृत दूरी (Widening Gap Between Birth and Death Rate)

जनसंख्या विस्फोट के लिए निम्नलिखित कारण बताये जा सकते हैं- का बड़ा आधार (base)।

1951 के बाद जनसंख्या वृद्धि की व्याख्या निम्न कारकों के आधार पर की जाती है-उपवासनात्मक व

जनसंख्या वृद्धि के कारण (Causes of Population Growth)

के महत्व को कम कर देते हैं) साक्षरता तथा शिक्षा मृत्यु। के कुछ लक्षण हैं-शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, (दोनों ही उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए परिवार व नातेदारी बन्धनों प्रजनन दर भी कम हो सकती है जब आर्थिक व सामाजिक स्तर में सुधार आ जाये। आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन (decline) का है। भारत अभी भी द्वितीय चरण में से गुजर रहा है जिसमें प्रजनन दर मृत्यु से अधिक रहती है। (expansion) का है वार्षिक जन्म दर काफी अधिक है और मृत्यु दर घटती जाती है। तीसरा चरण 'अधोगति' (retardation) का है वार्षिक जन्म दर घटती जाती है। तीसरा चरण 'अधोगति'

नीचे

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

नोट

(वही : 42)। 1999 में, यह अनुमानतः क्रमशः 73 तथा 49 प्रतिशत था। शिक्षा व्यक्ति को उदार, विशाल हृदय, नये विचारों के लिए तत्पर तथा तर्कसंगत बनाती है। यदि स्त्री और पुरुष दोनों को ही शिक्षित किया जाता है तो वे सरलता से परिवार नियोजन के तर्क को समझ जायेंगे, लेकिन उनमें से कोई एक या दोनों ही अशिक्षित होंगे तो वे अत्यधिक रूढ़िवादी, धर्मभीरू एवं विवेकहीन होंगे। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि केरल में जहाँ कुल साक्षरता दर 89.81 प्रतिशत और स्त्रियों की साक्षरता दर 86.91 प्रतिशत है (1991 में) वहाँ सबसे कम जन्म दर (17.8 प्रति हजार) है, जबकि राजस्थान में स्त्री शिक्षा दर 20.44 प्रतिशत (वही : 378.42) के साथ देश में जन्म दर तीसरे स्थान पर सबसे ऊँची है (34.6 प्रति हजार); सबसे ऊँची जन्म दर उत्तर प्रदेश में (36 प्रति हजार) है और उसके बाद मध्य प्रदेश (34.7 प्रति एक हजार) में है। ये सांख्यिकी आँकड़े अन्य राज्यों के लिए भी काफी सही हैं।

4. परिवार नियोजन के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण

(Religious Attitude Towards Family Planning)

धार्मिक दृष्टि से कट्टर एवं रूढ़िवादी लोग परिवार नियोजन के उपायों के उपयोग के विरुद्ध होते हैं। अधिकतर महिलाएँ यह तर्क देती हैं कि वे ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध नहीं जा सकतीं। कुछ स्त्रियाँ यह तर्क देती हैं कि स्त्रियों के जीवन का उद्देश्य ही बच्चों को जन्म देना है। कुछ अन्य स्त्रियों के दृष्टिकोण में निष्क्रियता है—“यदि मेरे भाग्य में ही अनेक बच्चों को जन्म देना लिखा है तो मैं उन्हें जन्म दूँगी, यदि नहीं तो नहीं। इसके विषय में मैं चिन्ता क्यों करूँ?”

भारतीय मुसलमानों में जन्म दर एवं उत्पादकता दर हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक है (मुस्लिम महिलाओं में उत्पादकता दर 4.4 है, जबकि हिन्दुओं में 3.3)। 1978 में ऑपरेशंस रिसर्च ग्रुप द्वारा मुसलमानों में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार, यद्यपि अधिकतर पुरुष और स्त्री उत्तरदाता आधुनिक परिवार नियोजन के तरीकों को जानते थे, किन्तु या तो वे धार्मिक आधार पर उनका प्रयोग नहीं कर रहे थे या उनको सही जानकारी नहीं थी।

1992 में जनसंख्या अनुसंधान केन्द्र, उदयपुर द्वारा किये गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि 218 मुसलमान पुरुष साक्षात्कारियों में से 43.1 प्रतिशत परिवार नियोजन को स्वीकृति देने वाले थे, 26.6 प्रतिशत अस्वीकृति देने वाले थे और 30.3 प्रतिशत ने ठीक से जवाब नहीं दिया (वही : 110)। इसकी तुलना में 2748 हिन्दू पुरुष साक्षात्कारियों में से 61.7 प्रतिशत ने इसे सहमति प्रदान की, 14.5 प्रतिशत ने अस्वीकृति, और 23.8 प्रतिशत ने अनिश्चितता प्रकट की (वही : 110)। यह दर्शाता है कि मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा परिवार नियोजन में अधिक रूढ़िवादी हैं।

अन्य कारण (Other Causes)

जनसंख्या वृद्धि के कुछ अन्य कारण हैं—संयुक्त परिवार और इन परिवारों में युवा दम्पतियों में अपने बच्चों के पालन-पोषण के प्रति जिम्मेदारी में कमी, मनोरंजन के साधनों की कमी, तथा बन्ध्याकरण, ट्यूबोक्टोरी तथा लूप के बुरे प्रभावों के विषय में गलत सूचना या सूचना की कमी। बहुत से गरीब माँ-बाप इसलिए बच्चे पैदा करते हैं क्योंकि उन्हें उनकी आवश्यकता है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि हमारे देश में लगभग 3.5 करोड़ बाल श्रमिक हैं। यदि यह परिवार उन बच्चों को काम करने से रोक लें तो उनके परिवार की आमदनी बहुत कम हो जायेगी।

गरीबों के द्वारा अधिक बच्चे पैदा करना दर्शाता है कि गरीबी और जनसंख्या के बीच आन्तरिक सम्बन्ध है। गरीबी जनसंख्या वृद्धि का कारण और प्रभाव भी है। अधिक बच्चे पैदा करके (बेटे) अपने परिवार की बढ़ती आवश्यकताओं से जूझते माँ-बाप को बाध्य होकर उन्हें स्कूल जाने से रोकना पड़ता है ताकि वे घर खर्च में मदद कर सकें। और फिर, अशिक्षित तथा अज्ञानी बच्चे अपने पिता के जैसे भाग्य के ही उत्तराधिकारी होंगे और अपने पिता की ही तरह इतने पुत्र चाहेंगे जितने कि जीवन-यापन के लिए आवश्यक होते हैं।

जनसंख्या विस्फोट के प्रभाव (Effects of Population Explosion)

जनसंख्या वृद्धि का प्रत्यक्ष प्रभाव लोगों के जीवन स्तर पर पड़ता है। यही कारण है कि आजादी के बाद से हमारी कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों में चमत्कारिक प्रगति के बावजूद भी हमारी प्रति व्यक्ति आय में संतोषजनक वृद्धि नहीं हो पाई है।

नसंख्या वृद्धि ने भारत पर किस प्रकार प्रभाव डाला है? अनुमान है कि 2.5 करोड़ लोग (100 करोड़ में ग्रैंड (33%) अक्षांशित है, 5 वर्ष आयु से कम 53 प्रतिशत बच्चे कम वजन के हैं और सर्पूरा देश विषम मानव विकास सूची में 135वें स्थान पर है। हमारे शहरों में अत्यधिक भीड़भाड़ (जो कि केन्द्र वृद्धि की तरह गन्दी बस्तियाँ में फलफूल रही है) ने यातायात, विद्युत तथा अन्य सेवाओं में व्यवधान डाला है। इससे शहरी व उपनगरीय क्षेत्रों में अपाय और हिंसा में वृद्धि हुई है। यह सब कुछ प्रतिवर्ष 1.5 करोड़ जनसंख्या में वृद्धि से प्रभाषित हुआ है (वर्षी-11)। यदि जनसंख्या इसी दर से बढ़ती रही तो आने वाले कुछ वर्षों में हमारे पास बेरोजगार, भूख और असह्यता (वर्षी-11) की पीढ़ी होगी। चुनाव का खेल संख्या का खेल है। चाहे शिक्षा, रोजगार, आवास, जल आपूर्ति या कि अन्य कोई क्षेत्र हो, एक ही प्रश्न है: कितनी के लिए? यहाँ तक कि वर्तमान में 100 करोड़ की जनसंख्या के लिए (मई 2000 में) सभी के लिए रोजगार या आवास या स्वास्थ्य सेवा कार्यक्रम के विषय में सोचना भी निरर्थक है, क्योंकि 2001 वृद्धि के लिए हमें प्रति वर्ष 1.5 लाख प्राथमिक विद्यालय और 3.75 लाख माध्यमिक विद्यालय अध्यापकों की आवश्यकता होगी, 5000 अस्पताल और हिस्पैट्रियों की, 2000 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की, 2 लाख अस्पताल के बिस्तरों की, 50 हजार डॉक्टरों की, 25 हजार नर्सों की, सेवा करोंड विक्टल से अधिक खदान, 20 करोड़ मीटर कपड़े की और 25 लाख मकानों की तथा 40 लाख नौकरियों की आवश्यकता होगी। (टी हिस्टोरियल टाइम्स, जूलाई 4, 1997 और ईटिया फ्राम फिडगाइंट टू फिलनिगम)।

जीवन की गुणवत्ता पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव धरेलू वेदना की सूची (Household Misery India (HMI) के अन्तर्गत, अर्थात् लोगों की वचनाओं और मूलभूत आवश्यकताओं के अर्थ में परीक्षण किया जा रहा है (देखें बौम, 1996)। एच.एम.आई. (HMI) सूची के पाँच मापदण्ड हैं: पक्का मकान, सुरक्षित पीने का पानी, बिजली, सफाई व्यवस्था, तथा खाना पकाने के लिए ईंधन। कुछ विद्वानों ने इसका (जनसंख्या वृद्धि) परीक्षण मानव संसाधनों के अर्थ (साक्षरता, स्वास्थ्य आदि) में किया है।

वर्तमान में 49.1 प्रतिशत भारत के लोगों के घरों में बिजली नहीं है, 69.7 प्रतिशत शौच घर सुविधा, (पत्थर या अन्य प्रकार के शौचालय) प्राप्त नहीं है, 51.5 प्रतिशत के पास पक्के मकान नहीं हैं और 19 प्रतिशत की सुरक्षित पीने का पानी उपलब्ध नहीं है। (आउटलुक, अगस्त 21 1996 : 53)। यदि हम भारत में 1990 की मानव विकास सूची की तुलना कुछ चयनित वस्तुओं के आधार पर अन्य देशों से करें तो हमें पता चलता है कि बढ़ती जनसंख्या का हमारे जीवन की गुणवत्ता पर गम्भीर प्रभाव पड़ा है।

1996 की यू.एन.डी.पी. (UNDP) की रिपोर्ट के अनुसार (Outlook, op.cit : 51) भारत केवल 14 हजार (लगभग 500 रुपये) प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष स्वास्थ्य और शिक्षा पर खर्च करता है जबकि अन्य विकासशील देश, जैसे दक्षिण कोरिया और मलेशिया, 150 से 160 हजार खर्च करते हैं। हमारे देश की गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली लगभग 37 प्रतिशत जनसंख्या पर इस अपर्याप्त धनराशि के प्रभाव की कल्पना ही की जा सकती है। यह सब आँकड़े क्या पूर्वानुमान (prediction) देते हैं? 21वीं सदी प्रारम्भ हो गई है। 1970 के दशक में प्रकाश और आशा थी। 1980 के दशक में अन्धकार का समय आया। जनसंख्या विस्फोट, उग्रवाद एवं अत्याचारवाद की जल मिला। 1990 के दशक में ये सब मानने और अधिक गहराते गए। हमारे देश को विषम अव्यवस्था की कठोर स्थिति का सामना करना है। भारत अब एक ऐसी नीति की तलाश करेगा जो जनसंख्या विस्फोट के प्रकार को सख्ती से नियंत्रित में संक्षम होगी। जब तक भारत की ऐसी नीति नहीं मिलती, इसका परिणाम उज्ज्वल नहीं हो सकता।

नोट

पारिवारिक परिवर्धन में भारत में सामाजिक नीति का साकारक उद्देश्य

3.14 जनसंख्या वृद्धि एवं नियंत्रण की सैद्धान्तिक व्याख्यायें (Theoretical Explanations of Population Growth and Control)

नोट

जनसंख्या पर नियंत्रण और विकास (Development and Control Over Population)

जनसंख्या और विकास के बीच के सम्बन्ध को 1940 के दशक में प्रिन्सटन विश्वविद्यालय के जनसंख्या अनुसन्धान कार्यालय द्वारा इस आधार पर कि विकास जननक्षमता (fertility) की दर को कम कर देता है, समझाया गया है। अब यह कहा जाता है कि विकास मृत्यु दर को जन्म दर की अपेक्षा अधिक कम करता है जिसका परिणाम जनसंख्या में वृद्धि होती है। फिर भी कुछ समय के बाद जन्म दर भी आवश्यक रूप से कम होती ही है और इस कारण एक बार फिर से जनसंख्या वृद्धि दर धीमी हो जाती है। लेकिन यह सिद्धान्त इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर नहीं देता कि जैसे-जैसे विकास होगा तो जन्म दर में कमी कब आयेगी? यह, यह भी नहीं बताता कि जननक्षमता किस स्तर तक कम होगी और वह समय अवधि जिसमें यह कमी शुरू होगी क्यों होगी? जननक्षमता कमी की गति और समय प्रश्नों के बाद फिर प्रश्न उठता है उन कारकों की पहचान का जो जननक्षमता में कमी पैदा करते हैं। जनांकिकी परिवर्तन के समय का अनुमान लगाने के लिए संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन में 21 चरों (variables) को परखा गया जिसमें प्रति व्यक्ति आय, नगरीकरण, स्त्री शिक्षा, आदि शामिल थे। परिणाम व्यर्थ ही रहा।

घरेलू अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त (Theory of Economy of Households)

इस सैद्धान्तिक दृष्टिकोण के अनुसार एक गृहस्थी बड़े परिवार की कीमत (cost) का परितुलन प्राप्त लाभों से करता है। जब तक बच्चों के पालन-पोषण की कीमत अतिरिक्त आय के अर्थ में प्राप्त लाभों की तुलना में कम रहती है तब तक जन्म दर ऊँची बनी रहेगी। परिवर्तन तब आएगा जब नगरीकरण, आवश्यक रूप से बच्चों को विद्यालय भेजना, बाजार प्रवेश (market-penetration) आदि जैसे सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप बच्चों के लालन-पालन की कीमत लाभों की अपेक्षा ऊँची होगी। जौन काल्डवैल का जननक्षमता में कमी का सिद्धान्त (1982) भी यही बताता है कि जननक्षमता में कमी तब शुरू होती है जब संसाधनों की कमी (reversal) माता-पिता की अपेक्षा बच्चों की ओर हो जाती है और यह कमी वृहत् सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों से सम्बद्ध होती है।

गर्भ निरोध तक पहुँच सम्बन्धी विचारों के विसरण का सिद्धान्त

(Theory of Diffusion of Ideas Regarding Access to Contraception)

उपरोक्त सिद्धान्त, जो जननक्षमता के आर्थिक और सामाजिक निर्धारकों पर आधारित हैं, को एक अन्य सिद्धान्त के द्वारा चुनौती दी गई है जो गर्भ निरोध तक पहुँच और जननक्षमता नियंत्रण के सम्बन्ध में विचारों के विस्तार की भूमिका पर जोर देता है। एन्सले कोल (1973) ने इस सिद्धान्त का 1850 और 1930 के बीच यूरोप में प्रजनन शक्ति दर में कमी के अध्ययन के द्वारा समर्थन किया। गर्भ निरोधकों की उपलब्धता उर्वरता दर में कमी तथा इसके विपरीत वृद्धि करती है।

भारत में अध्ययनों ने इन सभी सिद्धान्तों का समर्थन किया है और अन्य कारकों की ओर भी संकेत किया है जो जननक्षमता को प्रभावित करते हैं, जैसे विवाह के समय अधिक आयु या वे कारक जो गर्भ निरोधक विधियों के प्रयोग में बाधक बनते हैं, जैसे स्त्री शिक्षा, बेटों का महत्व, गरीबी, आर्थिक क्रियाकलापों में स्त्री सहभागिता, आदि। के.जी. जौली, अनिरुद्ध जैन आदि द्वारा इस सन्दर्भ में भारतीय आँकड़ों के साथ अनुभवाश्रित अध्ययन किए गए हैं। जौली (Jolly, 1986) ने गर्भ निरोधी विधियों की प्रचलन दर और नगरीकरण के स्तर, स्त्री शिक्षा, आर्थिक क्रियाकलापों में स्त्रियों की सहभागिता के बीच सकारात्मक सम्बन्ध पाया और आर्थिक असमानता के स्तर और गैर हिन्दू जनसंख्या के बीच नकारात्मक सम्बन्ध देखा। जैन (1985) ने अन्तर्राज्यीय आँकड़ों पर कार्य करते हुए पाया कि शिशु मृत्यु सबसे महत्वपूर्ण चर है जबकि स्त्री शिक्षा, नगरीकरण आदि अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध कारक हैं। एक अन्य अध्ययन में पाया गया कि जहाँ तक गर्भ निरोधक उपायों के प्रचलन दर का सम्बन्ध है स्त्री शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण कारक है (देखें प्रणव बनर्जी, 1992 : 250-256)।

जनसंख्या नीति (Population Policy)

संकीर्ण रूप में 'जनसंख्या नीति' यू.एन.ई.पी. (UNEP) का अर्थ है (1973 : 632), "जनसंख्या की विशेषताओं या आकार, संरचना और वितरण को प्रभावित करने का प्रयत्न"।

वर्तमान संदर्भ में इसका अर्थ है— "आर्थिक और सामाजिक दशाओं को नियमित करने के प्रयत्न जिसमें जनसांख्यिक परिणाम सम्भावित हों"।

(1975 : 20) ने कहा है कि उक्त संकीर्ण अर्थ उस 'स्पष्ट नीति' (explicit policy) से है जो जनसंख्या की विशेषताओं के प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है, और विस्तृत अर्थ 'उपलक्षित नीति' (implicit policy) से है जो

इन विशेषताओं के परीक्षण से और कभी-कभी बिना बाह्य (explicit) इंद्रों को प्रभावित करती है।

दो प्रकार की जनसंख्या नीतियाँ बताई गई हैं— (a) प्रसव विरोधी (antimatal) नीति जिसका उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि को हतोत्साहित (discourage) करना है, और (b) वितरणत्मक (distributional) नीति

जिसका उद्देश्य जनसंख्या के वितरणत्मक असन्तुलन पर विचार करना एवं उन पर कार्य करना है। राष्ट्रीय विज्ञानों की अकादमी ने जनसंख्या नीति का इस प्रकार विवरण किया है— (a) जो पूर्व निर्धारित उद्देश्य के अनुसार

जनसांख्यिक प्रक्रिया को प्रभावित करे (उदाहरण के लिए लोगों को नगर क्षेत्रों से उप-नगरीय क्षेत्रों में जाने के लिए प्रोत्साहित करना) और (b) जो जनसांख्यिक प्रक्रियाओं से उत्पन्न मामलों को पूर्णतः से उत्पन्न नगरीय क्षेत्रों

में लोगों को मूल सुविधाएँ प्रदान करना)।

भारत जैसे विकासशील देश की जनसंख्या नीति के उद्देश्य निम्न होने चाहिए— (i) जन्म दर कम करना

((ii) परिवार में दो बच्चों तक संख्या सीमित करना ((iii) मृत्यु दर कम करना (iv) तेज गति से बढ़ती जनसंख्या के परिणामों के प्रति जन जागरण पैदा करना (v) आवश्यक उपयुक्त उपयुक्त उपलब्ध करना (vi) ग्रामीणों को

वैध बनाने सम्बन्धित कानूनों का क्रियान्वयन (vii) प्रोत्साहन एवं हतोत्साहन दोनों देना। दूसरी ओर, इसके यह भी उद्देश्य हैं (a) शीघ्रता से क्षेत्रों में लोगों को केन्द्रित होना रोकना (b) नये क्षेत्रों में प्रभावी आवास के लिए आवश्यक सार्वजनिक सेवाएँ उपलब्ध कराना, और (c) कम जनसंख्या वाले स्थानों में कार्यक्षेत्रों का पुनर्स्थापना।

एक बार जनसंख्या नियंत्रण की आवश्यकता अनुभव हो जाये तो विशेषज्ञों से सलाह करने तथा अध्ययन के लिए आयोगों और समितियों की नियुक्ति करके नीति बनाई जानी चाहिए। तब विविध कार्यक्रमों के द्वारा इसका

क्रियान्वयन हो और समय-समय पर मूल्यांकन भी।

भारत की जनसंख्या नीति (a) जनसंख्या के कुल आकार का (b) अधिक वृद्धि दर का; और (c) ग्रामीण

तथा शहरी क्षेत्रों में असमान वितरण की समस्या का प्रत्यक्ष परिणाम है। क्योंकि हमारी नीति के उद्देश्य की

आवश्यकता है, 'जीवन की गुणवत्ता में सुधार', और 'व्यापकता में सुधार' को वृद्धि करना, अतः सामाजिक नीति और आवश्यकताएँ हैं, 'जीवन की गुणवत्ता में सुधार', और 'व्यापकता में सुधार' को वृद्धि करना, अतः सामाजिक नीति और

व्यक्तिगत सुख पूर्णता के लिए उद्देश्य को विस्तृत उद्देश्य को प्राप्त करने के साधन के रूप में कार्यवाही होनी चाहिए।

प्रारम्भ में, 1952 में बनाई गई नीति अस्थाई, लचीली और 'प्रयत्न और श्रम' के दृष्टिकोण पर आधारित थी।

शरीर-धर्म के स्थान पर आर्थिक वैज्ञानिक योजना प्रारम्भ की गई।

1960 के दशक के दौरान अधिक शांतिपूर्ण परिवार नियोजन कार्यक्रम एक उपयुक्त समय के भीतर जनसंख्या वृद्धि को स्थिर करने के लिए बनाया गया। पूर्व में जब सरकार द्वारा यह माना जा रहा था कि परिवार नियोजन

स्वतंत्रता के बाद 1952 में जनसंख्या नीति समिति और 1953 में परिवार नियोजन अनुसन्धान और कार्यक्रम समिति गठित की गई। 1956 में एक केन्द्रीय परिवार नियोजन बोर्ड बनाया गया जिसने बन्ध्याकरण पर बल दिया।

नोट

कार्यक्रम ने लोगों को काफी प्रेरित कर दिया है और सरकार को केवल गर्भ निरोध की सुविधाएँ ही प्रदान करनी हैं, बाद में यह अनुभव किया गया कि लोगों को प्रेरणा की ओर शिक्षित करने की आवश्यकता थी।

अप्रैल 1976 में तत्कालीन स्वास्थ्य व परिवार नियोजन मंत्री कर्ण सिंह ने संसद के सामने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति प्रस्तुत की जो सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों, शैक्षिक संस्थाओं, सुविख्यात जनांकिकी शास्त्रियों तथा अर्थशास्त्रियों से लम्बी बातचीत व सलाह के बाद बनाई गई थी। इस नीति में कार्यक्रमों के विस्तृत आयाम थे जिनमें विवाह की आयु कानूनी रूप से बढ़ाना, उन राज्यों को प्रत्यक्ष आर्थिक प्रोत्साहन देना शुरू करना जो परिवार नियोजन में अच्छी भूमिका अदा करें, स्त्री शिक्षा के सुधार की ओर अधिक ध्यान देना, सभी उपलब्ध जन-संचार के साधनों द्वारा सार्वजनिक शिक्षा (रेडियो, टेलीविजन, प्रेस, फिल्म), नसबन्दी तथा बन्ध्यकरण ऑपरेशन कराने वाले को वित्तीय प्रोत्साहन देना तथा प्रजनन जीव विज्ञान और गर्भ निरोध में नये अनुसन्धान शुरू करना शामिल हैं। यद्यपि इस नीति को संसद की मान्यता मिल गई, यह उस समय बनाई गई थी जब आपातकाल लागू था। भारतीय युवा कांग्रेस के अध्यक्ष संजय गांधी के नेतृत्व में बन्ध्यकरण आन्दोलन में इतनी ज्यादाियाँ हुईं कि लोगों ने इसको अत्याचार माना। कुछ उत्तर भारतीय राज्यों में यह कार्यक्रम इतनी संवेदनहीनता तथा अति उत्साह से चलाया गया कि आपातकाल के बाद 1977 के चुनाव में ये ज्यादाियाँ चुनाव का मुद्दा ही बन गईं और केन्द्र में कांग्रेस पार्टी पराजित हुई। 1980 में जब इन्दिरा गांधी पुनः सत्ता में वापस आईं उन्होंने परिवार नियोजन कार्यक्रम के अपने वायदे को पूरा करने में सावधानी और सूझबूझ से काम लिया। तब से, लगभग सभी राज्य तथा केन्द्र सरकारें इतनी कतराती रही हैं कि जनसंख्या वृद्धि दर जो कि 2 प्रतिशत कम होने की उम्मीद थी, अभी भी (2000 में) लगभग 2.35 प्रतिशत है।

1979 में जनसंख्या नीति पर कार्य कर रहे समूह (Working Group) ने शुद्ध प्रजनन दर (net reproductive rate) एक (1.0) तक कम करने के लम्बे समय के जनांकिकी लक्ष्य रखने की सिफारिश की। इस लम्बे समय के लक्ष्य के उद्देश्य इस प्रकार रखे गए—1. परिवार का औसत आकार 4.3 बच्चों से 2.3 बच्चे रखा जाये, 2. प्रति हजार जन्म दर 33 से 21 होगा, 3. मृत्यु दर प्रति हजार 14 से 9 होगी जबकि बाल मृत्यु दर 129 से 60 होगी, 4. परिवार नियोजन के द्वारा वरणीय (eligible) 22 प्रतिशत सुरक्षित दम्पतियों की बजाय 60 प्रतिशत दम्पतियों को सुरक्षित किया जायेगा और 5. 2050 A.D. तक भारत की जनसंख्या 120 करोड़ तक हो जायेगी।

1993 में, एक राष्ट्रीय जनसंख्या नीति प्रस्तावित करने के लिए स्वामीनाथन समिति गठित की गई जिसने मई 1994 में एक नीति पत्रक (Policy draft) प्रस्तुत किया।

परिवार नियोजन (Family Planning)

1950 के दशक में भारत सरकार समर्थित परिवार नियोजन कार्यक्रम चलाने वाला प्रथम देश था जबकि शेष जगत को इस समस्या का आभास भी नहीं था। आज 60 वर्ष बाद भी भारत जनसंख्या नियंत्रण में पीछे है। दुर्दान्त आपातकाल में 1975 व 1977 के बीच, राजनैतिक नेताओं, सरकारी अधिकारियों और पुलिसकर्मियों ने जोर से बन्ध्यकरण की वकालत की। उन्होंने महत्वकांक्षी कार्यक्रम बनाए और जन इच्छा के विरुद्ध चलाया भी। बन्ध्यकरण कराने के ऐसे ठोस कठोर और जबर्दस्ती वाले तरीके अपनाए कि आज जनता के समक्ष परिवार नियोजन की बात करना भी संकोच होता है। परिवार कल्याण/नियोजन विभागों के सम्बन्धित अधिकारी इससे हमेशा स्तम्भित (scared) रहे हैं। विशेषज्ञों ने लक्ष्य पूर्ति की उम्मीद छोड़ दी है। सत्य तो यह है कि व्यवहार में देश के पास न तो प्रभावी कार्यक्रम रहा है और न ही लक्ष्य। राजनैतिक दल बड़ी सावधानी से विषय से बचकर चुनाव अभियान में इस विषय पर बोलते तक नहीं। एक बार जो विषय उच्च नाटकीय राजनैतिक प्रकरण हुआ करता था अब मात्र निषेध (taboo) बनकर रह गया है।

1977 में परिवार नियोजन को 'परिवार कल्याण' नाम दिया गया और परिवार कल्याण के सभी पक्षों को लेते हुए दक्षता से परे, स्त्रियों के शिक्षा स्तर को सुधारने के कार्य सहित विषय इसमें सम्मिलित किए गए। परिवार नियोजन जागरण मुहिम में भारत सरकार ने 'पहला बच्चा अभी नहीं' के यू.एन.ई.पी. (UNEP) के दिशा-निर्देशन पर प्रत्येक अगले बच्चे के जन्म में फासलों की मुहिम को चलाया।

1. आर्थिक और सामाजिक विकास का उद्देश्य लोगों के जीवन स्तर को उठाना, उनके लिए कल्याण संबंधी कार्यक्रम बढ़ाना और उन्हें समाज में उत्पादी परिसम्पत्ति (productive assets) बनने के अवसर उपलब्ध करना है। अवलम्बनीय (sustainable) विकास के लिए जनसंख्या को स्थिर करना आवश्यक है। ऐसे विकास के लिए सभी व्यक्तियों के लिए प्रजननीय (reproductive) स्वास्थ्य संबंधी देखभाल सुलभ करवाना, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए अवसर बढ़ाना, सफाई, सुरक्षित पीने का पानी व मकान बनाने मूल सुविधाएँ देना, महिलाओं का सशक्तिकरण करना एवं उन्हें काम करने के अवसर प्रदान करना तथा यातायात व संचार के साधन उपलब्ध करवाना जरूरी है।
2. भारत में जनसंख्या में वृद्धि के मूल कारण हैं : प्रजननीय आयु समूह में जनसंख्या का बड़ा आकार, उच्च प्रजनन क्षमता (fertility), तथा लड़कियों का कम आयु में विवाह। अतः राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के प्रमुख उद्देश्य हैं : गर्भिणीय, स्वास्थ्य अथःसंरचना (infrastructure), स्वास्थ्य कार्मिक तथा जननीय

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (2000)

फरवरी 16, 2000 को भारत सरकार ने एक नई नीति की घोषणा की। इसके मूल लक्ष्य निम्न थे-
 1. इनके अतिरिक्त लगभग 5 लाख अंशकालिक ग्रामीण स्वास्थ्य विद्वानों को भी है।
 2. अग्रणीय के लिए प्रेरित किया जा सके। लगभग 5 लाख विद्वानों एवं सह-विद्वानों का कर्मचारी इस कार्यक्रम में लगे
 3. सेवाएँ प्रदान करना तथा इन सेवाओं के विषय में सभी लोगों तक सूचना पहुँचाना ताकि लोगों को परिवार नियोजन
 4. परिवार नियोजन कार्यक्रमों में लगे गाँवों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की विशेष कार्य करने हैं : लोगों को
 5. परिवार नियोजन कार्यक्रमों में लगे गाँवों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की विशेष कार्य करने हैं : लोगों को
 6. परिवार नियोजन कार्यक्रमों में लगे गाँवों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की विशेष कार्य करने हैं : लोगों को
 7. परिवार नियोजन कार्यक्रमों में लगे गाँवों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की विशेष कार्य करने हैं : लोगों को
 8. परिवार नियोजन कार्यक्रमों में लगे गाँवों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की विशेष कार्य करने हैं : लोगों को
 9. परिवार नियोजन कार्यक्रमों में लगे गाँवों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की विशेष कार्य करने हैं : लोगों को
 10. परिवार नियोजन कार्यक्रमों में लगे गाँवों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की विशेष कार्य करने हैं : लोगों को

1977 में सरकार के पतन का डर खोल दिया।
 बन्दी, तथा फुटपाथों पर रहने वाले व्यक्तियों को परिवार नियोजन विधि के रूप में इस बर्तना (विस्तारण) ने अन्तः
 बुद्धि विकार रहते हैं रिजल, चपरासी, लोथिक कर्मी, स्कूल अध्यापक, आबाध ग्रामीण, अस्पतालियों के मरीज, बेल के
 दबाव, निर्दयता, भ्रष्टाचार और अतिशयोक्तिपूर्ण उपलब्धि आँकड़ों का परिणाम था। निर्दयता और बर्तना के सबसे
 दर 40 से 65 प्रतिशत के बीच रही। 1976-77 की सर्वोच्च उपलब्धि दर को 'सर्वोच्च प्रभाव' कहा गया है जो कि
 प्रतिशत की सर्वोच्च दर (200%) 1976-77 में देखी गई जबकि अलग-अलग वर्षों में बन्धकता लक्ष्य प्राप्त की
 और उन्हें प्राप्त करने के लिए आर्थिक प्रतीपन व विज्ञान में लेकर कार्य सम्पन्न करने के लिए उपाय किए। लक्ष्य
 (अधिकतर पुरुष बन्धकता) दबाव डाल सके। सरकार ने विभिन्न राज्यों और जिलों के लिए लक्ष्य निर्धारित किए
 जो कि जिला अधिकारियों पर अधिक निर्भर रहे जो अपने अधिकारी वर्ग पर बन्धकता अभियान के लिए
 परिवार नियोजन के विभिन्न तरीकों में से सरकार अब तक 'विधिवर दृष्टिकोण' पर अधिक निर्भर रही है

सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र थी।
 स्थापित किए गए हैं। 1998 में देश में लगभग 1.5 लाख उपकेन्द्र, 25,000 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा 2500
 क्रिया-चयन हेतु बनाया गया है। बड़ी संख्या में केन्द्र व उपकेन्द्र ग्रामीण क्षेत्रों में भी प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में
 1000 केन्द्रों का जाल, पूर्व सरकारी सहयोग से राज्य सरकारों के माध्यम से परिवार नियोजन कार्यक्रम के
 (56-5) के बीच स्थापित किए गए। तब से सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों का एक जाल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों
 51 में आधिकारिक रूप से बनाए गए लगभग 150 परिवार नियोजन क्लिनिक प्रथम पंचवर्षीय योजना
 में अपनाए गए (Measures Adopted)
 नीति में परिवार, इस बात पर निर्भर करता है।
 प्रचलित है जो कि परिवारों के अग्रणीय है जो कि परिवारियों, उपलब्धता तथा समय
 में अधिक प्रचलित नहीं है क्योंकि इस समूह के लोगो जन्म नियंत्रण के अन्य तरीके
 (sheath) और म पड़ती है, मध्यमवर्गीय समूहों में निवर्तन (withdrawal) विधि तथा
 (diaphragm) और है। कच्छोम और गोलियाँ उच्च सामाजिक
 (pill), निवर्तन (withdrawal), लघु, गर्भ निरोधक गोली (pill), निवर्तन (withdrawal), लघु

नीति

परिवारिक परिवेश में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

सभी क्षेत्रों में लक्ष्यों की उपलब्धि खराब नहीं रही है यद्यपि बन्धुकरण की संस्था कम हुई है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य संवर्धन के अनुसार (NFHS, 1992 : 93), जो कि स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा चलाया गया था, 13 वर्ष से 49 वर्ष आयु समूह की भारतीय स्त्रियों में से केवल 6 प्रतिशत ही किसी आधुनिक गर्भ नियंत्रण के तरीके का प्रयोग करती हैं। तथापि एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार लगभग आधे दम्पति परिवार नियोजन का अनुसरण नहीं करते यद्यपि 90 प्रतिशत इसके विषय में जानकारी रखते हैं (The Hindustan Times, February 11, 1971)।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद, अगले आठ पंचवर्षीय योजनाओं में इस कार्यक्रम को बरीयता दी गई, लेकिन 1968-69 से ही जन्म दर में कमी देखी गई। 1961 में जो जन्म दर 41.7 प्रति हजार थी, 1994 में 28.7 और 1995 में घटकर 25.2 प्रति हजार रह गई। 1956 और 1996 के बीच लगभग 13 करोड़ जन्म-जापान की वर्तमान जनसंख्या के बराबर-ताल दिए गए (The Hindustan Times, February 11, 1971)।

उपलब्धि प्राप्ति (Progress Achieved)

इसके अलावा कुछ और उपाय निम्न अपनाये जायेंगे-1. सुविधित गर्भपात के लिए सुविधाओं की संशोधन करना; 2. रोगीवाहन (ambulance) सेवाओं के लिए कर्जा देना; 3. लड़कियों के व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए समर्थन देना; 4. 1976 के बाल-विवाह प्रतिबन्ध अधिनियम को सख्ती से लागू करना; 5. 2026 तक लोकसभा के लिए सदस्य संख्या न बढ़ाना।

बाल-सतर्कता केन्द्र स्थापित करना।
 गर्भ बन्धुकरण (sterilisation) के लिए स्वास्थ्य बीमा योजना लागू करना; (v) गाँवों में बाल-गैट और आयु के उपरान्त जन्म देने के लिए 500 रुपये का पुरस्कार; (iv) गरीबी रेखा से नीचे दम्पतियों के लिए दो बच्चों महिला और शिशु विकास विभाग द्वारा 500 रुपये तक प्रोत्साहन देना; (iii) गाँवों में पहली सन्तान 19 वर्ष की (i) अनुकरणीय कार्य के लिए ग्राम पंचायतों व जिला परिषदों को पुरस्कार देना; (ii) दो बच्चों तक लड़कियों के लिए छूटें परिवार के विचार को बढ़ावा देने के लिए निम्न अधिनियमों संबंधी उपचारों का सुधार किया गया है-

मशहूर जनजातिकी विशेषताएँ आदि होंगी।
 प्रधानमंत्री तथा सरस्य सभी राज्यों के मुख्यमंत्री, केन्द्रीय परिवार कल्याण मंत्री, गैर-सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि, सरकारी का है, इसलिए मॉनीटर करने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की जायगी जिसके चेयरमैन व किशोरों पर अधिक ध्यान देना, और गैर-सरकारी संगठनों का सहयोग। जनसंख्या नियंत्रण का कार्य कृषिक राज्य ग्राम स्तर पर सेवाओं की उपलब्धि, महिलाओं का सर्वाधिकार, नारों में गन्दी बस्तियाँ, गाँवों में जनजातीय समुदायों इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निम्न प्रोग्राम को लागू करने पर बल दिया गया है; योजना का विकेंद्रीकरण, प्रजनन क्षमता (TPR) स्तर के लिए छूटें परिवार के विचार को प्रोत्साहित करना।

(xi) जननीय और बाल स्वास्थ्य देखभाल में वित्तियता को एकीकृत व्यवस्था पर बल देना; (xii) (ix) एड्स के बारे में जानकारी देना; (x) प्रेषणीय (communicative) बीमारियों पर नियंत्रण द्वारा करवाने पर बल देना; (viii) गर्भपात (contraception) के बारे में पूरी जानकारी उपलब्ध कराना; (vii) प्रसव (deliveries) 80 प्रतिशत संस्थात्मक तरीकों से और 100 प्रतिशत प्रोत्साहित करने के लिए टीका द्वारा उन्मुक्त (immunise) करना; (vi) लड़कियों का विवाह 20 वर्ष के बाद कम करना; (v) मातृ मृत्यु दर को एक लाख पर 100 से कम करना; (iv) बच्चों को रोकना; (iii) 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा को मुफ्त व अनिवार्य करना; (ii) शिशु मृत्यु दर को प्रति

(i) मूल प्रजननीय और बाल स्वास्थ्य सेवाएँ और अधःसंरचना संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 2010 तक प्राप्त करना था। यह लक्ष्य था-
 उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए 14 राष्ट्रीय सामाजिक विकास कार्यक्रमों को शुरू करना।
 जो अल्पसंख्यक आर्थिक व सामाजिक विकास के लिए उचित 5 तक जनसंख्या को उस स्तर तक प्रजनन दर को कम करना। इसका दीर्घकालीन लक्ष्य है। इसका मध्यकालीन लक्ष्य है।
 स्वास्थ्य देखभाल के लिए एकीकृत सेवा पर अधिक निर्धारित किये गये, जिन्हें

नीति

ऐतिहासिक परिदृश्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

नोट

February 11, 1997)। भारत में कण्डोम का प्रयोग इतना कम है कि यह प्रतिवर्ष केवल प्रति दम्पति 6 है। सर्वेक्षण के द्वारा बन्ध्यकरण दर पर दिए गए आंकड़े (30%)—जो परिवार नियोजन कार्यक्रम का मुख्य आधार हैं—अविश्वसनीय हैं क्योंकि अधिकतर बन्ध्यकरण 2 या तीन बच्चों के जन्म के बाद अपनाया जाता है। भारत की कुल उर्वरता दर अभी भी 3.5 है और यह सर्व-विदित है कि यह दर 3 से 2.1 पर लाना एक कठिन कार्य है और वह अवस्था भारत में अभी शुरू भी नहीं हुई है (सहाय, 1977)। आज यह प्रयास भी इस सीमा तक कम हो गया है कि आशीष बोस, एक सुविज्ञ जनांकिकीयशास्त्री ने अपने 1990 के दशक में भारतीय जनसंख्या' विषय पर वक्तव्य में (8 फरवरी 1991 में दिल्ली में) कहा कि देश में परिवार नियोजन कार्यक्रम पूरी तरह से असफल हो गया है और इसकी सफलता के लिए बिल्कुल नये दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

जनसंख्या वृद्धि को रोकने में प्रगति बहुत धीमी गति से हुई है जैसा कि चीन से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है जिसने गहन परिवार नियोजन कार्यक्रम के माध्यम से 1970 से 20 करोड़ बच्चों के जन्म को रोक दिया है और जननक्षमता दर को अर्ह (eligible) माताओं में 5.82 से कम करके 2.5 पर ला दिया है (स्त्री जो 15 वर्ष से 49 वर्ष की आयु के बीच उत्पादक वर्षों में औसत संख्या में बच्चों को जन्म देगी (The Hindustan Times, July 11, 1994)। चीन ने शहरी क्षेत्रों में 'एक दम्पति का एक बच्चा' का प्रतिमान अपनाया और ग्रामीण क्षेत्रों में एक दम्पति के दो बच्चों के बाद प्रतिबन्ध लगाया तथा नियोजित बच्चे तथा उनके माता-पिता के लिए भी प्रोत्साहन दिए। जो इन प्रतिमानों का उल्लंघन करते उन्हें दण्डित किया जाता था। नियोजित बच्चे को शिक्षा तथा पालन-पोषण के लिए 14 वर्ष की आयु तक विशेष भत्ता दिया जाता था तथा उसके माता-पिता को मकान बनाने के लिए भूमि या फार्म के लिए मशीन आदि दी जाती थी। चीन में इस कार्यक्रम का प्रमुख भाग है, देर से विवाह और देर से बच्चों को जन्म देने के लिए प्रोत्साहित किया जाना।

भारत में प्रजनन स्वास्थ्य (reproductive health) से सम्बद्ध उपलब्ध तथ्य (Outlook, August 21, 1996 : 58) संकेत करते हैं कि—

- वर्षभर में कुल गर्भाधानों (conceptions) के लगभग 78 प्रतिशत अनियोजित होते हैं और लगभग 25 प्रतिशत निश्चित रूप से अनचाहे होते हैं।
- भारत में लगभग तीन करोड़ स्त्रियाँ अच्छी परिवार नियोजन सेवाएँ चाहती हैं क्योंकि वे उपलब्ध सेवाओं/कार्यक्रमों से सन्तुष्ट नहीं हैं।
- प्रतिवर्ष होने वाले लगभग 1.1 करोड़ गर्भपातों में से 31 प्रतिशत आत्मस्फूर्त (spontaneous) होते हैं।
- गर्भ धारण तथा बच्चों को जन्म देने की अवधि में एक लाख से अधिक स्त्रियाँ मर जाती हैं।
- लगभग तीन चौथाई प्रसव घरों में ही होता है और केवल एक तिहाई प्रसव डॉक्टर, नर्स या मिडवाइफ के सहयोग से होते हैं।
- प्रत्येक 13 बच्चों में से एक बालक एक वर्ष के जीवनकाल में ही मर जाता है और प्रत्येक नौ में से एक पाँच वर्ष की आयु तक पहुँचते मर जाता है। शिशु मृत्यु दर (infant mortality) ग्रामीण में 52 प्रतिशत है।

जनसंख्या विस्फोट नियंत्रण के लिए सुझाए गए उपाय

(Measures Suggested to Control Population Explosion)

हमारे देश में लगातार विस्फोटक स्थिति की जनसंख्या के लिए आत्म-मंथन की आवश्यकता है। सरकार को समस्या के विस्तार का आभास है और सरकार सोचती है कि राष्ट्र और सरकार के सामने यह सबसे बड़ी चुनौती है। लेकिन परिवार नियोजन के क्षेत्र में निश्चित किए गए लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए गम्भीर कदम उठाने में 1976-77 के सरकार के अनुभव ने आगे आने वाली सभी सरकारों को अति सतर्क बना दिया। फिर भी, अभी भी कार्य करने के लिए समय है। जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रमों को करने के सुझाव दिये जा सकते हैं—

नोट

प्रोत्साहन बनाम हतोत्साहन (Incentives v/s disincentives)

दो बच्चों के परिवार प्रतिमान को अपनाने के लिए दम्पतियों को कुछ प्रोत्साहन देने की जरूरत के अन्तर्गत पहचाने गए प्रोत्साहन हैं : नकद पुरस्कार/प्रोन्नति/वेतन वृद्धि और विशेष भत्ते, सेवानिवृत्ति की आयु में वृद्धि, दो बच्चों के लिए शिक्षा भत्ता, आवास ऋण के लिए वरीयता व्यवहार, यातायात के साधनों की खरीद, तथा दो बच्चों तक चिकित्सा व्यय की प्रतिपूर्ति (re-imburement) एवं मुफ्त चिकित्सा। दो बच्चों के परिवार प्रतिमान का उल्लंघन करने वाले को उक्त प्रोत्साहन न देना हतोत्साहन होगा। जनसंख्या नीति के सम्बन्ध में कुछ विचारकों द्वारा एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है—सहयोग बनाम दबाव, या प्रोत्साहन बनाम हतोत्साहन, या केरल प्रतिरूप (model) बनाम चीनी प्रतिरूप? कुछ विचारक सहयोग के समर्थक हैं तो कुछ अन्य दबाव के। एक भारतीय प्रोफेसर (अमर्त्य सेन, नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत, अब अमरीका के निवासी) ने अगस्त 1995 में दिल्ली में सम्पन्न हुए प्रतिष्ठित जे. आर.डी. टाटा मैमोरियल भाषण शृंखला में 'जनसंख्या स्थिरीकरण कार्यक्रम' विषय पर बोलते हुए 'सहयोग' के दृष्टिकोण का पक्ष लिया और कन्डोरसेट (फ्रांस के) तथा माल्थस (ब्रिटेन के) के दो प्रसिद्ध सिद्धान्तों में दबाव के प्रयोग की भर्त्सना की। उन्होंने कन्डोरसेट (condorset) के उस दृष्टिकोण को स्वीकारा जिसमें जनसंख्या की समस्या का 'विवेक की प्रगति' पर आधारित छोटे आकार के परिवार के प्रतिमान के उदय की बात कही गई है। कन्डोरसेट का विश्वास था कि स्त्री शिक्षा लोगों को स्वेच्छा से छोटे परिवार पर विचार करने में प्रेरित करेगी और उत्पादकता दर में भी कमी लाएगी। परन्तु माल्थस ने 'परिवार नियोजन के स्वेच्छा से स्वीकार' के विचार पर सन्देह जताया है। उसके विचार से कुछ सकारात्मक प्रतिबन्ध (positive checks) जैसे आर्थिक दारिद्र्य (penury) अथवा मृत्यु दर में वृद्धि को जनसंख्या वृद्धि दर में कमी करने के लिए बाध्य (coerce) करेंगे। सेन ने कन्डोरसेट के 'सहयोग' (cooperation) के रास्ते को ही निःसन्देह सही माना और माल्थस के 'दबाव' (coercion) के रास्ते को अवांछनीय और जनसंख्या रोकने में प्रतिकूल प्रभाव वाला बताया। उसने अपने दृष्टिकोण के समर्थन में केरल का उदाहरण दिया (यही विचार उसकी पुस्तक "इण्डिया-इकोनोमिक डवलपमेंट एण्ड सोशल अपोर्चुनिटी" में भी दिया गया है) और 'जनसंख्यात्मक परिवर्तन की केरल परिकल्पना' नामक परिकल्पना का विकास किया। इस परिकल्पना में उन्होंने साक्षरता में वृद्धि और अच्छी प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल जनसंख्या वृद्धि नियंत्रण के दो महत्त्वपूर्ण कारक बताए हैं। लेकिन अपनी परिकल्पना का समर्थन करते समय ऐसा मालूम पड़ता है कि सेन ने केरल के सम्बन्ध में कुछ आँकड़ों की उपेक्षा की है। 1941-1971 के बीच केरल में साक्षरता की दर में वृद्धि हुई थी, फिर भी जनसंख्या दर (population growth rate) (PGR) भी इस अवधि में बढ़ी (2.08% से 2.3% प्रतिवर्ष)। केवल 1971-81 और 1981-91 के दशकों में ही राज्य की पी.जी.आर. में कमी पंजीकृत की गयी। इसलिए केरल परिकल्पना को वैध कैसे माना जा सकता है? केरल परिकल्पना में एक कमी और है; वह यह है कि 1991 जनगणना रिपोर्ट के अनुसार केरल की कुल साक्षरता दर 89.81 प्रतिशत और स्त्री साक्षरता 86.13 प्रतिशत थी (Manpower Profile, India, op.cit : 42) फिर इस 'लगभग कुल साक्षरता' के बावजूद मुसलमानों की जनसंख्या (जो केरल की कुल जनसंख्या के एक चौथाई भाग है) वृद्धि दर 2.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष है जो कि 2.11 प्रतिशत के राष्ट्रीय पी.जी.आर. से भी कहीं अधिक है और स्वयं केरल के हिन्दुओं के पी.जी.आर. से दो गुनी है। इस प्रकार के तथ्यों की उपेक्षा परिकल्पना को अमान्य ही बनाती है।

केरल मॉडल के विपरीत जनसंख्या के लिए चीन का मॉडल है जो दबाव में विश्वास रखता है। हमारे देश की जनसंख्या की भयावह स्थिति को देखकर विचारकों ने इस दबाव के मॉडल को जनसंख्या समस्या का एकमात्र हल मानते हुए इसका समर्थन किया है। ये विचारक यह संकेत भी देते हैं कि स्वार्थ भरे राजनैतिक हित देश को नुकसान पहुंचाने के लिए विविध वोट बैंकों के जनसंख्या वृद्धि दर को प्रोत्साहित कर रहे हैं। कुछ विचारक भारत की जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए 'सहयोग' और 'दबाव' के तथा 'प्रोत्साहन' और 'हतोत्साहन' के समन्वय की बात करते हैं, लेकिन 'हतोत्साहन' की प्रकृति की पहचान अभी तक नहीं की गई है। क्या दो बच्चों से अधिक परिवार वाले लोगों को आरक्षण के लाभ से वंचित रखना हतोत्साहन होगा? क्या प्रवेश, प्रोन्नति, वोट देने के अधिकार या चुनाव लड़ने के अधिकार से वंचित करन 'हतोत्साहन' होगा? क्या इस प्रकार के निषेध मौलिक अधिकारों का हनन नहीं होगा? भारत में विद्यमान सामाजिक-राजनैतिक स्थिति में हतोत्साहनों के क्रियान्वयन के लिए रूपरेखा

सबसे अधिक बल इस बात पर दिया जाना चाहिए कि परिवार नियोजन कार्यक्रम में अत्यधिक जोर बन्धकरण पर देने के बजाय फासिल की विधि को प्रोत्साहित किया जाय ताकि इसके अन्तर्गत जनजातीय प्रभाव प्राप्त किया जा सके। हमारे देश में लगभग पाँच में से तीन (57.1%) विवाहित स्त्रियाँ कम उम्र की हैं (30 वर्ष से कम) और दो या अधिक बच्चों की माँ हैं। 'बलियाँ ही बच्चे पैदा करें' इस तथ्य को हमें योचना है। यह केवल 'फासिल की विधि' तथा लडकियों का 21 वर्ष की आयु के बाद ही विवाह को प्रोत्साहन देने से हो सकता है। इसके साथ ही परिवार नियोजन, जनसंख्या विस्फोट रोकने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका से स्त्रियों को सामान्य प्रस्थिति की सुधारने में भी सहजक होगा। वह स्त्री जिसके पास पालन-पोषण के लिए अनेक बच्चे हों और जो बार-बार प्रसव प्रक्रिया से गुजरती हो, वह अपना अधिक समय माँ और पत्नी के रूप में ही व्यतीत करती है और घर की चारदीवारी में ही बन्द रहती है। वह समुदाय और समाज में कोई भूमिका अदा नहीं कर सकती जब तक कि वह अपने परिवार के आकार को तर्कसंगत न बना ले। परिवार नियोजन न केवल परिवार कल्याण में सुधार करेगा बल्कि सामाजिक समृद्धि तथा व्यक्तिगत सुख में भी योगदान करेगा।

परिवार नियोजन की इस दलदल से बचाना है जिसमें यह फँसा है। इसके लिए कार्यक्रम को आन्तिक रूप परिवार नियोजन की इस दलदल से बचाना है। इसमें यह फँसा है। इसके लिए कार्यक्रम को आन्तिक रूप और भागीदारी अधिक से अधिक हो।

लेकिन दूरन आवश्यकता इस बात की है कि उत्तरदायी माता-पिता की भावना पैदा करने के लिए सामाजिक जागृति उपाय करने होंगे। थोड़ी बाधता के साथ प्रोत्साहन भी आवश्यक होगा। वैधानिक उपाय भी सहजक हो सकते हैं के लिए उत्तरदायी है। यदि नकारात्मक नहीं तो परिवार नियोजन अभियान को फिर से खड़ा करने के लिए अनेक का सबसे अच्छा उपाय विकास है, तब इसका उल्टा भी सही है : अधिक जनसंख्या वृद्धि धीमी गति के विकास से देखा जाना है और विकास इकाई के रूप में देखा जाना है। अगरचि यह भी मान लें कि जनसंख्या वृद्धि रोकने परिवार नियोजन की इस दलदल से बचाना है। इसमें यह फँसा है। इसके लिए कार्यक्रम को आन्तिक रूप को इसके साथ गम्भीर चिन्तन से देखा जाना चाहिए।

निष्कर्ष (Conclusion)

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में हमने यह विश्वास करने की गलती की कि हमारी जनसंख्या हमारी परिसम्पत्ति है, और अब हम यह सोचने की महान भूल कर रहे हैं कि भारत की तीव्र जनसंख्या वृद्धि विकास की प्रक्रिया, अर्थात् साक्षरता, स्वास्थ्य देखभाल, योग्यता आदि से रुक जायेगी। यदि सन् 1.5 करोड़ जन प्रतिवर्ष वृद्धि से बचना चाहता है कि तो केवल एक ही रास्ता बचा है कि आवश्यक परिवार नियोजन तथा हस्तोद्योग की कड़वी घूँट लोगों को पलाई जाय। इसके लिए एक उपयुक्त जनसंख्या नीति की आवश्यकता है। नयी आर्थिक नीति के सफल होने का कोई अवसर नहीं है जब तक कि इसके साथ मिलने वाली जनसंख्या नीति न हो। जनसंख्या नीति के सफल होने का कोई अवसर नहीं है जब तक कि इसके साथ मिलने वाली जनसंख्या नीति न हो। हस्तोद्योग की कड़वी घूँट लोगों को पलाई जाय। इसके लिए एक उपयुक्त जनसंख्या नीति की आवश्यकता है। नयी आर्थिक नीति के सफल होने का कोई अवसर नहीं है जब तक कि इसके साथ मिलने वाली जनसंख्या नीति न हो।

परिवार प्रतिमाओं की अग्रणी है।

पुनर्विचार परीक्षण में भारत में सामाजिक नीति का निर्माण उद्देश्य

नीति

डॉ. सी. पन्ना (Indian Journal of Public Administration, July-Sept., 1992, 333-340) ने परिवार में बच्चों की संख्या और शिक्षा के स्तर के बीच सम्बन्धों का विश्लेषण करने के लिए अगस्त 1985 से जून 1986 तक पंजाब के 486 ग्रामीण और शहरी परिवारों का अध्ययन किया। उसने देखा कि अशिक्षित स्त्रियों के मामले में ग्रामीण शहरी, और कुल प्रतिवर्ष बच्चों की औसत संख्या क्रमशः 3.61, 3.30 और 3.52 थी; कक्षा एक से 8 तक शिक्षित स्त्रियों के मामले में क्रमशः 2.27, 3.30 और 2.50 थी; कक्षा 9 से 11 तक शिक्षित स्त्रियों के मामले में क्रमशः 2.42, 2.48 और 2.45 थी; मेट्रिक से इन्टरमीडिएट तक शिक्षित स्त्रियों के लिए क्रमशः 1.87, 1.53 और 1.63; तथा स्नातक स्त्रियों के लिए यह औसत संख्या क्रमशः 1.57, 1.62 और 1.60 थी (वही : 338)। यह दर्शाता है कि उत्पादकता शिक्षा के स्तर से विपरीत दिशा में संबद्ध है और स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्त्रियाँ छोट

बोध के समूह शामिल किये गये थे।

की धारणा विद्यमान थी जिसके अन्तर्गत आर्थिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन के आधार पर उच्च व निम्न स्तरों के भी जो उत्तर-प्रदेश की कुल जनसंख्या का 65 प्रतिशत थी। अतः संविधान के लागू होने के पहले से ही पिछड़े वर्गों में उत्तर-प्रदेश सरकार ने अन्य पिछड़े वर्गों की शैक्षणिक वित्तीय प्रदान की। 56 जातियों की एक सूची बनायी गयी थी। इस सूची में विभिन्न जातियों के नाम थे, जिनकी जनसंख्या राज्य की कुल जनसंख्या की 60 प्रतिशत थी। 1948 के बाद के अध्यायन के लिये कुछ प्रावधान किये गये थे। 1951 में बिहार सरकार ने पिछड़े वर्गों की एक सूची घोषित आनुपातिक आरक्षण का उल्लेख किया था। इससे पहले 1947 में बिहार सरकार ने अन्य पिछड़े वर्गों के लिये शैक्षिक वित्तविविधालय शिक्षा आयोग (1948-49) में भी पिछड़े समुदाय के विद्यार्थियों के लिये स्थानों के इन कठिनाइयों को हटकर उनकी दशा में सुधार कर सकती। इस यथाथ में इस आयोग की नियुक्ति 1953 में हुई।" खड़ी हुई थी। आयोग को उन कदमों की सिफारिश भी करनी थी जिनके आधार पर केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार से पिछड़े वर्गों का पता लगाना था। आयोग को इन कठिनाइयों की जानकारी भी करनी थी जो पिछड़े वर्गों के सामने पूरे देश का भ्रमण करते हिन्दुओं और मुसलमानों और में वारंवारिक रूप में शैक्षणिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से कहते हैं कि "1948 में पिछड़े वर्गों के लिये एक आयोग बनाने पर विचार किया गया। इस आयोग का कार्य के.एल. शर्मा ने (भारतीय समाज, 1989) पिछड़े वर्गों की ऐतिहासिक दस्तान की विस्तारपूर्वक रखा है।

भी नहीं था।

अतः राष्ट्रीय स्तर पर 'पिछड़े वर्ग' शब्द का कोई स्पष्ट अन्तर नहीं था। पिछड़े वर्गों का कोई अखिल भारतीय संगठन स्थापना की गयी। मद्रास में पिछड़े वर्गों में 100 से अधिक समुदाय थे और वे कुल जनसंख्या के 50 प्रतिशत थे। शब्द का प्रयोग अखिल से ऊपर के स्तरों के लिये किया गया था। 1934 में मद्रास में प्रान्तीय पिछड़े वर्ग संघ की शैक्षणिक और आर्थिक दृष्टि से 'पिछड़े समुदाय' पर का प्रयोग किया था। परन्तु मद्रास राज्य (अब तैनाई) में इस प्रयोग सबसे पहले 1917-18 में हुआ था। 1930-31 में इसका विशेष प्रयोग हुआ था 1937 में जावनकर राज्य ने वर्गों का 'पिछड़े' और 'अधाड़ी' के अर्थ में देखा जाता है। देखा जाये तो ऐतिहासिक संदर्भ में पिछड़े वर्ग पर का से नीचे रह रहे हैं। पिछड़े वर्गों का यह भी अभिप्राय है कि इससे ऊपर एक 'अधाड़ी' वर्ग भी है। बिहार में तो इन वर्गों का 'शूद्र' वर्ग के थे उन्हें पिछड़ा वर्ग समझा जा सकता है। धर्म विधि की दृष्टि से भी पिछड़े वर्गों द्विज जातियों पिछड़े वर्गों शिक्षा, व्यवसाय और नौकरियों में उच्च जातियों की तुलना में पीछे रहे हैं। एक मत यह है कि आर्थिक और सामाजिक उत्थान के लिये विशेष सुरक्षा की सहायता की आवश्यकता है।

था। यह निश्चित है कि 'पिछड़े वर्ग' पूर्व-अखिल समूहों से उच्च और द्विज जातियों से निम्न है और इसलिये उन्हें विभिन्न तरह के संदर्भ हैं। पहले 'दलित वर्ग' शब्द का प्रयोग 'अखिल' और अन्य पिछड़े समूहों के लिये किया जाता के प्रचलन शुरू में 'पिछड़ा वर्ग' शब्द अतिरिक्त था; एक सुनिश्चित संदर्भ में प्रयोग नहीं होता था। आज इसके के संदर्भ में उपयोग में लिया गया है। यह शब्द भी "अन्य पिछड़े वर्गों" के लिये उपयोग किया गया है। स्वतन्त्रता पिछड़ा वर्ग शब्द समाज के कमजोर वर्गों विशेषकर अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों

अन्य पिछड़े वर्गों की परिभाषा (Definition of other Backward Classes)

की थी। मण्डल आयोग इन कड़ी में दूसरा था। हम इन दोनों आयोगों की सिफारिशों का उल्लेख करेंगे। पहले काला कालेकर की अध्यक्षता में राष्ट्रपति ने 29 जनवरी, 1953 में एक पिछड़ा वर्ग आयोग की नियुक्ति सूचीबद्ध बनायी गयी है। अन्य पिछड़े वर्गों की सिफारिश के लिये मण्डल आयोग की स्थापना हुई थी। लेकिन इससे के लिये आज कोई अखिल भारतीय सूची नहीं है। यह अवश्य है कि शिक्षा मंत्रालय और राज्य सरकारों द्वारा ऐसी कोई विशेष उल्लेख नहीं किया है। केवल सामान्य अर्थों में ही ऐसे वर्गों का बावत उदाहरण है। अन्य पिछड़े वर्गों लिये अनुसूचित जातियों और जनजातियों जैसे समान प्रावधानों जैसी माँग उठी थी। संविधान ने अन्य पिछड़े वर्गों का किया था तब संविधान के गठन के समय से ही शैक्षणिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई अन्य जातियों के भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए जब विशिष्ट आरक्षण का प्रावधान

3.15 पिछड़े वर्गों का कल्याण (Welfare of Backward Classes)

नीचे

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

आयोग के दृष्टिकोण में अधिकांश पिछड़े वर्ग अनभिन्न, निरक्षर और निर्धन थे। सरकार ने इन सिफारिशों को कोई महत्त्व नहीं दिया और इस कारण वे लागू नहीं की गयीं। इसके बाद से राज्य सरकारों को अन्य पिछड़े वर्गों की सूची बनाने के लिये अपने स्वयं के आधार पर कसौटियाँ निश्चल करने की अनुमति दे दी गयी। कर्नाटक जैसे कुछ राज्यों ने अन्य पिछड़े वर्गों के लिये कुछ प्रावधान अवश्य बनाये। विशेष आयोग नियुक्त किया गया तथा इन वर्गों की पहचानने के लिये विशेष सूचियाँ तैयार की गयीं। सरकार द्वारा आरक्षण या विशेष सुविधाएँ देने के लिये समुचित कानून बनाये। शिक्षण के कतिपय अन्य राज्यों ने भी ऐसे ही कदम उठाये। इधर दूसरी ओर वे राज्य जहाँ ऐसे प्रावधान नहीं थे, या आर्ध-अर्ध थे वहाँ पिछड़ी जातियों के लिये आरक्षण की माँग आंदोलन के रूप में कही जाने लगी। जब यह माँग समस्या का रूप लेने लगी तो केन्द्रीय सरकार ने इस कार्य के लिये मजदूर आयोग की

(4) व्यापार और उद्योग क्षेत्र में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व।

(3) सरकारी सेवा में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व, और

(2) शैक्षणिक प्रगति का अभाव,

(1) जाति सेवान में सामाजिक स्थिति,

आधारों पर पिछड़े वर्गों को निश्चल किया जाये-

की। उन्होंने इन वर्गों के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिये कुछ सुझाव भी दिये। उन्होंने कहा कि निम्न शी। कालेकर ने अपने कार्य की पूर्ण करने में दो वर्ष लगाये और 2,399 जातियाँ और समुदायों की सूची तैयार की प्रस्तुति, साक्षरता प्रतिशत तथा नौकरियों और उद्योग में इनके प्रतिनिधित्व के आधार पर तैयार की गयीं की अस्मिता के लिये सामाजिक, शैक्षणिक आधार तय किया जा सके। यह सूची सामाजिक पद क्रम में जातियों 1953 में कालेकर आयोग की अध्यक्षता में एक पिछड़े वर्ग आयोग गठित किया गया जाँक पिछड़े वर्गों

कालेकर आयोग (Kalekar Commission)

इसलिये पिछड़े वर्गों को आँकने का कोई अखिल भारतीय मापदण्ड नहीं है।

समस्याओं की जानकारी ले सकती है। चूँकि पिछड़े वर्गों की कसौटियाँ विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न हैं 16 के अन्तर्गत राज्य सरकारें भी आयोगों की नियुक्ति करके पिछड़ी जातियों की आर्थिक और शैक्षणिक कर देश के विभिन्न भागों में पिछड़े वर्गों की दशा की जानकारी करवा के रिपोर्ट ले। धारा 15(4) और पिछड़े वर्गों से है। धारा 340 के अन्तर्गत भारत के राष्ट्रपति को अधिकार है कि एक आयोग की नियुक्ति है... भारत के संविधान के अनुसार पिछड़े वर्गों का आधार नागरिकों के सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के बारे में हमारा अभिप्राय वास्तव में हरिजनों और उच्च जातियों के बीच मध्यम जातियों से के.एल. शर्मा ने पिछड़े वर्गों की परिभाषा इन शब्दों में की है-

और जटिल पुत्र है।

इस वाक्य के अन्तर्गत अवश्य प्राप्त होती है। इस हिसाब से पिछड़े वर्ग, समूहों और व्यक्तियों को एक वृहत् यह है कि सरकार ने कुछ जातियों को 'पिछड़ी जातियाँ' घोषित किया है। उन जातियों को कुछ लाभ और सुविधाएँ शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों में शिक्षा और आर्थिक दृष्टि से समान व्यक्ति भी शामिल हो सकते हैं। इसका कारण समूहों के पिछड़े वर्ग से होता है। यह इसलिए कि पिछड़े वर्गों की संख्या के आधार पर निर्धारित होता है। जब हम अन्य पिछड़े वर्गों की चर्चा करते हैं तब हमारा तात्पर्य व्यक्तियों से नहीं होता। हमारा सीधा मतलब गिणतनाई और महाराष्ट्र की सूचियों में उच्च गैर-ब्राह्मण जातियों को शामिल नहीं किया गया था।

कर्नाटक की सूची में ब्राह्मणों को छोड़कर मुसलमान, ईसाई, जैन और सभी गैर-हिन्दू समूह शामिल थे। परन्तु स्थापना सन् 1950 में हुई। एक राष्ट्रीय महासंघ भी बनाया गया। राज्य सरकारों ने पिछड़े वर्गों की सूचियाँ तैयार कीं और 14 संसदन सामान्य या क्षेत्रीय आधार पर कार्य करते थे। अखिल भारतीय पिछड़े वर्ग महासंघ की स्थापना हुई। 1954 में 15 राज्यों में पिछड़े वर्गों के लिये 88 संसदन थे। इनमें से 74 के नाम जाति विशेष पर थे 1940 के दशक के अंतिम भाग में पिछड़े वर्गों संसदन उभरे। 1947 में बिहार राज्य पिछड़े वर्ग महासंघ की

नीति

शैक्षणिक परिशेष में भारत में सामाजिक नीति का नीतियाँ उद्देश्य

- (7) इन सिफारिशों की क्रियान्विति के लिये सरकार को आवश्यक कानूनी प्रावधान करने चाहिए।
- (6) आरक्षण का सिद्धान्त सांख्यिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों, बैंकों, केन्द्रीय और राज्य सरकारों से सहजता प्राप्त करने वाले निजी प्रतिष्ठानों, विरवविद्यालयों और महाविद्यालयों में लागू किया जाना चाहिए।
- (5) अनुसूचित जातियों और जनजातियों की ही तरह पिछड़े वर्गों की भी एक सूची तैयार की जानी चाहिए।
- (4) अनुसूचित जातियों और जनजातियों की तरह ही पिछड़े वर्गों को भी आयु में छूट दी जानी चाहिए। और इसके पश्चात् ही आरक्षण से हटाना चाहिए।
- (3) आरक्षित कौटा यदि नहीं भरा जाता है तो तीन वर्ष की अवधि के लिये इसे आगे बढ़ा देना चाहिए।
- (2) 27 प्रतिशत का सिद्धान्त सभी स्तरों पर पदान्तरित के लिये लागू किया जाय।

(1) जो लोग योग्यता के आधार पर नौकरी नहीं ले पाते हैं, उनके लिये 27 प्रतिशत नौकरियों का आरक्षण में 52 प्रतिशत आरक्षण किया जाना चाहिए। आयु में निम्न उपायों का सुझाव दिया— 52 प्रतिशत है। आयु में यह सिफारिश की कि इस 52 प्रतिशत जनता के लिये नौकरियों और शैक्षणिक सुविधाओं सहित अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर पिछड़े वर्गों भारत की कुल जनसंख्या का सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा वर्ग भी कहते हैं। मण्डल आयोग की रिपोर्ट के अनुसार गैर-हिन्दू जातियों पिछड़ान वृत्त करना आवश्यक है। इसी कारण कई बार इन पिछड़े वर्गों को एस.ई.बी.सी. (S.E.B.C.) अर्थात् सार यह था कि कुछ वर्ग आर्थिक दृष्टि से भले ही समान हों पर शैक्षणिक और सामाजिक दृष्टि से उनका जना पार्टी ने जब उपरोक्त शर्तों और दशाओं के आधार पर मण्डल कमीशन को कार्य दिया तब उसका सिफारिशों देना।

- (4) उनके द्वारा प्राप्त तथ्यों के आधार पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना और जैसा वे उचित समझें उसके अनुसार पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व अपर्याप्त है; और
- (3) केन्द्रीय और राज्य सरकार और केन्द्र शासित क्षेत्रों में उन सेवाओं में आरक्षण की जाँच करना जिनमें कर्मियों की सिफारिश करना।
- (2) इन सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के विकास के लिये उठाये जा सकने वाले करना।

(1) सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों को परिभाषित करने के लिये कमीटियाँ निर्धारित पूरा करने के लिये निरवत सिफारिशें प्रस्तुत करें। उन्हें निम्न मूद्दे दिये गये—
 आयोग का गठन किया। बी.पी. मण्डल लोकसभा के सदस्य थे। उन्हें कहा गया कि वे पार्टी के चुनाव बाढ़ों को वर्गों के लिये आरक्षण में वृद्धि करेंगी। इन्हीं बाढ़ों के अन्तर्गत पार्टी ने बी.पी. मण्डल की अध्यक्षता में पिछड़ा वर्गों का वह जातिगत गैर-बराबरी को यथाशीघ्र समाप्त कर देगी। इस पार्टी ने यह भी घोषणा की थी कि वह पिछड़े मण्डल आयोग का एक राजनैतिक इतिहास है। जनता पार्टी ने 1977 के चुनाव घोषणा पत्र में यह वादा किया **मण्डल आयोग (Mandal Commission)**

व्यापक हिंसा फैलाई।
 मध्य-प्रदेश सरकार ने किया। इन आयोगों की सिफारिशों की स्वीकृति के कारण इन राज्यों में उल्लव जातियों ने गुजरात राज्य ने पिछड़ी जातियों की पहचान के लिये बहुरूपी एवं राते आयोग बनाये। महानजान आयोग का गठन विवादा के घरे में जब मण्डल आयोग आ गया तब सरकार ने इसकी सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया।
 मूद्दा बन गया।

निपटित की। जैसे ही मण्डल आयोग की रिपोर्ट प्रकाशित हुई वैसे ही आरक्षण का प्रश्न उदीजत बाद-विवाद का

नीट

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

अनुसूचित पर का प्रयोग वस्तुतः उपनिवेशवादी प्रयोग है। सन् 1874 में अंग्रेजों ने अनुसूचित क्षेत्र अधिनियम पारित किया और इसके बाद इन क्षेत्रों में विशिष्ट तथा पृथक् क्षेत्र की व्यवस्था स्वीकार कर ली गयी। इसी समय जनजाति सम्बन्धी सामाजिक श्रेणी की अवधारणा का उदय हुआ जिसका प्रमुख उद्देश्य इन समूहों को हिन्दू, मुस्लिम

जनजातियों अर्थात् क्षेत्र में कड़े तरह से अपने अन्य लोगों के साथ अलग-थलग करती थी।" भाग में अहोम बहुत बड़े राज्य रहे हैं। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि प्राचीन एवं मध्यकाल में भारत की में बोडो, अहोम आदि जनजातियों का विवरण मिलता है। कुछ जनजातियाँ जैसे मध्य भारत में गौड़ तथा उत्तर-पूर्वी में कुर्ख, इरला तथा पनिया; मध्य-प्रदेश में असुर, साबा, औराँव, गौड़, संथाल एवं भील तथा उत्तर-पूर्वी भाग इतिहास को जानने के लिये कोई विशेष प्रयास नहीं हुए हैं तथापि भारत के प्राचीन प्रमाणिक साहित्य में दक्षिण भारत काल में ये समूह अपने विशिष्ट मार्गों द्वारा ही जाने जाते थे, जैसे गौड़, संथाल, भील आदि। यद्यपि जनजातियों के ऐतिहासिक परिदृश्य में देवें तो "भारत की किसी भी भाषा में जनजाति जैसा कोई शब्द नहीं था। प्राचीन

गिरजन भी इनका ही नाम है और इससे अधिक सामान्य आदमी उन्हें आदिवासी के नाम से जानता है। के बाहर अर्थात् गैरसरकारी क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों को कड़े नामों से पुकारा जाता है। उन्हें जनवासी कहते हैं, जाना जाता है। जब हम अनुसूचित जनजातियों के पर को काम में लेते हैं तो इसका यह प्रयोग संवैधानिक है। संविधान की सूची में सम्मिलित है। ये समूह आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं और इतिहास में हमेशा उन्हें शोषण का पात्र समझा जाता है। हमारे यहाँ तो जनजाति शब्द का अर्थ जनसमुदाय की उस श्रेणी से लिया जाता है जो अनुसूचित जनजातियों और अश्लीक में इस शब्द के स्थान पर इंडिजिनस (Indigenous) अर्थात् देशज या देशी लोगों के लिये किया के विभिन्न भागों के लिये किया जाता था। बाद में चलकर इसका अर्थ गरीब वर्गों के लिये किया गया। आज यूरोप अश्ली भाषा का शब्द 'ट्राइब' मूल में लैटिन भाषा के 'ट्राइब' से बना है। रोम में इस शब्द का प्रयोग समाज करीब से कुछ ऊपर है।

की पहचान की है। ये जनजातीय समूह देश की सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग 8 प्रतिशत हैं। इनकी कुल संख्या 5 उद्विकास की दृष्टिकोण से है। के.एस. सिंह ने पीपल ऑफ इण्डिया प्रोजेक्ट में भारत में 461 जनजातीय समूहों भारतीय समाज के अंग हैं। जनजातीय समाज की अपनी एक पृथक् पहचान है और इसकी एक ऐतिहासिक समाज का जातीय समाज से कोई सादृश्यता (Organic) सम्बन्ध नहीं है। ये दोनों समाज पृथक् हैं और विद्यालय जनजातियाँ भी हैं। जहाँ अनुसूचित जातियाँ, जातियों की सौंपनिक व्यवस्था की एक पृथक् अंग हैं, वहाँ जनजाति कमजोर वर्गों में जहाँ एक और अनुसूचित जातियाँ और अन्य पिछड़े वर्ग हैं वहाँ दूसरी ओर अनुसूचित

3.16 अनुसूचित जातियाँ (Scheduled Tribes)

- यह गणनीयता से सींचा जाने लगा कि इन सिफारिशों के संदर्भ में गैर-पिछड़े वर्गों का परिवर्ण क्या होगा। स्वीकार कर लिया। अब इस कैसले के परिणामस्वरूप देश में एक बहस चल गयी। कड़े जाह आंदोलन हुए और वास्तव में देखा जाये तो मजदूर आयोग ने जो सिफारिश की थी लगभग सभी को सर्वोच्च न्यायालय ने (5) जब पदेनानि हो तब आरक्षण न दिया जाये। (4) कुछ तकनीकी नौकरियों में आरक्षण देना उचित नहीं होगा। (3) पिछड़े वर्गों में वे लोग जो सम्पन्न हैं, उन्हें आरक्षण न दिया जाये। (2) किसी भी राज्य में आरक्षण का लगभग 50 प्रतिशत से अधिक की जनसंख्या को न दिया जाये। (1) आरक्षण का लगभग देने के लिये जाति का आधार नहीं है।

न्यायालय के कैसले के निम्न बिंदु महत्वपूर्ण हैं—
 था। सरकार के इस निर्णय को कि पिछड़े वर्गों को 27 प्रतिशत आरक्षण दिया जाये, न्यायालय ने स्वीकार किया। न्यायालय में इस मसले को दे दिया गया। 5 नवम्बर, 1992 में सर्वोच्च न्यायालय ने जो फैसला दिया वह ऐतिहासिक मजदूर आयोग की सिफारिशों को जब लागू करने की बात चली तब इसका विरोध करने के लिये सर्वोच्च

ऐतिहासिक परिदृश्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

देखा जाये तो हमारे देश में 'आदिवासी' या जनजाति पर की कोई पृथक अवधारणा विकसित नहीं हुई है और इसी कारण संविधान के अनुच्छेद 342 ने जनजातियों को परिभाषित किया है। अब प्रश्न उठता है—संविधान ने जनजातियों को परिभाषित करने के लिये कौन सी कसौटियाँ या आधारों को अपनाया है? 1952 में प्रकाशित अन्तर्भावित जाति एवं अन्तर्भावित जनजाति अधिनियम ने कुछ कसौटियों को प्रस्तुत किया है। इन कसौटियों में निम्न आधार सम्मिलित किये गये हैं—(1) पृथक्करण (Isolation), (2) प्रजातीय लक्षण (Racial Characteristics), (3) भाषा और बोली (Language and Dialect), (4) खाने की आदतें : मांसाहारी भोजन (Non-vegetarianism), (5) पोशाक : नग्न एवं अर्द्धनग्न (Naked and Semi-Naked), (6) युग्मक (Nomadism), एवं (7) सभ्यता तथा नृत्य (Drink and Dance)।

संविधान द्वारा दी गयी परिभाषा (Definition given by constitution)

संविधान ने विकास और प्रशासनिक मसलों को ध्यान में रखकर जनजाति को परिभाषित किया है। और प्रामाणिक है। मानवशास्त्री जनजातियों की परिभाषा के बारे में सर्वसम्मत नहीं हैं। इस कठिनाई को देखते हुए लीज आदिम जनजाति के रूप में परिभाषित किये जाते हैं। दूसरी ओर, इसी राज्य में मीणा जनजाति है जो समृद्ध जो नकर फसल लेती है और सामाजिक आर्थिक दृष्टि से प्रामाणिक है। उदाहरण के लिये राजस्थान के सहैरिया फलहूँ है। इन्हें आदिम (Primitive) आदिवासी ही कहना चाहिए। लेकिन इसी राज्य में ऐसे आदिवासी भी हैं वे विकास की विभिन्न अवस्थाओं में हैं। एक ही राज्य में ऐसे आदिवासी समूह हैं जो विकास की दृष्टि से एकदम परिभाषा के बारे में एकमत नहीं हैं और इसके कारण भी स्पष्ट है। आदिवासी समूहों देश में बिखरे पड़े हैं और कार्यकर्ता और प्रशासनिक व्यवस्था के लिये करना बहुत कठिन है। इसी और विदेशी मानवशास्त्री जनजातियों की दी है और इस विषय पर हमारे यहाँ सामाजिक मानवशास्त्र में अत्यधिक सामग्री है। लेकिन इसका उपयोग विकास परिभाषित करने से पहले इस सम्पूर्ण समस्या पर गहराई से विचार किया। मानवशास्त्रियों ने जनजातियों की परिभाषा जनजातियों की परिभाषा के सम्बन्ध में दो स्पष्ट विचारधाराएँ हैं। संविधान निर्मातों ने इन जनजातियों को

अन्तर्भावित जनजाति का अर्थ (Meaning of Scheduled Tribes)

स्वतन्त्रता के बाद जब संविधान में जनजातियों को आरक्षण देने की बात चली तब इन समूहों की एक सूची तैयार की गयी। आज तो इनकी संख्या 461 समूह है पर उस समय 1950 में इन समूहों की संख्या 212 थी। 1971 में इस सूची में 527 समूह हो गये थे। संविधान में कहीं भी जनजाति की कोई परिभाषा नहीं दी गयी है और न इसका खूलासा भी है कि जनजातियों की पहचान के लिये कौन-सी कसौटियाँ हैं। इसका हल प्रशासनिक रूप से निकाला गया है। कहा गया है कि जनजाति वह है जिसका नाम जनजातियों की अन्तर्गुप्ती में सम्मिलित है।

पहचाना जाये।

खाने-पाने के सम्बन्ध में एक बात तो बहुत स्पष्ट थी और वह यह कि जंगलों और पहाड़ों में रहने वाली जाटिया सरकार के सामने एक बात तो बहुत स्पष्ट थी और वह यह कि जंगलों और पहाड़ों में रहने वाली जाटिया सरकार लम्बे समय तक यह निश्चित नहीं कर पायी कि इस जन समुदाय को किस नाम और श्रेणी में रखना है; किसी जनगणना में इन्हें आदि जातियाँ तथा जनजातियों के नाम से आंकते किया गया है। इससे स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था के नाम पर निर्णय नहीं किया गया है; कहीं इनकी गणना पहाड़ों और जंगलों में रहने वाले समूहों की तरह की गयी कि अर्थव्यवस्था ने जनजातीय जनसंख्या के लिये विभिन्न नामों का प्रयोग किया है। किसी जनगणना में इन्हें जीववादी जनजातियाँ हिन्दू जातियों से भिन्न थीं। अगर हम 1921 से लगातार 1941 की जनगणनाओं को देखें तो बातें होगा जाटिया सरकार के सामने एक बात तो बहुत स्पष्ट थी और वह यह कि जंगलों और पहाड़ों में रहने वाली

आरक्षण के नियम बनाये गये थे।

समूह। सन् 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत जनजातियों की स्थानीय जनसंख्या के अनुसूचित पूर्णरूप से पृथक तथा आर्थिक रूप से पृथक क्षेत्र बने। इन सभी क्षेत्रों को सामान्य नियमों की परिधि से अलग माना गया। बाद में सन् 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत जनजातियों की स्थानीय जनसंख्या के अनुसूचित पूर्णरूप से पृथक तथा आर्थिक रूप से अलग रखा था। जाटिया राज ने अन्तर्भावित जनजातियों को हिन्दू जातियों से पृथक करने का यह कार्य धार्मिक कारणों से किया। यह देखा गया कि अन्तर्भावित जनजातियों का धर्म आनुवांशिक है। इस आधार पर भारतीय समाज में और पर दो भागों में बँट गया—अन्तर्भावित जनजातियाँ और हिन्दू, मुस्लिम और अन्य धार्मिक

3.18 जनजातीय समाज की समस्याएँ (Problems of Tribal Society)

जनजाति समाज में कई विकास कार्यक्रम राज्य और केन्द्र सरकार द्वारा चलाये जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य इस समाज की समस्याओं का हल निकालना है। इसका मतलब यह हुआ कि हमें सैद्धांतिक और अवधारणात्मक स्तर पर यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि आदिवासियों की जो भी समस्याएँ हैं, वे ऐसी हैं जिनका पूरा सरोकार उनके सामाजिक संरचना, उनके पर्यावरण और इतिहास से है। अगर हम जनजातीय समस्याओं को देश के पाँच लाख गाँवों में रहने वाले ग्रामीणों से जोड़ देते हैं तो इसका परिणाम यह होगा कि विकास के बहुत से कार्य ग्रामीणों के खाते में चले जायेंगे। यह तो वही भूल होगी जिसे जी.एस. युरिये ने बार-बार अपने लेखन में प्रस्तुत किया है। वे अकेले समाजशास्त्री थे जो कहते थे कि जनजातियों की समस्याएँ मूल में पिछड़ी हुई हिन्दू जातियों की समस्याएँ हैं। जब राष्ट्रीय नीति ने यह स्वीकार किया है कि जनजातियों की समस्याएँ उनकी अपनी समस्याएँ हैं, उनकी संरचना से उपजी हुई समस्याएँ हैं तब उन्हें इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिये। हमारी यह पक्की धारणा है कि जनजातियों की समस्याओं की पहचान पृथक् है और इन्हें इसी अर्थ में समझा जाना चाहिये। यहाँ हम जनजातियों की कुछ सार-समस्याओं का उल्लेख करेंगे।

1. पृथक्करण (Isolation)

हमने इस पुस्तक में इस कथन को कई बार दोहराया है कि अनसूचित जातियों की यदि कोई बहुत बड़ी समस्या है तो यह उनकी अस्पृश्यता है। कुछ इसी लहजे में हम यह कहना चाहेंगे कि जनजातियों की यदि कोई कुंजी समस्या है, तो यह उनका पृथक्करण है। यह समाज सदियों से पहाड़ों और जंगलों में रहता आया है। जब से उन्हें आर्यों ने इस आन्तरिक क्षेत्र में धकेल दिया है, तब से ये देश और समाज की मुख्यधारा से अलग-थलग हो गये हैं। इसी कारण ये खेती के क्षेत्र में बहुत देर से आये हैं। इतिहास के संदर्भ में कहें तो जनजाति के सदस्य नये किसान हैं। शिक्षा भी उन्होंने बहुत देर से पायी और देखते-देखते वे पिछड़ापन के शिकार हो गये। उनकी पिछड़ी अवस्था इसी पृथक्करण के कारण है।

यह सचिकर बात है कि आज जनजातियों ने एक अंश तक आधुनिकता को अपना लिया है फिर भी ये आज छिन्दे हुए गाँवों में ही रहना पसंद करते हैं। बेरियर एल्विन कामेटी ने यह कहा था कि 80 प्रतिशत से अधिक जनजातियाँ छिन्दी बसावट (Scattered Habitation) में रहती हैं। कई बार एक जनजातीय गाँव का क्षेत्रफल ही कई किलोमीटर हो जाता है। उत्तर-पूर्व के गाँव तो इतने छिन्दे हुए हैं कि प्रत्येक गाँव की अपनी एक जातीय बोली होती है। तो सचिकर बात यह है कि जनजातियाँ पहले तो पहाड़ों और जंगलों में रहती हैं और दूसरे अपने ही गाँव में इनके बीच में लम्बी दूरियाँ बनी रहती हैं। इन समूहों को सामान्य भारतीय गाँवों की तरह एक सघन (Compact) गाँव में बसाने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करने से सामूहिक विकास कार्यक्रमों (Community Development Programmes) को लागू करना सरल हो जायेगा। जब विनोबा भावे ने भू-दान आंदोलन चलाया तब जनजातियों को परती भूमि (Fallow Land) पर सघन गाँवों में बसाया गया। पर धीरे-धीरे ये सघन गाँव उजड़ गये।

पृथकता को तोड़ना एक पृथनिक आंदोलन है और जनजातियों की नई पीढ़ी को यह विश्वास देना होगा कि उनका हित सघन गाँवों में रहने में ही है।

2. भूमि (Land)

जब जनजातियों ने कृषि को अपनाया था तब उनके पास कृषि भूमि की कमी नहीं थी। ये झूम यानी स्थानान्तरण कृषि (Shifting Cultivation) करते थे। लेकिन परिस्थितियाँ बदलीं और स्थिति यह हुई कि हिन्दू जातियाँ जनजाति भीतरी प्रदेश (Tribal Hinterland) में प्रवेश कर गयीं। आज यद्यपि सभी राज्यों ने जनजाति कृषि भूमि को संरक्षण दिया है और कोई भी गैर-जनजाति सदस्य इससे भूमि नहीं खरीद सकता, फिर भी परिवार में भी बराबर बँटती हुई भूमि आज इन समूहों को आर्थिक पोषण नहीं दे सकती। और यह नहीं भूलना चाहिये कि पहाड़ी क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा जुटाना बहुत कठिन है। जॉन ब्रीमेन (Joan Breeman) ने दक्षिण गुजरात के

धर्म है और यह धर्म ही आज उनके लिये जगल बन गया है।
 रहा है कि वे हिन्दू हैं, ईसाई हैं। हम समझते हैं कि जनजातियों की बहुत बड़ी ऐथनिक या सांस्कृतिक पहचान उनका राष्ट्र में जनजातियों के धर्म के बारे में एक लम्बी साजिश बराबर चल रही है। यह आँकड़ों में बराबर बताया जा गाएक सरकारी रिकार्ड में यह बराबर लिखते हैं कि जनजातियाँ हिन्दू हैं। सचवाइ यह है कि हमारे इस धर्मांतरणक्ष जनजातियाँ हिन्दू हैं और उन्हें ईसाई होने से रोका जाना चाहिए। जब कभी इस वर्ष में जनगणना होती है तब कठिबारी निरन्तरता बनाये हुए है। यह सब होते हुए भी फण्डामेंटलिस्ट (Fundamentalist) यह बराबर कह रहे हैं कि के.एस. सिंह के अनुसार, जनजातियों का मौलिक धर्म और यह सारे देश के आदिवासियों की बात है, में है। उनका त्यौहारों और समारोहों का कैलेंडर भी बिना परिवर्तन के वैसा ही बना हुआ है।

ज्यों के त्यों बने हुए हैं। कुछ इसी तरह उनमें परिवर्तन करने वाले विधायक भी बहुत थोड़ी गणना ईसाई और हिन्दू धर्म के साथ सम्बन्ध हैं। आज भी जनजातियों की गणना व्यवस्था, और ग्रामीण देवी-देवता की निरन्तरता बराबर बनी हुई है। और यह निरन्तरता इस बात के होते हुए भी है कि इन जनजातियों के हमारे इस प्रोजेक्ट की एक बहुत बड़ी प्रॉब्लम यह है कि आज भी जनजातियों की स्वयंसेवक व्यवस्था

रखावेज से देते हैं। पीपल ऑफ इण्डिया के प्रोजेक्ट में देश के जनजातियों के धर्म के बारे में के.एस. सिंह लिखते रहा है। मूल रूप में ये जनजातियाँ आनिवाद (Animism) में विश्वास रखती हैं। इसका प्रमाण हम एक सरकारी काम करना होगा। और यह सिर्फ इसलिए कि उसका प्रति गरीब है। ऐसा ही कुछ जनजातियों के धर्म के साथ ही हिन्दी भाषा में एक महत्वपूर्ण है—गरीब की जाँच, सबकी भाषा। मतलब हुआ गरीब की पत्नी को सबके लिये

5. धर्म (Religion)

फिसल गये हैं। आज समस्या उन्हें वैकल्पिक आय के स्रोत देने की है।
 जनजातियों की शिक्षा को इसी मूल समस्या के साथ जोड़ना चाहिए। जीवनयापन के परम्परागत स्रोत उनके हाथ से बहुत बड़ी समस्या जीवन-यापन के लिये अधिक स्रोत पैदा करने की है। समस्या का मूल यह है और हमें आ जाती है। ऐसी अवस्था में शिक्षा का प्रसार, जनजातियों में एक निश्चित उद्देश्य के लिये होना चाहिए। उनकी पढ़-लिख जाना है, बालक ही जाना है, लमट हो जाना है और सभी तरह के बाटोले पैदा करने की क्षमता उसमें शिक्षा हमारी सभी समस्याओं की कुंजी नहीं रही। एक सामान्य आदमी का अनुभव तो यह है कि आदमी जैसे ही समस्याएँ हल हो जायेंगी। हमारे देश में पिछले पचास वर्षों का जो अनुभव हमें प्राप्त है उससे ज्ञान होता है कि अब एक समय यह कहा जाना था कि यदि देश के लोगों में शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हो जाये तो देश की सभी

4. शिक्षा (Education)

हैं लेकिन ये सुविधाएँ इनकी पहुँच के बाहर हैं।
 बसवट रूग्ण क्षेत्रों में है और वहाँ कोई भी चिकित्सक रहना नहीं चाहता। सरकार ने स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान की स्थिति भी जनजातियाँ जैसे ही है। लेकिन जनजाति स्वास्थ्य भीतरी प्रदेश में होने के कारण अधिक गम्भीर है। इनकी आर्थिक स्थिति खस्ता है। ये गरीबी की रेखा से बहुत नीचे हैं। देखा जाये तो आम ग्रामीण लोगों की स्वास्थ्य की प्रतिशत सामान्य प्रतिशत से बहुत अधिक है। कुपोषण बहुत ज्यादा है और यह सब इसलिए है कि इन समूहों की जनजाति समाज में जन्म दर भी अधिक है; मृत्यु दर भी अधिक है। अधिक जन्म दर के साथ बाल मृत्यु दर का

3. स्वास्थ्य (Health)

का नये सिरे से एक गार्किक विवरण हो।
 किसी भी दृष्टि से देखें तो आज जनजाति किसान के सामने बड़ी समस्या पैदा की है। आवश्यक्ता यह है कि ग्रामीण लोगों में जंगल की उपज नहीं रही और जब वे कृषि के क्षेत्र में आये तो यहाँ हिन्दू जातियों का कब्जा था। हम विद्वाना बहुआयामी है। उनके हाथ से जंगल चले गये; उनकी गिरफ्त में जंगल का शिकार निकल गया, उनके पिकासानिजेशन) कहते हैं। अधिक से अधिक किसान कृषि को रोजगार का आधार नहीं मानते। जनजातियों की (Un-economic) हो गयी है। हलपतियों में तो एक नई प्रक्रिया चल रही है जिससे वे अ-किसानीकरण (De-peasantization) के लिये आज ग्रामीण अ-आर्थिक किसानों के बारे में एक पुख्ता बात कही है। वे कहते हैं कि आदिवासियों के लिये आज ग्रामीण अ-आर्थिक

एथनिक परिवर्तन में ग्राम में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

संविधान ने कमजोर वर्गों के लिये कुछ सुरक्षाएँ प्रदान की हैं। इन्हीं सुरक्षाओं में अनुच्छेद 46 में कहा गया है कि राज्य कमजोर वर्गों के लोगों, विशेषकर अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों को खास तौर से बढ़ावा देना एवं हर प्रकार के सामाजिक अत्याच एवं शोषण के विरुद्ध इन्हें संरक्षण प्रदान करेगा। संविधान ने यह भी कहा है कि बिहार, मध्य प्रदेश और उड़ीसा में जनजातीय कल्याण कार्यों के लिये विशेष मंत्रालय स्थापित करेगा। यह भी संवैधानिक प्रावधान है कि केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को जनजातियों के लिये विशेष धनराशि भी प्रदान करेगी। लोकसभा एवं विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की सीटें सुरक्षित की गयी हैं। यह भी संविधान की सुरक्षा है कि सरकारी नौकरियों में नियुक्तियाँ करते समय इन कमजोर वर्गों पर पूरा ध्यान दिया जायेगा।

3.19 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जनजातीय विकास के प्रयास (Tribal Development Efforts after Independence)

जनजातियों की समस्या को पहचानने में बहुत बड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता है। यदि जातिका बनाव, तो आकार में यह बहुत बड़ी होगी। महत्वपूर्ण बात यह है कि जनजातियों को शोषण से मुक्ति देना बहुत बड़ा काम है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने जनजाति कल्याण के लिये एक पृथक नीति ही अपनायी है। इसे जनजातीय नीति (Tribal Policy) कहते हैं। राज्य के अतिरिक्त गैर-सरकारी संस्थाओं (NGO) ने भी अपना एक पृथक नीति निर्धारण किया है। ये सभी प्रयत्न चाहते हैं कि जनजातियों को ऐश्वनिक पहचान बनी रहे और साथ ही उन्हें उनकी समस्याओं से मुक्ति मिले।

सामने समस्याओं का एक नया अन्वार खड़ा कर दिया है। एक नया वर्ग बन गया है। शिक्षितों का वर्ग अधिशिक्तों से जुड़ा है और इस तरह के परिवर्तन ने जनजाति समाज के इसने उन्हें उपभोक्तावादी बना दिया है। उनकी आवश्यकताएँ बढ़ गयी हैं। उनमें पढ़े-लिखे लोगों और अभिजनों का में ऐसी समस्याओं का उल्लेख किया। रपट का कहना है कि आज जनजातियाँ कई वर्गों के सम्पर्क में आ रही हैं। समस्याएँ हैं जो सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप आयी हैं। अनुसूचित जनजाति आर्युक्त ने अपनी रपट पर सेमिनार ने अपने विचार रखे हैं। पर बहुत बड़ी समस्या जो इस सेमिनार ने समझी है वे जनजातियों की ऐसी महारूप, गुजरात मध्य-प्रदेश के विस्थापित आदिवासी आज बहुत बड़े जाँचिम को उठा रहे हैं। इन सब समस्याओं बहुत गम्भीर हैं। भिलाई कारखाने के बनने से कई आदिवासी विस्थापित हो गये; सरदार सरोवर बाँध बनने से और दिया गया कि वे जनजातियाँ जिनका भारी संघर्ष लगने से या बाँध बाँधने से विस्थापन हुआ है उनकी समस्याएँ जनजातियों की समस्याएँ देश के मध्य भाग में रहने वाली जनजातियों से भिन्न हैं। इस सेमिनार में इस बात पर भी जायजा लिया गया था। इस सेमिनार ने कई समस्याओं पर विचार किया। इसका विचार था कि उत्तर-पूर्व की एडवार्ड स्टडी, प्रिमला के तत्वाधान में हुए एक सेमिनार में भारतीय जनजातियों की समस्याओं का (Problems Caused due to Participation in the Processes of Social Change)

9. सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं में भाग लेने के परिणामस्वरूप उत्पन्न समस्याएँ

निकलना कठिन हो गया है। साहूकार के कर्ज को उतारना है। अग्रप्रस्ताव ने एक ऐसा गंदा चक्र घेरा कर दिया है जिसके बाहर इस समूह का हुआ। आज स्थिति यह है कि जनजाति सदस्य साहूकार से कर्ज लेना है और फिर साहूकारी समिति के इस कर्ज से में स्थापित किया। इन क्षेत्रों में सहकारी आंदोलन का एक उद्देश्य साहूकार को समाप्त करना था; लेकिन ऐसा नहीं सरकार जनजातियों की अग्रप्रस्ताव से बालिक थी। इसके लिये उसने सहकारी आंदोलन को जनजाति क्षेत्र

काम करती था।

का उत्तर भारत का स्वरूप बंधुआ मजदूर था। एक छोटे कर्ज के लिये आदिवासी पीढ़ी-दर-पीढ़ी साहूकार के यहाँ

उपस्थिति को सदेह की दृष्टि से देखते हैं। दक्षिण राजस्थान में और इसी तरह गुजरात में हाली प्रथा थी। हाली प्रथा में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्यकाम

परिवर्तन का एक और दृष्टिकोण यह है कि केन्द्र और राज्य सरकार ऐसे प्रयत्न करती हैं जिनके द्वारा अनुसूचित जातियों के सदस्यों का इस भाँति विकास किया जाये कि वे सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से देश की मुख्यधारा की संश्लेषण कर सकें। जनजातियों के विकास के लिए सामान्यतया सरकार ने तीन उपग्राम अपनाये हैं—(1) जनजाति उपयोजना क्षेत्र (Tribal Sub-plan Area), (2) महा अर्थव्यवस्था विकास के विशेष प्रोजेक्ट (Special Project for Primitive Tribes)। इन तीन उपग्रामों द्वारा राज्य सरकार विकास के सहयोग से जनजाति विकास के कार्यक्रम लागू करता है। राज्य के जिस क्षेत्र में कुल जनसंख्या में 50 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या निवास करती है उस क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र (Scheduled Area) कहते हैं। इसके लिए विकास कार्यक्रम समपूर्ण क्षेत्र पर लागू किया जाता है। महा योजना के अन्तर्गत राज्य में बिखरे हुए जाँची अनुसूचित जाति के लोग होते हैं उनके लिए विकास कार्यक्रम होते हैं। राज्य में जो भी घोषित आदिवासी जातियाँ होती हैं उनके लिए विशेष कार्यक्रम बनाये जाते हैं। विकास कार्यक्रमों की संख्या बहुत बढ़ी होती है। किसी-किसी राज्य में तो कार्यक्रम 100 से भी अधिक होते हैं। मॉडर्न तौर पर ये कार्यक्रम दो तरह के होते हैं—(1) समुदाय के विकास के कार्यक्रम (Programmes for Community Development), और (2) व्यक्ति के लाभ के कार्यक्रम (Individual Beneficiary Programmes)। जब एक जनजाति गाँव में सांस्कृतिक कुर्बानियाँ बनायी जाती हैं, बीमारियाँ आती हैं या गाँव की पक्की सड़क द्वारा दूसरे गाँव से जोड़ा जाता है, तो यह समुदाय के विकास का कार्यक्रम है। दूसरी ओर जब जनजाति के किसी सदस्य को उनके खेत पर कुर्बानियाँ खोदने के लिए आर्थिक सहायता दी जाती है, उसके बच्चों को पढ़ाने के लिए छात्रवृत्ति दी जाती है या उद्यमशीलता के लिए कर्ज दिया जाता है, तो यह व्यक्तिगत लाभ का कार्यक्रम है। ये दोनों कार्यक्रम जनजाति क्षेत्र में साथ-साथ चलते हैं। इन दोनों कार्यक्रमों पर एक निरिचय अनुग्रह राज्य और केन्द्र सरकार आर्थिक सहायता देती है।

कार्यक्रमों का मूल्यांकन (Evaluation of Programmes)

समपूर्ण देश में लगभग 41 जनजातीय समूह हैं। इन जनजातियों में विकास कार्यक्रमों का एक समान प्रभाव पड़ा है, ऐसा नहीं है। प्रत्येक जनजाति समूह विकास की एक निरिचय अवस्था में है और इसी के संदर्भ में इन कार्यक्रमों का लाभ उसे मिलता है। देखा जाये तो जनजातियों में स्वतन्त्रता प्रदान की जाये तो परिवर्तन आये हैं उन्हें दो तरह से देखा गया है। एक तरह का सामाजिक परिवर्तन तो निरिचय सामाजिक परिवर्तन है। सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है कि अनुसूचित जातियों की तरह जनजातियाँ भी सांस्कृतिक विकास का सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बना रही हैं। स्टीफन फुचस (Stephen Fuchs) ने अपनी पुस्तक 'रिबेलियस प्रोफेत्स' (Rebellious Prophets) में कहा है कि देश के आन्तरिक भागों की जनजातियों में कई सामाजिक-धार्मिक आंदोलन चल रहे हैं। भारतीय आन्दोलन इसका अच्छा उदाहरण है। के.एस. सिंह ने देश के आदिवासीयों में चलने वाले 'एथनिक परिवर्तन' का मतलब बताया है जो अपने स्वयंसेवक रूप में आदिवासीयों में परिवर्तन ला रही है। जिस तरह से देश में औद्योगिक समाज का निर्माण हो रहा है और इसके परिणामस्वरूप शहरीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो रही है, इसका प्रभाव भी जनजातियों पर पड़ा है। शहरीकरण की प्रक्रिया एक बहुत बड़ी प्रक्रिया है। इसके परिणामस्वरूप गाँवों के आदिवासी राजागार के लिए शहरों में पहुँच रहे हैं। इन प्रवासी आदिवासीयों के माध्यम से औद्योगिक और ग्रामीण संस्कृतियों की अन्तःक्रिया बहुत महत्वपूर्ण हो गयी है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया स्वतः चलती है इसने आदिवासीयों को अधिक प्रभावित किया है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का निर्माण उद्देश्यका

नीति

नोट

बदलता हुआ जनजातीय सामाजिक स्तरीकरण (Changing Tribal Social Stratification)

पिछले तीन-चार दशकों में जनजातियों में जो परिवर्तन आया है, उसका लेखा-जोखा समाजशास्त्रियों ने किया है। इन अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि आदिवासियों के सामाजिक स्तरीकरण में बहुत बड़ा अन्तर है। के.एल. शर्मा ने अपनी पुस्तक सोशल स्ट्रेटिफिकेशन इन इण्डिया (Social Stratification in India, Sage, 1977) में जनजातियों के सामाजिक स्तरीकरण में जो परिवर्तन आया है, उसका विश्लेषण किया है। कुछ इसी तरह के अध्ययन जो सामाजिक स्तरीकरण के क्षेत्र में आते हैं, जगन्नाथ पाथी (1984), सच्चिदानंद (1990), प्रदीप कुमार बोस (1981) और कुलकर्णी (1979) के हैं जो तथ्य सामग्री के आधार पर आदिवासियों की वर्ग-व्यवस्था का विश्लेषण करते हैं। उदाहरण के लिये प्रदीप कुमार बोस आदिवासियों के चार वर्गों की चर्चा करते हैं— (1) धनाढ्य कृषक वर्ग, (2) मध्यम कृषक वर्ग, (3) गरीबी कृषक, और (4) कृषि मजदूरी करने वाले। के.एल. शर्मा का कहना है कि विकास कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप जनजातियों में जो नया स्तरीकरण उभरा है वह सामान्य भारतीय स्तरीकरण के अनुरूप ही है।

पीपल ऑफ इण्डिया (POI) प्रोजेक्ट में के.एस. सिंह ने विकास कार्यक्रमों की भूमिका का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि विकास के लाभ सभी जनजातियों को समान रूप से नहीं मिले हैं। यह भी निश्चित है कि इन कार्यक्रमों ने गैर-बराबरी को पाटने की अपेक्षा उसे बढ़ाया ही है। जनजातियों में मध्यम वर्ग का आना, उपभोक्तावाद का बढ़ना, अभिजन वर्ग का उभरना और राजनीतिक चेतना का आना यह निश्चित रूप से बताता है कि जनजातियों में विकास हुआ है। के.एस. सिंह विशेष करके विकास कार्यक्रमों का परिणाम आदिवासी शिक्षा में पाया है। इस शिक्षा ने उद्यमियों और व्यापारियों को पैदा किया है। कोई 380 जनजातीय समूह ऐसे हैं जिन्होंने शिक्षक वर्ग को पैदा किया है; 156 जनजातियों ने प्रशासकीय सेवा का लाभ लिया है और 178 जनजातीय समूह ऐसे हैं जिन्होंने रक्षा सेवाओं में किसी न किसी तरह की नौकरी पायी है। के.एस. सिंह बताते हैं कि 362 आदिवासी समूह ऐसे हैं जिनका नेतृत्व ग्रामीण स्तर पर है; 185 समूहों का क्षेत्रीय स्तर पर और 45 समूहों का राष्ट्रीय स्तर पर।

तथ्यों के आधार पर के.एस. सिंह कहते हैं कि आदिवासियों का शिक्षा के प्रति रुझान संतोषजनक है। अब आदिवासी लड़के और लड़की की शिक्षा में कोई भेदभाव (Discrimination) नहीं रखते। इसके परिणामस्वरूप उनकी साक्षरता दर में अन्तर आया है। जहाँ तक स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रश्न है, कुल 461 जनजातीय समूहों में 53 समूहों ने संतोषजनक अभिवृत्ति बतायी है। के.एस. सिंह विकास के विभिन्न पहलुओं की राष्ट्रीय स्तर पर पड़ताल करते हैं। वे कहते हैं कि आदिवासी समूहों की मृत्युदर में कमी आयी है; जन्मदर में वृद्धि हुई है। यह दिलचस्प बात है कि उत्तर-पूर्व की जनजातीय जनसंख्या में जन्मदर में 35 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जब आदिवासी हैंडपम्प का पानी पीते हैं, वे कृषि तथा पशुपालन के कार्यक्रमों में भागीदारी करते हैं। कई जनजातियों ने सूअर पालन, कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, मछली, मुर्गी पालन को स्वीकार किया है। इन सब सफलताओं के होते हुए भी के.एस. सिंह एक निराशाजनक टिप्पणी करते हैं। वे कहते हैं कि आदिवासियों का बचत (Saving) के प्रति कोई रुझान नहीं है। अब भी वे कर्ज के लिये साहूकारों पर निर्भर रहते हैं। उनके शोषण में भी कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं आया है।

3.20 स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण (Health and Family Welfares)

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत ने प्राथमिक (Primary), माध्यमिक (Secondary) और तृतीयक (Tertiary) स्तर पर स्वास्थ्य देखभाल संस्थानों जैसे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सामूहिक स्वास्थ्य केन्द्र, सार्वजनिक, निजी एवं स्वैच्छिक क्षेत्रों में अस्पतालों के 64 भारी स्वास्थ्य आधारसंरचना (Health Infrastructure) स्थापित कर ली। कुशल मानवीय संसाधनों के विकास के लिए चिकित्सा एवं चिकित्सा सहायक संस्थानों (Paramedical Institutions) का निर्माण कर लिया था, जिसमें आयुर्वेद, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्ध और होमियोपैथी शामिल थे।

नोट

छ: दशकों के कठिन परिश्रम के परिणामस्वरूप स्वास्थ्य सूचकों (Health Indices) की उन्नति में काफी सफलता प्राप्त हुई है। इन सूचकों में जीवन प्रत्याशा, शिशु एवं मातृ दरें शामिल हैं। चेचक और प्लेग पूर्णतया समाप्त कर दिए गए हैं और बहुत-सी अन्य बीमारियों जैसे मलेरिया, तपेदिक, दस्त भारी सीमा तक नियंत्रित कर लिया गया है।

गरीबी और स्वास्थ्य के बीच सम्बन्धों को स्वीकार करने की आवश्यकता है। दीर्घकालीन और खर्चीली बीमारी तो गैर-गरीब परिवारों को भी गरीबी में धकेल देती है। स्वास्थ्य देखभाल को उन्नत करने के लिए एक व्यापक दृष्टि चाहिए जिसमें व्यक्तिगत स्वास्थ्य, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई, पीने का पानी और स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान और बच्चों का पालन-पोषण शामिल हैं। जहां अमीर लोग अपने स्वास्थ्य पर व्यय का भुगतान कर सकते हैं। वहीं, गरीब और सीमान्त समूह के लोग खर्चीले चिकित्सक इलाज, विशेषकर लम्बी और चिरकालिक बीमारी के लिए भुगतान करने में समर्थ नहीं होते। इस कारण, यह राज्य का दायित्व हो जाता है कि वह वंचित एवं सीमान्त समूहों के इलाज का प्रावधान करे जिसमें तीन वर्ष से कम आयु वाले बच्चे, विकलांग, अनुसूचित जातियां एवं जनजातियां, आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग आदि शामिल हैं, इनके लिए या तो निःशुल्क या सामर्थ्य अनुसार स्वास्थ्य देखभाल उपलब्ध कराई जाए।

इन सब उपलब्धियों के बावजूद भारत चीन और श्रीलंका के बराबर निष्पादन प्राप्त नहीं कर सकता।

स्वास्थ्य सूचकों अर्थात् जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्यु, मातृ मृत्यु एवं कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate) से यह संकेत प्राप्त होता है कि विकास की समान अवस्थी वाले देशों जैसे चीन, इंडोनेशिया और श्रीलंका का निष्पादन भारत से कहीं बेहतर है।

सकल प्रजनन दर और जनसंख्या स्थिरीकरण

सकल प्रजनन दर (Total Fertility Rate-TFR) का अभिप्राय किसी स्त्री द्वारा अपने पूरे प्रजनन काल में जीवित जन्मों की संख्या से है। 1950 के दशक में यह 6.0 थी, जो 2006 में कम होकर 2.9 हो गयी। भारत 2.1 प्रजनन दर के लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है जो जनसंख्या स्थिरीकरण (Population Stabilisation) के लिए आवश्यक है। यह प्रभावी परिवार कल्याण प्रोग्रामों द्वारा प्राप्त किया जाता है, जिसके लिए गर्भनिरोधक उपायों का प्रयोग जो 1970 के दशक में 10 प्रतिशत बढ़कर 1992-93 में 40 प्रतिशत और 2005-06 में 56 प्रतिशत हो गया।

ग्यारहवीं योजना द्वारा 2001-02 तक तय किए गए लक्ष्य-

1. मातृ मृत्यु दर के प्रत्येक 1,00,000 जन्मों के लिए 100 तक कम करना।
2. शिशु मृत्यु दर प्रत्येक, 1000 जीवित जन्मों के लिए 28 तक कम करना।
3. सकल प्रजनन दर को 2.1 करना।
4. सभी को 2009 तक साफ पीने का पानी उपलब्ध कराना।
5. 0-3 आयु वर्ग के बच्चों में कुपोषण के स्तर को वर्तमान स्तर से आधा करना।
6. स्त्रियों एवं लड़कियों में रक्तक्षीणता (Anaemia) को 50 प्रतिशत कम करना।
7. 0-6 के आयु वर्ग के लिंग अनुपात (Sex Ratio) को 2011-12 तक 935 और 2016-17 तक 950 तक उन्नत करना।

मातृ मृत्यु दर (Maternal Mortality Rate) जो 2001-03 के दौरान प्रति 1,00,000 जीवित जन्मों के 301 थी, 2011-12 तक कम करके 100 किया जाएगा। इस कमी की वर्तमान दर का ख्याल करते हुए यह लक्ष्य प्राप्त करना बहुत कठिन होगा। किन्तु यह इस बात की ओर संकेत देता है कि जन्म के समय प्रशिक्षित दाइयों (Mid-wives) की उपस्थिति तेजी से बढ़ानी होगी।

शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate) 2005 में प्रति 1,000 जीवित जन्मों के 58 के स्तर पर है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक (64) और शहरी क्षेत्रों में कम (40) है। लोगों के प्रति सुरक्षा, पोलियो में कमी और दस्त को नियंत्रित करने की मन्द प्रगति के कारण, 2011-12 में 28 का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयास करना होगा।

नोट

ग्रामीण और शहरी स्वास्थ्य देखभाल में असमानता

कुछ राज्यों में ग्रामीण स्वास्थ्य देखभाल बहुत ही घटिया है, चाहे शहरी क्षेत्रों में परिस्थिति बेहतर है।

सभी स्वास्थ्य सूचकों में ग्राम और शहरी क्षेत्रों में असमानता पायी जाती है। ग्रामीण बच्चों में जिनकी आयु 3 वर्ष से कम है रक्तक्षीणता का 82 प्रतिशत होना और गर्भवती स्त्रियों में 59 प्रतिशत होना एक गंभीर समस्या है।

असमानता में भारी अन्तर गरीबों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों पर भारी, बोझ डालते हैं। उन्नत और पिछड़े, राज्यों के स्वास्थ्य सूचकों में भी तीव्र अन्तर हैं।

चाहे शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवाओं का क्षेत्र बहुत बेहतर है परन्तु गन्दी बस्तियों का विद्यमान होना एक गंभीर समस्या है। गन्दी बस्तियों में रहने वालों का शहरी क्षेत्रों में अनुपात 15 प्रतिशत है। 2001 की जनगणना के अनुसार 4.26 करोड़ व्यक्ति शहरी क्षेत्र में गन्दी बस्तियों में रहते हैं जो 640 कस्बों एवं शहरों में फैले हुए हैं। गन्दी बस्तियों में रहने वालों का अत्यधिक जनघनत्व (Density) के साथ आवास की परिस्थितियों, सफाई के अभाव और पीने के पानी की घटिया व्यवस्था के परिणामस्वरूप इनमें दम, तपेदिक, मलेरिया, दिल के रोग, मधुमेह आदि रोगों का आघात बहुत अधिक है। चूँकि शहरी-गरीबों में स्वास्थ्य देखभाल की सुविधाओं की पहुँच का अभाव है और उनके पास रोग-संकट का सामना करने के लिए पर्याप्त बचत नहीं होती, उनकी आजीविका कमाने की क्षमता पर इसका गहरा दुष्प्रभाव पड़ता है।

भारत में स्वास्थ्य पर व्यय

राष्ट्रीय स्वास्थ्य लेखा के अनुसार 2001-02 में स्वास्थ्य पर कुल व्यय 1,65,734 करोड़ रुपये था अर्थात् जी.डी.पी. का 4.6 प्रतिशत। इसमें से सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यय 21,439 करोड़ रुपये (जी.डी.पी. का 0.49 प्रतिशत था, निजी स्वास्थ्य व्यय 81,830 करोड़ रुपये (जी.डी.पी. का 3.58 प्रतिशत) था और बाहरी सहायता केवल 2,485 करोड़ रुपये थी अर्थात् जी.डी.पी. का 0.11 प्रतिशत।

विश्व विकास संकेतकों (2008) का प्रयोग करते हुए, निम्न तालिका में स्वास्थ्य पर व्यय के आंकड़े तुलना के लिए दिए गए हैं। भारत में 2005 में स्वास्थ्य पर व्यय जी.डी.पी. का 5 प्रतिशत था, जिसमें से सार्वजनिक व्यय 1.0 प्रतिशत था, कुल व्यय का 19 प्रतिशत। चाहे चीन में कुल स्वास्थ्य व्यय जी.डी.पी. का 4.7 प्रतिशत था परन्तु सार्वजनिक व्यय 1.8 प्रतिशत था अर्थात् कुल का 38.8 प्रतिशत है।

स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति व्यय 2005 में भारत में 36 डालर था, इसके विरुद्ध चीन में 81 डालर, जापान में 2,936 डालर, यू.के. में 3,064 डालर और यू.एस.ए. में 6,657 डालर था। जाहिर है कि भारत को अपना स्वास्थ्य पर व्यय, विशेषकर सार्वजनिक व्यय बढ़ाना होगा ताकि यह बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करा सके, विशेषकर गरीबों को अपेक्षाकृत कम लागत पर।

सारणी 3.2 चुने हुए देशों में स्वास्थ्य व्यय (2007)

	कुल व्यय जी.डी.पी. का प्रतिशत	सार्वजनिक व्यय		प्रति व्यक्ति व्यय यू.एस. डालर
भारत	4.1	1.1	26.2	40
चीन	4.3	1.9	44.7	108
मिस्र	6.3	2.4	38.1	101
दक्षिण कोरिया	6.3	3.5	54.9	1,362
जापान	8.0	6.5	81.3	2,751
रूसी फेडरेशन	5.4	3.5	64.2	493
इंग्लैंड	8.4	6.9	81.7	3,867
अमेरिका	15.7	7.2	45.5	7,285

स्रोत—विश्व बैंक, विश्व विकास संकेतक (2010)।

स्वास्थ्य देखभाल का समाधान

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना सर्व समावेशी विकास के लिए राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (National Urban Health Mission-NUHM), जो राष्ट्रीय ग्राम स्वास्थ्य मिशन (National Rural Health Mission) के साथ मिलकर सर्व स्वास्थ्य अभियान (Health for all campaign) का कार्य करेगी।

राष्ट्रीय ग्राम स्वास्थ्य मिशन का उद्देश्य अच्छी स्वास्थ्य देखभाल उपलब्ध कराने के लिए स्वास्थ्य आधार संरचना को मजबूत करना है जिसमें भौतिक एवं मानवीय दोनों आधार शामिल होंगे।

राष्ट्रीय ग्राम स्वास्थ्य मिशन के अधीन, यह तय किया गया है—

- प्रत्येक 1,000 जनसंख्या या बड़े निवास स्थानों के लिए 5 लाख मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कर्मी नियुक्त करना।
- सभी 1.75 लाख उपकेन्द्रों को 2 सहायक नर्स दाइयों (Auxiliary Nurse Midwives) से 2010 तक कार्यशील बनाना।
- सभी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में जिनकी संख्या लगभग 30,000 है, 2010 तक 3 स्टाफ नर्सों का प्रावधान करना ताकि सभी दिनों पर 24 घण्टे सुविधा उपलब्ध करायी जा सके।
- 6,500 सामूहिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर 2012 तक 7 विशेषज्ञ और 9 स्टाफ नर्सों का प्रावधान करना।
- 1,800 तालुका या 34 डिविजन अस्पतालों और 600 जिला अस्पतालों को 2012 तक अच्छी स्वास्थ्य सेवा के लिए मजबूत करना।
- प्रत्येक जिले के लिए चलते-फिरते (Mobile) चिकित्सा अस्पताल 2009 तक कायम कराना।
- राष्ट्रीय ग्राम स्वास्थ्य मिशन में केवल संख्या के रूप में उपलब्धि पर बल नहीं दिया जाएगा बल्कि भारतीय सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा (Indian Public Health Service) के मानदण्ड और मार्गदर्शी सिद्धान्तों को लागू करने पर भी होगा ताकि जहां एक ओर आधारसंरचना को मजबूत बनाया जाए वहां दूसरी ओर इसके कार्यकलाप को भी उन्नत किया जाए।

राष्ट्रीय ग्राम स्वास्थ्य मिशन से निम्नलिखित प्रत्याशित परिणाम प्राप्त किए जाएंगे—

1. मलेरिया से मृत्यु दर को 2010 तक 50 प्रतिशत कम करना और 2012 तक और 10 प्रतिशत की कमी लाना।
2. 2010 तक काला-अजार को 100 प्रतिशत समाप्त करना।
3. डेंगू से मृत्यु दर को 2010 तक 50 प्रतिशत तक कम करना और इसे 2012 तक बनाए रखना।
4. मोतियाबिन्द के ऑपरेशनों को 2012 तक बढ़ाकर 46 लाख करना।
5. कुष्ठ रोग (Leprosy) की विद्यमानता दर को जो 2005 में 1.8 प्रति 10,000 थी, कम करके 1 प्रतिशत के नीचे लाना।
6. तपेदिक के सफल इलाज के स्तर को 85 प्रतिशत तक बनाए रखना।
7. फाइलेरिया को 2010 तक 70 प्रतिशत कम करना, 2012 तक 80 प्रतिशत कम करना और 2015 तक पूर्णतया समाप्त करना।
8. जिला स्तर पर स्वास्थ्य संस्थानों को भारतीय सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के मानदण्डों तक उन्नत करना।
9. स्वास्थ्य सेवाओं के प्रयोग को विस्तार उपलब्ध कराने के वर्तमान स्तर को जो 20 प्रतिशत से नीचे है 75 प्रतिशत के ऊपर ले जाना ताकि बड़े अस्पतालों को भेजे गए मरीजों की संख्या प्रभावी रूप में कम की जा सके।

जननी सुरक्षा योजना (Maternity Protection Scheme) इस योजना का दोहरा उद्देश्य है—एक ओर तो इसका उद्देश्य अस्पतालों में बच्चों के जन्म को प्रोत्साहित करना है, और दूसरी ओर शिशु मृत्यु दर एवं मातृ मृत्यु

नोट

(Immunize) करते हैं, उन्हें जहाँ से स्टॉक की गयी दवाइयाँ देते हैं और उन्हें निरोधानत्मक उपचारों से अलग आपकी जीवित रख पाने की संभावना नहीं समझते, वे स्वास्थ्य कैम्पों में काम करते हैं और लोगों का अल्ट्रासाउण्ड डॉक्टर और सहायक नर्स दवाइयाँ (Auxiliary Nurse Midwives) जो ऐसे दूर-दराज के द्वीपों में अपने देखभाल का समान लेकर तिनसुखिया, धीमाजी एवं डिब्रुवाँ जिलों के भूले-बिसरे 10,000 लोगों तक पहुँचाना है। अर्थ 'उम्मीद' है, आरम्भ किया है। एक 22 मीटर लम्बा और 4 मीटर चौड़ा जहाज उम्मीर (Hope) और स्वास्थ्य जा सकता है। असम में जो कि अत्यन्त बाढ़ संभावित राज्य है, UNICEF और असम सरकार ने 'आखा' जिसका में कार्य कर रहे स्वास्थ्य कर्मचारियों को अधिक वेतन और उद्योग के क.बी.के. जिलों के माँडल पर विचार किया स्वास्थ्य केन्द्र 24 घण्टे कार्य कर रहे हैं। विभिन्न राज्यों के सफल माँडल जैसे हिमाचल प्रदेश में जनजातीय क्षेत्रों सभी राज्यों में निम्नलिखित माँडल कार्यान्वित करना होगा जिसमें लगभग 58 प्रतिशत प्राथमिक एवं सामूहिक के लिए एक ही योजना लागू की जाए।

अपानी हेमली नीति सम्बन्धी हस्तक्षेप की क्षेत्र-विशेष (Area specific) बनाना होगा, इसकी बजाए कि सारे देश उपाय या स्वास्थ्य देखभाल विशेषक (Preventive Health Care) ही काफी नहीं, बल्कि एक समन्वित नीति अस्पताल पहुँचाने से पहले रास्ते में ही मर जाते हैं। अतः स्वास्थ्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए केवल उपादानात्मक एक मूद्रा, विशेषकर ग्राम क्षेत्रों से सम्बन्धित है कि आवास बिखरे हुए होते हैं और स्थियाँ एवं बच्चे

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल (Primary Health Care)

सहयोग किया जाए।

पंचायती राज संस्थाओं, स्थानीय विकास समुदाय, गैर-सरकारी संगठनों, स्वैच्छिक एवं नागरिक समाज संगठनों से स्वास्थ्य योजनाएँ तैयार की जाएँ और इसके लिए सभी प्रभावित वर्गों को साथ लिया जाए और ऐसा करते समय समाधान करें। पारदर्शी योजना इस बात पर बल देती है कि समन्वित जिला स्वास्थ्य योजनाएँ और ब्लॉक-विशेष राज्यों की ऐसी व्यवस्था कायम करनी होगी जो गरीबों की स्वास्थ्य आवश्यकताओं का व्यापक रूप में

वर्तमान स्वास्थ्य प्रणाली की मजबूत बनाना

निर्माण के स्थान (Construction sight) पर शामिल किए जाते हैं।

गरीब लोग, बेघर बच्चों (Street Children), निर्माण में लगे हुए श्रमिक, जो चाहे गन्दी बस्तियों में रहते हों या रहने वाले, शिक्षा चलाने वाले, गलियों में बस्तुएँ बचाने वाले, रेलवे और बस स्टैंडों के कुली, बिना आवास के सभी शहरों में जिनकी जनसंख्या 1,00,000 लाख से अधिक है, लागू किया जाएगा। इसके अर्थन गन्दी बस्तियों में विशेषकर गन्दी बस्तियों में रहने वाले ताकि उन्हें प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध करायी जा सकें। इस मिशन के राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन का उद्देश्य शहरी गरीबों की स्वास्थ्य आवश्यकताओं को पूरा करना है,

राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (National Urban Health Mission)

करना चाहिए।

और इसके परिणामस्वरूप गरीब स्थियों को वायुदे के अनुसार धन राशि प्राप्त नहीं होती। इस समस्या का समाधान सुनिश्चित की जा सकती है। दूसरे जननी सुरक्षा योजना के लिए उपलब्ध राशि अस्पतालों को समय पर नहीं पहुँचती (capacity) की धीरे-धीरे बढ़ाने और संस्थात्मक प्रसवों को साथ-साथ प्रोत्साहन देने से इस योजना की सफलता और बच्चे के जन्म के पश्चात् उत्पन्न समस्याओं के परिणामस्वरूप संस्थानात्मक क्षमता (Institutional deliveries) नहीं रखती और दूसरी आधी मातृत्व मीठ प्रसव के बाहर होती है, गर्भ के दीर्घान, गर्भपात के कारण प्रत्येक वर्ष 260 लाख प्रसवों को संभालने के लिए संस्थानात्मक प्रसव क्षमता (Institutional capacity for इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखना होगा। एक महत्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि भारत

28.74 लाख स्थियों की लागू प्राप्त हुआ।

संस्थानात्मक प्रसवों (Institutional Deliveries) की व्यवस्था की गयी और जननी सुरक्षा योजना से दर को कम करना है। इस योजना का पूरा खर्च केन्द्र सरकार देगी और वित्तिका देखभाल के साथ नकद सहायता को समन्वित किया जाएगा। राष्ट्रीय मातृत्व स्वास्थ्य मिशन के अधीन 1 अप्रैल 2007 तक 184.25 लाख

नीति

राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन का
संस्थानात्मक प्रसवों
की समन्वित किया जाएगा।

नोट

के रूप में प्रशासक का कार्य करता है। यह गुजरात सरकार के चिरंजीवी योजना के प्रयोग का भी उदाहरण देती है जिसमें वह गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों की गर्भवती औरतों के प्रसव के लिए निजी डाक्टरों से सहयोग प्राप्त करती है चाहे वह प्रसव साधारण हो या शल्यक्रिया (Caesarian) द्वारा बच्चे के जन्म से सम्बन्धित हो। इसी प्रकार आंध्र प्रदेश की सरकार शहरी गन्दी बस्तियों की देखभाल के प्रोजैक्ट के लिए सार्वजनिक जीवन को निजी क्षेत्र को उपलब्ध कराती है। इसी प्रकार राजस्थान सरकार एक अनुबन्ध (Contract) के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र से निदान' सेवाएं (Diagnostic Services) प्राप्त की जाती हैं, इसके लिए सरकार गरीब परिवारों और नागरिकों के कल्याण के लिए अस्पतालों में सस्ती दरों पर औषधियां मुहैया कराती है और 70 वर्ष की आयु के ऊपर के वरिष्ठ नागरिकों के लिए ये दवाइयां मुफ्त दी जाती हैं।

विभिन्न राज्य सरकारों ने कई प्रकार की पहल की है परन्तु अनुभव से यह संकेत मिलता है कि ऐसे प्रयोग तभी सफल हुए जब धर्मार्थ उद्देश्यों से प्रेरित गैर-सरकारी संगठन साथ मिल कर कार्य करते हैं। परन्तु चूँकि निजी क्षेत्र की आंख हमेशा लाभ पर टिकी रहती है, ऐसे प्रयोग सफल नहीं होते। ग्यारहवीं योजना इस तथ्य को निम्नलिखित शब्दों में स्वीकार करती है, किन्तु सच्ची साझेदारी जिसका अभिप्राय साझेदारों के बीच बराबरी होता है, उद्देश्यों के प्रति साझी वचनबद्धता, साझे निर्णय और जोखिम की प्रवृत्ति यदाकदा ही देखी जाती है।

स्वास्थ्य बीमा-गरीबों का संरक्षण

सभी के लिए अच्छा स्वास्थ्य, विशेषकर गरीबों के लिए एक कठिन कार्य है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 60वें रौंद (2004) से पता चलता है कि ग्रामीण सरकारी अस्पतालों में प्रत्येक मरीज के अस्पताल में भर्ती के लिए औसतन 3,000 रुपये से अधिक खर्च करना पड़ता है। ग्रामीण निजी अस्पतालों में यह 7,000 रुपये से अधिक है। शहरी क्षेत्रों में निजी अस्पतालों में प्रत्येक मरीज के औसत इलाज के लिए 11,000 रुपये खर्च पड़ते हैं, जो सरकारी अस्पताल में खर्च से लगभग तीन गुना है। जो गरीब इन अस्पतालों में इलाज करवाने का साहस करते हैं। उन्हें भारी ऋणग्रस्तता का शिकार होना पड़ता है। इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि स्वास्थ्य सेवाओं के लिए गरीबों की जेबों से होने वाले खर्च को कम किया जाए। इसका गरीबी को दूर करने पर निश्चित प्रभाव होगा।

आज स्वास्थ्य बीमा सरकारी और निजी क्षेत्र दोनों को मिला कर केवल 1 प्रतिशत जनसंख्या को ही सुरक्षा प्रदान करता है। वर्तमान कर्मचारी राजकीय स्वास्थ्य योजना (Employees State Insurance Scheme-ESIS), केन्द्र सरकार की स्वास्थ्य बीमा योजना (Central Government Health Scheme-CGHS), और सेना से सेवा-निवृत्त अंशदायी स्वास्थ्य योजना (Exservicement Contributory Health Scheme ENCES) औद्योगिक श्रमिकों, सरकारी कर्मचारियों और सेना से सेनावृत्त व्यक्तियों और उनके परिवारों को स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराता है। मेडिक्लेम (Mediclaim) मुख्यतः उच्च आय वर्गों के लिए है। निजी स्वास्थ्य बीमा योजनाएं मुख्यतः शहरों की ओर प्रेरित हैं और इनके साथ कई समस्याएँ जुड़ी हुई हैं जैसे सामर्थ्य से अधिक बीमा किस्त, दावों का भुगतान करने में देरी नियमों को एकतरफा ढंग से बदल देना और अपारदर्शी कार्यविधि।

इस बात की सख्त जरूरत है कि स्वयं सहायता समूहों को अपनी आमदनी का थोड़ा-सा भाग स्वास्थ्य बीमा के अंश के रूप में देना पड़े और इस प्रकार जरूरतमन्द परिवारों को 5,000 से 10,000 रुपये तक नकद सहायता अस्पताल में प्रत्येक प्रवेश के लिए उपलब्ध करायी जा सके, विशेष कर अनायास विपत्ति और मृत्यु के लिए।

सम्प्रदाय आधारित स्वास्थ्य बीमा (Community based health insurance)

यह योजना लाभ कमाने के लिए नहीं बल्कि इसका उद्देश्य अनौपचारिक क्षेत्र (Informal Sector) के लिए बीमा सुविधा उपलब्ध कराना है और इसके लिए स्वास्थ्य जोखिम का सामूहिक प्रबन्ध किया जाता है ताकि श्रमिकों को कम प्रीमियम देना पड़े। इसमें मुख्य मुद्दा समूह के लक्षित वर्गों को अपना अंशदान (Contribution) तय करना है ताकि इसमें भाग लेने वाले सदस्यों को लाभ का पैकेज प्राप्त हो सके।

इस योजना के सफल उदाहरण हैं-ACCORD, BAIF, करुणा ट्रस्ट, सेवा, DHAN और VHS इन योजनाओं को गरीबों की आवश्यकतानुसार और उनकी सुविधा के अनुसार ढाला गया है।

असंगठित क्षेत्र (Unorganised Sector) के लिए स्वास्थ्य बीमा-हमारी श्रमशक्ति का लगभग 93 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में रोजगार प्राप्त है। असंगठित क्षेत्र के उद्यमों पर राष्ट्रीय आयोग (National Commission for Enterprises in the Unorganised Sector-NCEVS) ने इन परिवारों की बीमारी और अस्पताल में इलाज के लिए एक विशिष्ट योजना की सिफारिश की।

यह योजना राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा योजना का अंग है जिसमें-

1. प्रत्येक श्रमिक को अपने और अपने परिवार के सदस्यों के लिए एक वर्ष में 10,000 रुपये तक बीमा की सुविधा किसी अस्पताल में इलाज के लिए दी जाती है जिन्हें राजकीय बोर्ड से चाहे वे सार्वजनिक क्षेत्र में हों या निजी क्षेत्र में मान्यता प्राप्त हैं। यदि कोई ऐसा क्लिनिक श्रमिक के निवास के 10 किलोमीटर के दायरे में न हो, तो उसे सबसे नजदीक के अस्पताल तक परिवहन लागत (Transport Cost) भी उपलब्ध होता है। बीमा कम्पनी सभी भुगतान सीधे क्लिनिक अथवा अस्पताल को करती है, केवल परिवहन लागत छोड़ कर श्रमिक को कोई और भुगतान नहीं किया जाता।
2. मातृत्व लाभ (Maternity benefits) जो 1,000 रुपये की अधिकतम सीमा तक होता है, श्रमिक या उसकी पत्नी को एक वर्ष के दौरान दिया जाता है।
3. यह योजना परिवार के कमाने वाले मुखिया के लिए अस्पताल में इलाज के लिए 750 रुपये प्रतिदिन 15 दिनों के लिए उपलब्ध करायेगी।
4. मातृत्व स्वास्थ्य योजना (Maternity Health Scheme)—गरीबी रेखा के नीचे सभी परिवारों की गर्भवती स्त्रियों को इस योजना के दायरे में रखा गया है। इस योजना के लिए प्रतिव्यक्ति शुल्क (Capitation fees) सरकार द्वारा वहन किया जाएगा।
5. सी.जी.एच.एस. और अन्य सरकारी योजनाओं का असंगठित क्षेत्र के लिए विस्तार करना—31 दिसम्बर 2006 पर सी.जी.एच.एस. केवल 33 लाख श्रमिकों को उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त कर्मचारी राज्य बीमा योजना और सेना से सेवानिवृत्त व्यक्ति के लिए बीमा योजना है। NCEUS रिपोर्ट स्पष्ट रूप में यह सिफारिश करती है कि इन योजनाओं का विस्तार असंगठित क्षेत्र के कर्मचारियों के लिए कर देना चाहिए। स्वास्थ्य आधार संरचना (Health Infrastructure) के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों को अपना अंशदान महत्वपूर्ण रूप में बढ़ाना होगा।

चाहे NCEUS की रिपोर्ट अगस्त 2007 में पेश की गयी सरकार ने इस रिपोर्ट में अभी कार्रवाई नहीं की है। यह वस्तुतः असंतोषजनक है और इसका फौरी उपचार होना चाहिए। जन स्वास्थ्य सहयोग (Co-operation for peoples health)।

पिछले कुछ वर्षों से नवयुवक डॉक्टरों के समर्पित और सामाजिक सेवा के लिए प्रेरित डाक्टरों के एक समूह ने अपनी उच्च वेतन वाली नौकरियों का परित्याग कर बिलासपुर और छत्तीसगढ़ के दूरदराज के क्षेत्रों में चिकित्सा कार्य आरम्भ किया। उन्होंने विभिन्न निदान परीक्षणों (Diagnostic tests) के लिए साधारण तकनीक विकसित की है। जनस्वास्थ्य सहयोग के प्रयोग द्वारा प्रत्येक परीक्षण की लागत 2 रुपये प्रति परीक्षण कर दी, रक्तक्षीणता की 1 रुपया और मधुमेह की 2 रुपये और गर्भदान के लिए 3 रुपये। उन्होंने निम्न लागत वाली मच्छर भगाने की क्रीम, बच्चों में निमोनिया के विद्यमान होने की तकनीक, रक्तचाप (Blood Pressure) को आसानी से पढ़ने के यन्त्र और पानी को शुद्ध करने के उपाय, कायम किए। इन तकनीकों को इस प्रकार से डिजाइन किया गया कि अनपढ़ या कम पढ़ी-लिखी स्त्रियां और बच्चे इनका प्रयोग कर सके। इसी प्रकार उन्होंने मलेरिया का पता लगाने की साधारण तकनीक विकसित की। ग्राम स्वास्थ्य कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया कि वे खून के नमूनों (Blood samples) को लेकर उन्हें साबुन की डिब्बियों में पैक कर दें और बस ड्राईवर इन्हें गतियारी हस्पताल जो जन स्वास्थ्य सहयोग द्वारा चलाया जाता है, में छोड़ देते हैं। यहां उनका तुरन्त परीक्षण किया जाता है और इनकी रिपोर्ट उसी बस ड्राईवर के हाथ वापस भेज दी जाती है। इस कोरियर प्रणाली को चालू किया गया है जिससे बहुत-सी

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत
में सामाजिक नीति का
नीतिगत उद्विकास

नोट

नोट

जाने बचायी गई हैं। जनस्वास्थ्य सहयोग द्वारा विकसित की गयी तकनीकें सभी स्वास्थ्य कर्मचारियों द्वारा बीमारियों का पता लगाने के लिए इस्तेमाल की जाती हैं और फिर इन्हें नियंत्रित करने की औषधियों के सुझाव दिए जाते हैं। केन्द्र एवं राज्यों द्वारा स्वास्थ्य के वित्त पोषण की प्रवृत्तियां

पिछड़े दशकों में स्वास्थ्य के लिए किए गए वित्त-आवंटन से संकेत प्राप्त होता है कि स्वास्थ्य पर व्यय (केन्द्र एवं राज्यों को जोड़कर) कुल सरकारी व्यय का 1992-93 में 3.12 प्रतिशत था जो 2003-04 में 0.99 प्रतिशत हो गया। मौद्रिक रूप में, प्रतिव्यक्ति स्वास्थ्य व्यय 1993-94 में 89 रुपये से बढ़कर 2003-04 में 214 रुपये हो गया जो स्थिर कीमत पर वास्तविक रूप में 122 रुपये है अर्थात् इसमें औसत वार्षिक वृद्धि दर 3.2 प्रतिशत थी जो वस्तुतः बहुत थोड़ी थी।

केन्द्र सरकार का सार्वजनिक स्वास्थ्य पर व्यय को दो भागों में वर्गीकृत किया है—राष्ट्रीय ग्राम स्वास्थ्य मिशन और गैर ग्राम राष्ट्रीय स्वास्थ्य निशा गैर ग्राम स्वास्थ्य मिशन के व्यय में शामिल हैं सचिवालय अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य सहयोग और AYUSH (आयुर्वेदिक यूनानी, होमियोपैथी, सिद्ध, योग, प्राकृतिक चिकित्सा)। इसमें यदि, राज्यों के स्वास्थ्य पर व्यय को जोड़ दें, तो हम केन्द्र एवं राज्यों द्वारा स्वास्थ्य पर लिए गए व्यय के योग को प्राप्त कर लेते हैं।

सारणी 3.3 केन्द्र एवं राज्यों का स्वास्थ्य पर व्यय

(करोड़ रुपये)

	2004-05	2009-10
केन्द्र		
1. स्वास्थ्य	2,688	6,688
2. परिवार कल्याण/राष्ट्रीय ग्राम स्वास्थ्य मिशन	5,525	12,529
3. उत्तर-पूर्वी क्षेत्र	—	1838
4. AYUSH	225	922
1. केन्द्र द्वारा कुल	8,438	22,025
2. राज्यों द्वारा कुल	20,980	43,849
3. केन्द्र + राज्य (जोड़)	29,418	65,874
जनसंख्या (करोड़)	107.9	117.0
प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य आवण्टन (मैट्रिक)	272.6	563.0
प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य आवण्टन वास्तविक	228.1	229.0
(जी.डी.पी. चार्ट कीमतों पर)	28,43,897	59,60,661 *
स्वास्थ्य आबंटन (जी.डी.पी. का प्रतिशत)	1.01	1.10

स्रोत—इकानामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, जून 28, 2008, केन्द्रीय बजट 2009-10, भारतीय रिजर्व बैंक, राज्य बजटों का विश्लेषण 2009-10, *7 प्रतिशत संवृद्धि दर एवं 7 प्रतिशत मुद्रास्फीति के आधार पर कल्पित।

2004-05 से 2006-07 सम्बन्धी आंकड़ों से पता चलता है कि जी.डी.पी. के प्रतिशत के रूप में स्वास्थ्य व्यय 2004-05 में 1.03 प्रतिशत से बढ़कर 2009-10 में 1.10 प्रतिशत हो गया। यह एक स्वस्थ प्रवृत्ति है परन्तु अभी हम ग्यारहवीं योजना के दौरान 2010-12 में इसे बढ़ाकर जी.डी.पी. के 2.3 प्रतिशत तक ले जाने से कहीं पीछे हैं।

पीने का साफ पानी और सफाई (Sanitation)

पीने का साफ पानी एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है क्योंकि असुरक्षित पेयजल बीमारियों और कुपोषण के खतरे को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त, पानी द्वारा हस्तांतरित बीमारियां स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं।

नोट

2005 में ग्रामीण क्षेत्र में 14.22 लाख आवास स्थानों में से 13.8 लाख (97.0 प्रतिशत) आवास स्थान पानी की पूर्ति से पूर्णतया लाभान्वित हो रहे थे, इसमें से 1.66 लाख निवास स्थान दोबारा गिरकर ऐसी स्थिति में पहुँच गए कि जहाँ लोगों को पानी की पर्याप्त पूर्ति उपलब्ध नहीं थी और उन्हें पानी लाने के लिए 2 किलोमीटर से भी अधिक दूर जाना पड़ता है, जोकि जीवन की बुनियादी आवश्यकता है। इसी प्रकार 1.86 लाख निवास स्थानों (Habitation) को दूषित पानी पर निर्भर रहना पड़ता है। जिसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य सम्बंधी कई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

विश्व विकास सूचकों (2008) के अनुसार 2004 में भारत की 86 प्रतिशत जनसंख्या को उन्नत पानी का स्रोत उपलब्ध होना चाहिए।

पानी से होने वाली बहुत-सी बीमारियों के लिए सफाई का अभाव सीधा जिम्मेदार है। 1980 के दशक में ग्रामीण सफाई केवल 1 प्रतिशत थी। केन्द्र द्वारा आरम्भ किए गए सफाई प्रोग्राम के फलस्वरूप यह 1998 में 4 प्रतिशत और 2001 में 22 प्रतिशत तक पहुँच गयी। यह विश्वास किया जाता है कि जब तक यह 100 प्रतिशत तक नहीं पहुँच जाती, ग्रामीण स्वास्थ्य सूचकों में महत्वपूर्ण गिरावट नहीं होगी। इसलिए ग्रामीण सफाई का भारी प्रोग्राम आरम्भ करना होगा ताकि 100 प्रतिशत ग्रामीण सफाई का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। इस सम्बंध में राष्ट्रीय ग्राम स्वास्थ्य मिशन के आधीन स्थापित ग्राम और स्वास्थ्य सफाई समितियाँ महत्वपूर्ण सहायता उपलब्ध करा सकती हैं।

विश्व बैंक के अनुसार 2004 में भारत की जनसंख्या के 33 प्रतिशत की उन्नत सफाई सुविधाओं तक पहुँच है, जबकि 1990 में यह आंकड़ा केवल 14 प्रतिशत था। तुलना के रूप में, यह आंकड़ा मलेशिया के लिए 94 प्रतिशत फिलिपीन्स के लिए 74 प्रतिशत पाकिस्तान के लिए 59 प्रतिशत और इंडोनेशिया के लिए 55 प्रतिशत था। बहुत से विकासशील देशों का सफाई के बारे में रिकार्ड भारत से कहीं बेहतर है। इस सम्बंध में लगातार प्रयास करने की आवश्यकता है।

भारत की जनसंख्या का कुल मिलाकर स्वास्थ्य स्तर

चाहे भारत ने एक भारी आधारसंरचना कायम कर ली है जिसमें 1.45 उपकेन्द्र, 22,670 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और 3,910 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र हैं, परन्तु स्टाफ की कमी और निदान-उपकरणों की अपर्याप्तता के कारण, ग्राम जनसंख्या को अपने इलाज के लिए शहरों और महानगरों के अस्पतालों का प्रयोग करना पड़ता है।

हाल ही के वर्षों में, सार्वजनिक अस्पतालों के विरुद्ध निजी अस्पताल तेजी से बढ़ते जा रहे हैं और 2004-05 में, लगभग 58 प्रतिशत रोगियों ने ग्राम क्षेत्रों में निजी अस्पतालों का प्रयोग किया और शहरी क्षेत्रों में यह आंकड़ा 62 प्रतिशत था। इसके बावजूद कि निजी अस्पतालों में ऊँचा व्यय करना पड़ता है, सार्वजनिक अस्पतालों की अपेक्षा लगभग 3 गुना लोग निजी अस्पतालों को तरजीह देते हैं।

राष्ट्रीय ग्राम स्वास्थ्य मिशन और राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन स्वास्थ्य सुविधाओं की गरीबों को उपलब्धि के लिए दो मुख्य प्रोग्राम हैं।

द्वितीयक एवं तृतीय स्वास्थ्य देखभाल (Secondary and tertiary healthcare) में, सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों कार्यरत हैं, परन्तु प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं के अभाव के परिणामस्वरूप, विशेषकर ग्राम क्षेत्रों में, स्वास्थ्य प्रणाली पर अत्यधिक बोझ पड़ रहा है।

कुल परिवार व्यय में स्वास्थ्य के लिए व्यय शहरी क्षेत्रों में 6.1 प्रतिशत है और ग्राम क्षेत्रों में 4.9 प्रतिशत है, इसमें से औषधियों पर व्यय ग्राम क्षेत्रों में 77 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 69 प्रतिशत है। इसका गरीबों पर सबसे अधिक दुष्प्रभाव पड़ता है क्योंकि वे बार-बार बीमारियों में ग्रस्त हो जाते हैं और स्वास्थ्य सेवाओं और औषधियों के खरीदने और इनका प्रयोग करने की सबसे कम सामर्थ्य रखते हैं। जरूरत इस बात की है कि ऐसी प्रक्रियाएँ स्थापित की जाएँ कि अनिवार्य औषधियाँ सामर्थ्य-योग्य कीमतों (Affordable prices) पर उपलब्ध करायी जाएँ।

ग्यारहवीं योजना बड़े जोश से सार्वजनिक-निजी साझेदारी की सिफारिश करती है परन्तु अनुभव यह बताता है कि निजी क्षेत्र जिसकी आँख लाभ कमाने पर लगी रहती है, गरीबों की समस्याओं का उपचार नहीं कर सकता, इसमें अपवाद के रूप में निजी क्षेत्र के वे प्रयोग हैं जो धर्मार्थ और सामाजिक उद्देश्य से प्रेरित हैं।

पर्यावरण जैविक तथा अवैजिक तत्वों का समूह है। ये तत्व परस्पर अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। पर्यावरण इन तत्वों को एक निश्चित प्रक्रिया द्वारा संचालित होता है। पर्यावरण सन्तुलन के लिए इन सभी तत्वों का एक निश्चित अनुपात में होना आवश्यक है। जब प्राकृतिक या मानवीय कारणों से किसी भी तत्व के अनुपात या गुणवत्ता में परिवर्तन आता है, या इस स्वचालित तन्त्र में बाधा उत्पन्न होती है तो पर्यावरण का ह्रास होने लगता है। प्रकृति की स्वनिष्पामक व्यवस्था एक सीमा तक तो इस परिवर्तन की क्षतिपूर्ति कर लेती है, किन्तु जब मानवीय हस्तक्षेप अधिक होने लगता है तो पर्यावरण ह्रास होता है अर्थात् पर्यावरण का ह्रास मानव द्वारा शत्रुतापूर्ण व्यवहार करने पर ही होता है। जब पर्यावरण के तत्व अपने प्राकृतिक या मौलिक गुणों के विपरीत प्रभाव डालने लगते हैं, तो पृथ्वी पर समस्त जीवधाराओं का जीवन संकटमय हो जाता है। पर्यावरण की इसी परिवर्तित स्थिति को पर्यावरण ह्रास कहा जाता है। पर्यावरण ह्रास के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। इनमें पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों का अभाव, ओजोन क्षरण, भूमण्डलीय ताप में वृद्धि, जलवायु परिवर्तन आदि प्रमुख हैं।

पर्यावरण ह्रास से अभिप्राय किसी क्षेत्र में पर्यावरण विनाश की ऐसी प्रक्रिया से है, जिसमें मौलिक वातावरण के एक या अधिक तत्वों की मौलिक प्रवृत्ति या गुणवत्ता में ह्रास हो जाता है अर्थात् पर्यावरण के तत्वों में विकृति उत्पन्न हो जाती है। मानव एवं पर्यावरण के सह-सम्बन्धों में आए असन्तुलन के कारण ही विभिन्न पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। मानव ने अपनी विभिन्न आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए पर्यावरण सन्तुलन को अव्यवस्थित किया है। इस प्रकार मानव द्वारा पर्यावरण पर किए गए अवाञ्छनीय एवं अदृश्यमान पूर्ण अतिक्रमण से ही पर्यावरण ह्रास हुआ है।

(Meaning of Environmental Degradation)

3.21 पर्यावरण ह्रास का अर्थ व प्रक्रिया

जून 28, 2008)। यही स्वास्थ्य एजेंडा के रूप में मुख्य चुनौती है जिससे गरीबों की सहायता हो सकती है। स्वास्थ्य सेवाओं की बढ़ती हुई मांगों ने इसमें मुख्य कार्यभार निम्ना है।" (इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल बीकली, के भी मुख्य प्रयोगकर्ता बन गए हैं। औषधियों की कीमतों में वृद्धि और निजी एवं सार्वजनिक अस्पतालों में विभिन्न के संस्थानों के प्रयोग में भी अन्तर बढ़ गए हैं। अमीर अब न केवल निजी अस्पतालों, परन्तु सार्वजनिक अस्पतालों और स्वास्थ्य सेवाओं पर व्यय के रूप में खर्च और बढ़ गयी है। इसी प्रकार सार्वजनिक और निजी स्वास्थ्य देखभाल जाने वाली असमानता की स्थिति और बिगड़ गयी है और अमीरों तथा गरीबों के बीच बिन-इलाज किए बीमारियों का अन्तर बढ़ गया है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आंकड़ों का गहन विश्लेषण करने से पता चलता है कि गरीबों में बिन-इलाज निकालते हैं: राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आंकड़ों के कारण स्पष्ट वृद्धि हुई है। परिवार उपायों के द्वारा मापी जाए बीमारियों में विनाश सीमाबन्धनों के कारण स्पष्ट वृद्धि हुई है। परिवार उपायों के आंकड़ों के द्वारा मापी जाने वाली असमानता की स्थिति और बिगड़ गयी है और अमीरों तथा गरीबों के बीच बिन-इलाज किए बीमारियों का अन्तर बढ़ गया है।

इस बात की भी आवश्यकता है कि पीने का साफ पानी और सफाई उपलब्ध कराया जाए, विशेषकर गंदी सामाजिक न्याय के उद्देश्य अधिक प्रभावी रूप में पूरे किए जा सकें।

बात की आवश्यकता है कि इसे पारदर्शी योजना द्वारा निर्धारित लक्ष्य 2.3 प्रतिशत के स्तर पर ले जाया जाए ताकि कम होकर 2003-04 में 0.99 प्रतिशत हो गया। किन्तु यह 2006-07 में उन्ना होकर 1.13 प्रतिशत हो गया। इस केन्द्र और राज्य सरकारों का स्वास्थ्य पर संयुक्त व्यय जो 1992-93 में जी.डी.पी. का 1.01 प्रतिशत था, में तीव्र वृद्धि होती है।

गरीबों के जाल में गिरने से बचाया जा सके क्योंकि लम्बी बीमारी के परिणामस्वरूप आय गिर जाती है परन्तु व्यय जाए ताकि समाज के सबसे कमजोर वर्गों को बीमारी के रूप में विश्वस्त लाभ उपलब्ध कराए जा सके और उन्हें इस बात की जरूरत है कि स्वास्थ्य बीमा का विस्तार असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों तक किया जाए ताकि समाज के सबसे कमजोर वर्गों को बीमारी के रूप में विश्वस्त लाभ उपलब्ध कराए जा सके और उन्हें

नीचे

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

लिए पर्यावरण का अनियंत्रित शोषण करने लगा।

मिथवत सम्बन्धों के स्थान पर शक्तिपूर्ण व्यवहार करने लगा। वह विकास की दृष्टि में तथा तात्कालिक लाभों के सुख-सुविधाएं जुटाने के लिए मानव ने प्रकृति का अविचलकपूर्ण ढंग से दोहन प्रारम्भ कर दिया। मानव प्रकृति के साथ उपयोगवादी या शैतिकवादी संस्कृति की देन है। परिवर्तन की भागवती संस्कृति के प्रभाव में अधिकाधिक (1) उपयोगवादी संस्कृति-वर्तमान काल में उपस्थित पर्यावरण संकट या पर्यावरण ह्रास मानव की

खन, ऊर्जा का अधिक उपयोग आदि सम्मिलित है-

का विनाश, कृषि व पर्यावरण, अधिक सिंचाई, जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, बड़े बांधों का निर्माण, मानव ही सर्वाधिक उत्तरदायी है। मानव की इन क्रियाओं में उपयोगवादी दर्शन या संस्कृति, वन विनाश, वन्य जीवों है। मानवीय क्रियाकलापों से अनेक प्राकृतिक प्रकाशों की प्रभावशीलता भी बढ़ी है। आज पर्यावरण ह्रास के लिए मानव अपनी शैतिक सुविधाओं व प्रगति के लिए अनेक ऐसे कार्य कर रहा है, जो पर्यावरण ह्रास के मुख्य कारण नियंत्रित करना मानव के बस की बात नहीं है। किन्तु मानवीय क्रियाकलापों का प्रभाव व्यापक स्तर पर होता है। (B) मानवीय कारक-पर्यावरण ह्रास के प्राकृतिक कारकों का प्रभाव सीमित स्तर पर होता है तथा इन्हें

है, जलवायु परिवर्तन होता है, मत्स्यवलीकरण होता है तथा जन-धन की अपार हानि होती है। इसके कारण जीवजगत संकट में पड़ जाता है, पर्यावरण प्रदूषित होता है, मृदा की उर्वरता समाप्त होती का सम्बन्ध प्रकृति से अधिक है, किन्तु कुछ प्रकाशों में मानवीय क्रियाकलापों की भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सक्त है। मानव ही प्रकृति के अनेक कारक हैं, किन्तु वर्तमान में इनकी भारभारता, प्रभाव, विस्तार और सघनता में वृद्धि हुई है। यद्यपि इन प्रकाशों सन्तुलन में व्यवधान आने से इस प्रकार की क्रियाएं होती हैं। इन प्राकृतिक प्रकाशों का सिखलित अनादिकाल से क्रियाओं में सूखा, बाढ़, भूकम्प, ज्वालामुखी, भूस्खलन, मृदा अपरदन, मत्स्यवलीकरण आदि सम्मिलित हैं। प्राकृतिक (A) प्राकृतिक कारक-प्रकृति की अनेक क्रियाएं पर्यावरण ह्रास का कारण बनती हैं। प्रकृति की इन

दृष्टि से इनका विधाजन किया जाता है-

एक-दूसरे की प्रभावित करते हैं। अनेक दशाओं में पर्यावरण ह्रास के लिए दोनों ही योग देते हैं। मात्र अध्ययन की का प्रभाव व्यापक स्तर पर होता है। प्राकृतिक तथा मानवीय क्रियाकलाप परस्पर अन्तर्सम्बन्धित होते हैं तथा सीमित स्तर पर होता है तथा प्रकृति स्वयं ही इसे धीरे-धीरे समायोजित कर लेती है। दूसरी ओर मानवीय क्रियाकलापों पर्यावरण ह्रास की कारणों से होता है-प्राकृतिक एवं मानवीय क्रियाकलाप। प्राकृतिक कारणों का प्रभाव

पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी ह्रास के कारण

कारण बनते हैं।

इस प्रकार पर्यावरण ह्रास के लिए उत्तरदायी कारक ही पारिस्थितिकी असन्तुलन व पारिस्थितिकी संकट का

परिवर्तन होता है, इससे सूखा का प्रकाप बढ़ेगा, मृदा अपरदन व मत्स्यवलीकरण का विस्तार होगा।

बनता है। इससे समस्त जीवधाराओं का जीवन खतरे में पड़ जाता है। उदाहरणार्थ, वनों की कटाई से जलवायु में पर्यावरण के अन्य घटकों का सन्तुलन बिगड़ जाता है। यह पारिस्थितिक असन्तुलन पारिस्थितिकी संकट का कारण किसी एक घटक की मात्रा में उसके मौलिक अनुपात से अधिक कमी या वृद्धि हो जाती है, तो इसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी असन्तुलन का परिणाम होता है। मानवीय या अन्य कारणों से जब प्राकृतिक पर्यावरण या प्रकृति के इस प्रकार जल, वायु या मृदा के ह्रास प्रदूषण से अन्ततः पारिस्थितिकी संकट उत्पन्न होता है। पारिस्थितिकी संकट प्रभावित मछलियों की भोजन के रूप में प्रयुक्त करने वाले जन्तुओं व मनुष्यों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। में पड़ते जाते हैं। जलवायु के पारिस्थितिक तन्त्र के समस्त जैविक घटक इससे प्रभावित होते हैं। प्रदूषित जल से कौटों के साथ ही अन्य जीव-जन्तु भी नष्ट हो जाते हैं। मृदा में घुलित ये कीटनाशक वर्षा जल के साथ जलवायु जीवधाराओं के लिए संकट का कारण बनती है। उदाहरण के लिए कृषि में कीटनाशकों के प्रयोग से हानिकारक पर्यावरण ह्रास का सीधा प्रभाव पारिस्थितिकी पर पड़ता है। पर्यावरण के प्रति अवमानना पूर्वी के समस्त

21

परिहासिक परिग्रह्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतियां उद्दिक्तास

(5) पशुपालन-पशुचरण द्वारा के लिए अत्याधिक पशुचरण भी उत्तरदायी कारक है। मानव प्रारम्भ से ही दूध, मांस, खाल, ऊन आदि पदार्थों तथा कृषि व परिवहन के लिए पशु-पालन क्षेत्र में निरन्तर विकास से अनेक वन क्षेत्र बरगोहा में बदल दिए गए हैं। सघन वनों के सीमावर्ती भागों में बरगोहों का विस्तार हो रहा है। उत्तरी अमेरिका व दक्षिणी अमेरिका में बड़े पैमाने पर वनों को काटकर बरगोहा विकसित किए गए हैं। टर्की,

मूवा अपरदन की प्रक्रिया तीव्र हुई है। आदिम क्षेत्रों में स्थानान्तरणशील कृषि, पहाड़ी ढालों पर कृषि तथा मकसूल में रेत के स्थायी टिब्बों पर कृषि से व सौजियों का स्वाभाविक स्वरा नष्ट हो गया। मूवा में वैश्विक अंशों की कमी होने से उसकी गुणवत्ता नष्ट हुई। असन्तुलन उत्पन्न हुआ। रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के अतिक्रमिक प्रयोग से मूवा प्रदूषित हो गईं। फलों लक्ष्य खद्यान में वृद्धि को भी प्राप्त कर लिया गया किन्तु इससे पशुचरण द्वारा हुआ। वन विनाश के कारण पशुचरण सघन कृषि तथा कृषि क्षेत्र विस्तार से अनेक पशुचरणीय समस्त्याएँ उत्पन्न हो गईं। हरित क्रान्ति के अभीष्ट मूवा के विस्तार को कई गुना बढ़ा दिया है।

प्राप्त करने के प्रयास किए गए। आधुनिक काल में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि दर तथा उन्नत यंत्रों के प्रयोग ने कृषि साफ करके कृषि मूवा का विस्तार किया गया। दुर्गम पहाड़ी ढालों से लेकर समुद्री तलवर्ती मूवियों तक कृषि मूवा ही मूवाका रही है। बर्हती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए प्राकृतिक घास स्थलों व वनों को (4) कृषि-पशुचरण द्वारा में कृषि क्षेत्र के विस्तार तथा कृत्रिम साधनों से गहन कृषि उत्पान दोनों की

बोमारिया तथा बाढ़, सूखा, सूकान वैसी प्राकृतिक आपदाएँ सम्मिलित हैं। औद्योगिकीकरण, प्रदूषण, नदी घाटी योजनाएँ, खनन, अवैध शिकार, वन क्षेत्रों में बढ़ती मानवीय हस्तक्षेप, दवागिन, है। वन जीवों के विनाश के मुख्य कारणों में प्राणियों के घास स्थलों अथवा वनों का विनाश, कृषि क्षेत्र में वृद्धि, डर है, उनमें गैला, साइबेरियन टाइगर, एशियाई चीता, लाल भैंडिया, पर्वतीय गोरिल्ला, मीर, बारहसिंहा आदि प्रमुख अनुसर भारत में 137 वन्य जीव विज्ञानशील या संकटग्रस्त अवस्था में हैं। वे जातियाँ जिनके गुन विद्युत होने का किन्तु यहाँ भी वन्य प्राणियों की अनेक जातियाँ निरन्तर घटती जा रही हैं। राष्ट्रीय प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय के विभिन्न पशुचरणीय परिस्थितियों के कारण भारत के वन्य जीवों में भी अत्याधिक विविधता पाई जाती है।

को बनाए रखने में अपना महत्व है। जातिवैधियाँ पारिस्थितिक तन्त्र को नियमित बनाए रखती हैं। अतः सभी प्रकार के जीव-जन्तुओं का प्राकृतिक सन्तुलन को खोकर पीधों की रक्षा करते हैं। विभिन्न प्राणी पीधों के प्रकीर्णन में सहयोग करते हैं। वन्य प्राणियों की विभिन्न प्राणी व मानव में गहन सम्बन्ध होता है। अनेक कोड़े-मकोड़े फर्पुवों को खाकर तथा पक्षी हानिकारक कोड़े-मकोड़ों है। वन्य जीवों का विनाश भी पशुचरण द्वारा का एक कारण है। खाद्य भूखला तथा ऊर्जा प्रवाह के द्वारा वनस्पति, महत्व है। यदि प्राणियों को कोई भी जाति संकटग्रस्त होती है, तो इसका प्रभाव वैश्व जगत के सभी घटक पर पड़ता (3) प्राणी समृद्धता का विनाश-वनस्पति के समान ही प्राणियों का भी पारिस्थितिक तन्त्र में अत्याधिक

के कुमार्थ-गढ़वाल मण्डलों में 1995 में लग्नी आग से 8,000 वर्ग किमी क्षेत्र में फैले वन नष्ट हो गए। होती है। वनों में लगने वाली आग से भी छोटी-बड़ी सभी प्रकार की वनस्पति नष्ट हो जाती है। उदाहरणार्थ, भारत सम्मिलित है। इनके अलावा सूखा, बाढ़, ज्वालामुखी, चक्रवात आदि प्राकृतिक आपदाओं के कारण भी वनों की हानि वन विनाश के प्रमुख कारणों में जनसंख्या वृद्धि, पशुपालन, औद्योगिकीकरण, खनन व बड़े बांधों का निर्माण प्राप्त होते हैं। वास्तव में वन सम्पूर्ण विषय के पशुचरण को नियंत्रित करते हैं।

रहती है, मूवा संरक्षण होता है, मूवा संरक्षण होता है, अनेक जीव-जन्तु निवास करते हैं तथा विविध वनोद्योग से पारिस्थितिक तन्त्र के संचालन के आधार हैं। सभी प्राणियों को ऑक्सीजन की प्राप्ति होती है, जलवायु व्यवस्थित धरातल पर वन क्षेत्र घटने लगा। वन मात्र प्राकृतिक संसाधन ही नहीं है, अपितु जीवमण्डल के आधारभूत तत्व है। स्थायी कृषि के साथ ही वनों की कटाई प्रारम्भ हुई। जनसंख्या तथा मानव की आवश्यकताओं में वृद्धि के कारण पर वनों का अत्याधिक विस्तार था। मानव की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति वनों से ही होती थी। पशुचरण तथा क्षेत्र में कमी होने को वन विनाश कहा जाता है। वह विनाश पशुचरण द्वारा का प्रमुख कारण है। आदिमकाल में पृथ्वी (2) वन विनाश-वन हमारे पशुचरण के महत्वपूर्ण घटक हैं। वृक्षों की कटाई तथा अन्य कारणों से वन

नीति
 पर्यावरणिक परिप्रेक्ष्य में भारत
 में सामाजिक नीति का
 नीतिगत उद्देश्य

गति से दोहन होने लगता है। बढ़ते औद्योगिकीकरण से लोगों का जीवन स्तर तो बढ़ा किन्तु प्यावरण को अत्यधिक हानि में उद्योगों की स्थापना बढ़े पैमाने पर हुई। उद्योगों में कच्चे माल की आपूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र देशों में प्यावरण ह्रास हो रहा है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् पहले यूरोप में तथा बाद में विश्व के अन्य भागों में प्यावरण ह्रास हो रहा है। औद्योगिकीकरण-बढ़ते औद्योगिकीकरण के दुष्प्रभावों के कारण विकसित एवं विकासशील सभी एकत्रीकरण जल सफाई, जन सुविधाओं पर दबाव आदि अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

बढ़ते नगरीकरण के कारण कृषि भूमि पर अतिक्रमण, प्रदूषण, गन्दी बस्तियाँ, अव्यवस्थित कूड़ा-कचरा का तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों की ओर जनसंख्या का तीव्र प्रवाह होने लगा। प्यावरण ह्रास की प्रभावित किया है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् विश्व में नगरीकरण की गति तीव्र हो गई। राजगार (8) नगरीकरण-नगरीकरण एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है। नगरीकरण से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं ने

आपदाओं की आवृत्ति बढ़ी है। जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न हुई है। प्राकृतिक संसाधनों के अस्थापत्य दोहन से अकाल, बाढ़ इत्यादि प्राकृतिक प्रति व्यक्त उपलब्धता निरन्तर घटती जा रही है। कुपाषाण, मृदुषण, बेकारी, गरीबी, गरीबी, आवास की कमी आदि समस्याएँ हैं। जनसंख्या वृद्धि दर 1.91 प्रतिशत है। जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि, खनिज, जल आदि प्राकृतिक संसाधनों की वृद्धि दर पर जनसंख्या वृद्धि की दर 1.57 प्रतिशत है जबकि विकासशील देशों में 1.88 प्रतिशत है। भारत में ही विश्व का एक और भयावह पक्ष यह है कि अधिकांश वृद्धि आर्थिक रूप से पिछड़े देशों में ही की गई है। प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता जा रहा है।

जनसंख्या मात्र 12 वर्ष में बढ़ी। इतनी तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के भोजन, आवास तथा अन्य आवश्यकताओं का 13 वर्ष लगे। 2000 के अन्त तक विश्व की जनसंख्या 6 अरब से अधिक हो गयी अर्थात् अन्तम 100 करोड़ 1960 में विश्व की जनसंख्या 300 करोड़ हो गई। अगले सौ करोड़ तक पहुँचने में मात्र 14 वर्ष लगे तथा इसके 100 करोड़ थीं जो 123 वर्ष बाद 200 करोड़ हो गई। अगले सौ करोड़ तक पहुँचने में 33 वर्ष लगे। इस प्रकार 100 करोड़ तक पहुँचने में अनेक सदियों लगे। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विश्व की जनसंख्या लगभग (7) जनसंख्या वृद्धि-प्यावरण ह्रास का मूल कारण जनसंख्या वृद्धि है। विश्व की जनसंख्या की प्रथम

इस प्रकार दोषपूर्ण सिद्धाई प्रणाली व अत्यधिक जल दोहन कुछ क्षेत्रों में प्यावरण ह्रास के कारण है। भूमिगत जल की अत्यधिक कमी वाले बड़े बड़े भागों को भूजल विभाग द्वारा 'ड्राई जॉन' घोषित किया गया है। में अधिक जल की आवश्यकता वाली कृषि पद्धतियों के कारण जल सफाई और भी तीव्र हुआ है। राजस्थान में प्यावरणमत्स्वकृषि क्षेत्र में तो वृद्धि हुई है किन्तु भूमिगत जल स्तर तीव्र गति से घटने लगा। कम वर्षा वाले क्षेत्रों सिंचाई के लिए सतही जल के अलावा भूमिगत जल का दोहन भी बढ़े पैमाने पर किया जाने लगा है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के नदरी क्षेत्रों में भी मृदा की कमी में वृद्धि से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। व सामाजिक किण्व प्रभावित होती है तथा स्थानीय प्राकृतिक वनस्पति नष्ट होने लगी है। पृजाब, हरियाणा, व मर जाता है तथा आस-पास की भूमि दलदली व क्षारीय हो जाती है। भूमि ऊसर होने लगी है। इससे सभी आर्थिक समस्या बन गई है। जिसे स्थानीय रूप से 'सेम' की समस्या कहा जाता है। सेमस्त क्षेत्रों में निचले स्थानों पर पानी उत्पन्न हो गई। उदाहरणार्थ, राजस्थान नहर क्षेत्र में अत्यधिक सिंचाई के कारण जलजलावन या जलाकालता प्रमुख हुई। किन्तु सिंचित क्षेत्रों में जल प्रवाहन के अभाव से लवणीकरण, क्षारीयता व जलजलावन जैसी अनेक समस्याएँ विकास। बांध बनाकर तथा नदियों से नहरें निकालकर सिंचाई करने से कृषि क्षेत्र व कृषि उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि (6) सिंचाई व्यवस्था-कृषि कर्मियों के लिए नियमित जलापूर्ति हेतु मानव ने सिंचाई के साधनों का विकास

बढ़ता जा रहा है। प्रमुख समस्या है। पशुओं की बढ़ती हुई संख्या के लिए अधिक चारा व जल प्राप्त करने हेतु प्यावरण पर दबाव जनसंख्या वृद्धि की समस्या से जुड़ते भारत जैसे विकासशील देशों में बढ़ती हुई पशुओं की संख्या एक अन्य

नष्ट हुई है तथा मृदा अपरदन बढ़ा है। यूनान, पश्चिमी एशिया, अफ्रीकी तट, भारत के हिमालय क्षेत्र व दक्षिणी पठार पर अतिजलन पशुचारण से वनस्पति

मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
 459 गांवों का विस्थापन होगा। अतः बड़े बांधों के निर्माण से पूर्व इनसे होने वाले पर्यावरण हानि का भी विचार
 482 हेक्टेयर में 54,066 हेक्टेयर वन क्षेत्र तथा 55,681 हेक्टेयर कृषि भूमि सम्मिलित है। दोनों बांधों के कारण कुल
 विस्थापन होगा। इसी प्रकार नर्मदा घाटी के दो बड़े बांधों नर्मदा सीवर व नर्मदा सागर के कुल दूब क्षेत्र 13 लाख
 1,600 हेक्टेयर कृषि भूमि है। कुल 122 गांव तथा टिहरी कस्बा दूब क्षेत्र में आने से लगभग 1 लाख लोगों का
 है। टिहरी बांध परियोजना से कुल 37,600 हेक्टेयर क्षेत्र जल लगीवत होगा, जिसमें 36,000 हेक्टेयर वन क्षेत्र तथा
 बड़े बांधों से होने वाले पर्यावरण हानि को टिहरी व नर्मदा सागर बांधों के उदाहरणों से समझा जा सकता
 है।

पर निकटवर्ती क्षेत्र की जलवायु दशाओं में परिवर्तन के सम्बन्ध पर परिस्थितिक तन् में ही विचारित आ जाती है।
 बांध के स्थिर जल से अनेक बीमारियों का फैलाव, प्राकृतिक वनस्पति में परिवर्तन, इत्यादि प्रमुख है। बांध बन जाने
 जल प्लावन, नहरी सिंचाई से मृदा में क्षारीयता व अल्कीयता बढ़ना, बांध के टूटने पर व्यापक विनाश की आशंका,
 प्राणियों के जीवन पर संकट, जल दाब से भूकम्प की आशंका, गाद धराव से उपजाऊ मिट्टी मैदानों में नहीं पहुँचना,
 में आने वाली जनसंख्या का विस्थापन व पुनर्वास, उपजाऊ कृषि भूमि, वन तथा चरागाहों का जलमन होना, वन्य
 तथा सामाजिक संसाधनों में इनका तीव्र विरोध प्रारम्भ किया। बड़े बांधों के निर्माण से उत्पन्न समस्याओं में दूब क्षेत्र
 इनसे अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ भी उत्पन्न हो गई हैं। पर्यावरण पर इनके दुष्प्रभावों को देखते हुए पर्यावरणविद्
 निर्माण किया जाता है। निम्न-देह बड़े बांधों के निर्माण से आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति प्राप्त हुई है, किन्तु
 (11) बड़े बांधों का निर्माण-सिंचाई, विद्युत इत्यादि विभिन्न उद्देश्यों के लिए नदियों पर बड़े बांधों का

प्रभावित होते हैं। इस प्रकार अनियोजित एवं अनियोजित खनन भी पर्यावरण हानि के लिए उत्तरदायी है।
 होती है। खनन गतिविधियों के कारण निकटवर्ती वनों में निवास करने वाले प्राणियों के प्राकृतिक क्रियाकलाप भी
 नियन्त्रण करना कठिन होता है, अतः इससे निकलने वाले धूल व तापमान में वृद्धि से पर्यावरण की अत्यधिक हानि
 वाली विषैली गैसों से जनहानि की अनेक दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। कोयला क्षेत्रों में लगने वाले भूमिगत आय पर
 करने वाले खनिजों का जीवन असुरक्षित होता है। भूमि धसकने से होने वाली खनन दुर्घटनाओं तथा खानों से निकलने
 जल स्तर बहुत नीचे चले जाने से निकटवर्ती क्षेत्रों में जलसंकट उत्पन्न हो जाता है। अधिक गहरी खदानों में काम
 होता है। खनन की विभिन्न विधियों में 'खुला खनन' से पर्यावरण को सर्वाधिक हानि होती है। खनन क्षेत्रों में भूमिगत
 में किए जाने वाले विस्फोटों से भूस्खलन में वृद्धि होती है। उत्खनन से निकलने वाले धूल-कणों से पर्यावरण प्रदूषित
 वह भूमि सदा के लिए बंजर हो जाती है। खनन के लिए भूमि की ऊपरी परत हटाने से मृदा अपरदन बढ़ता है। खानों
 वन क्षेत्रों में खनन से वनों का विनाश हो रहा है। खनन स्थलों पर बने विखाल गाँवों तथा मलबे के ढेर से

खनिजों के मण्डार समाप्त हो जायें।
 है। पर्याप्तमस्त्ररूप खनिज मण्डार तैजों से घटने जा रहे हैं। इसी गति से खनन होता रहा तो 21वीं शताब्दी में अनेक
 लगा। आधुनिक काल में उन्नत स्वचालित मशीनों से किए जाने वाले उत्खनन से खनिज निकालने की गति तीव्र हुई
 कालि के बाद उद्योगों में कच्चे माल तथा शक्ति संसाधनों की पूर्ति के लिए बड़े पैमाने पर खनिजों का दोहन होने
 (10) खनन-खनिजों के उत्खनन के कारण भी अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। औद्योगिक

है। उद्योगों का अनियोजित विकास आज पर्यावरण हानि का प्रमुख कारण बन गया है।
 मात्रा बढ़ रही है। इससे वायुमण्डलीय तापमान की वृद्धि हो रही है तथा अनेक जीवों के लिए संकट उत्पन्न हो गया
 बढ़ती दर के कारण एक ओर ऊर्जा संकट उत्पन्न हो रहा है, तो दूसरी ओर वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की
 पर्यावरण की उद्देश्यता करते हुए अनेक उद्योगों की स्थापना की गई है। औद्योगिक राष्ट्रों द्वारा प्रयुक्त ऊर्जा संधनों की
 कारण पर्यावरणीय समस्याएँ और बढ़ी हैं। उद्योगों के दूर में बहुदूरस्थ कम्पनियों द्वारा विकासशील देशों में
 विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को उन्नत तकनीक उपलब्ध नहीं कराने से दीर्घम दूरों की मशीनों के

मात्रा में घटने की कटौत से वन क्षेत्र निरन्तर घिसतते जा रहे हैं।
 नारीकरण आदि समस्याएँ उत्पन्न हुईं। कागज रेषन, प्लास्टिक आदि उद्योगों में कच्चे माल की आपूर्ति के लिए बड़े
 हुईं। औद्योगिकीकरण से वनों का विनाश, उद्योगों से निकलने वाले हानिकारक पदार्थों से प्रदूषण, जल संकट, अति

गतिशील होता है, जैसे-कार, मोटर, स्कूटर, मोटर साइकिल, बस, हवाई जहाज आदि सब इसे चलायमान बहन (b) चलायमान बहन स्रोत (Mobile Combustion Sources)—जल बहन स्रोत, चलायमान या

है, इसलिए इसे कैसरजन (Carcinogen) कहा जाता है।
 अनेक प्रदूषक उत्पन्न करते हैं, जो गैसीय या कणिकायुक्त होते हैं। कणिकायुक्त प्रदूषक, कैसर रोग उत्पन्न करते हैं, जो प्रजनन में अवरोध पैदा करती हैं। खनिज के सल्फाइड्स के बहन से घात निकलता है। अधजले हाइड्रोकार्बन मत्स्य प्रजनन रोक जाता है, झीलों तथा तालाब में जीवन कठिनाई पूर्ण हो जाता है। CO बहुत अधिक विषैली गैस (rain) भी कहते हैं। अम्ल वर्षा से पौधों को क्षति होती है। मृदा निक्षालन द्वारा मृदा से पोषण तत्व निकल जाते हैं, acid का निर्माण करते हैं। वर्षा जल के साथ ये अम्ल भी पृथ्वी पर आ जाते हैं, इसलिए इसे अम्ल वर्षा (acid गन्धक या तेजाब (sulphuric acid) या सल्फ्यूरस अम्ल (sulphuric acid) तथा नाइट्रिक अम्ल (nitric कार्बन मोनोऑक्साइड (CO), आदि बनते हैं। इनमें से SO₂, SO₃, NO, वातावरणीय जल के साथ क्रिया करके (SO₂), सल्फर ट्राइऑक्साइड (SO₃), नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO), नाइट्रोजन ट्राइऑक्साइड (NO₂), तथा नाइट्रोजन से बनता है। जीवाणु भी बहन के बहन से ऑक्साइड्स (oxides) जैसे-सल्फर ट्राइऑक्साइड का यौगिक है तथा इसमें अदहनकरणीय खनिज, गन्धक तथा नाइट्रोजन भी होते हैं। पेट्रोलियम, हाइड्रोकार्बन, गन्धक पर जलाया जाए तो उसे अबल बहन कहते हैं। जीवाणु भी बहन मुल्यतया कोयला तथा पेट्रोलियम हैं। कोयला कार्बन (a) अबल बहन स्रोत (Stationary Combustion Sources)—घरि ईंधन को किसी विशेष स्थान

इसके तीन स्रोत हैं—(a) अबल बहन स्रोत, (b) चलायमान बहन स्रोत, (c) औद्योगिक स्रोत।

वायु प्रदूषण के स्रोत (Sources of Air Pollution)

आ जाता है, तब इसे वायु प्रदूषण (air pollution) कहते हैं।

जब प्रदूषक वायुमण्डल में उपस्थित होते हैं और वायुमण्डल के अवयवों की अनुकूलतम मात्रा से परिवर्तन

3.24 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

(iv). खनिज प्रदूषण, (v) विकिरण प्रदूषण।

प्रदूषण मुख्यतया निम्नलिखित प्रकार का है—(i) वायु प्रदूषण, (ii) जल प्रदूषण, (iii) मृदा प्रदूषण,

सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए हानिकारक हैं, प्रदूषण कहलाते हैं।”

अनवाह्य परिवर्तन जो मनुष्य एवं अन्य जीवधारियों, उनकी जीवन परिस्थितियाँ, औद्योगिक प्रक्रियाओं एवं “वायु, जल या भूमि (अर्थात् पर्यावरण) के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में होने वाले ऐसे

3.23 पर्यावरणीय प्रदूषण (Environmental Pollution)

परत को क्षति पहुँच रही है। आणविक विस्फोटों व धातुक वृक्षधारों से विषम पर्यावरण को सर्वाधिक खतरा है। मानव स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाने हैं। प्रशीतन उद्योग तथा वायुयानों द्वारा छोड़े जाने वाले धुँएँ से वायुमण्डल की ऊपरी का कचरा पर्यावरण को क्षति पहुँचा रहा है। इससे मानव स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। कम्प्यूटर के कचरे का निपटारा मानव के समक्ष एक चुनौती बन गया है। एबरेस्ट से लेकर समुद्र तटों तक फैला प्लास्टिक कचरा है, वहीं अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ भी उत्पन्न हो गई हैं। प्रकृति में अपघटन न होने के कारण प्लास्टिक अनेक संचित पदार्थ जैविक जीवन में प्रयुक्त किए जा रहे हैं। इनके प्रयोग से जहाँ प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव है। प्रौद्योगिकी विकास के परिणामस्वरूप प्लास्टिक, कृत्रिम रेशम, कृत्रिम रबर, कृत्रिम उर्वरक, कृत्रिम घास इत्यादि है। किन्तु नयी तकनीक से निर्मित विभिन्न उपयोगी सामग्री मानव स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर दुष्प्रभाव डाल रही है। प्रौद्योगिकी क्रांति कहा जाता है। इसका लाभ उद्योग, कृषि, परिवहन, चिकित्सा, आदि विभिन्न क्षेत्रों को प्राप्त हुआ

(12) प्रौद्योगिकी विकास-बीसवीं शताब्दी में मानव ने प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जो प्रगति की है उसे प्रौद्योगिकी क्रांति कहा जाता है। इसका लाभ उद्योग, कृषि, परिवहन, चिकित्सा, आदि विभिन्न क्षेत्रों को प्राप्त हुआ है। किन्तु नयी तकनीक से निर्मित विभिन्न उपयोगी सामग्री मानव स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर दुष्प्रभाव डाल रही है। प्रौद्योगिकी विकास-बीसवीं शताब्दी में मानव ने प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जो प्रगति की है उसे

नोट

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का निर्माण उर्वरकाम

नोट

स्रोत (mobile combustion sources) कहते हैं। बड़े शहरों में स्वचालित वाहन प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं। इन स्रोतों के मुख्य प्रदूषक (pollutants) हैं—कार्बन मोनोक्साइड (CO-77.2%), नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO-7.7%), तथा हाइड्रोकार्बन (Hydrocarbons-13.7%)। इसके अतिरिक्त पेट्रोलियम के दहन से अनेक कणिकीय लैड यौगिक (particulate lead particles), जैसे—टेट्राइथाइल लैड $Pb(C_2H_5)_4$ तथा टेट्रामीथाइल लैड $Pb(CH_3)_4$ उत्पादित होते हैं। इन यौगिकों से हीमोग्लोबिन (haemoglobin) का निर्माण रुक जाता है।

जब स्वचालित वाहनों से नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा हाइड्रोकार्बन निकलते हैं, तो ये पदार्थ सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में पारस्परिक क्रिया कर नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, ओजोन (O_3) और एक यौगिक पैराक्सिल-पेसीटाइल नाइट्रेट (Peroxyacety nitrate PAN) उत्पादित करते हैं। ओजोन, जन्तुओं के श्वसन तन्त्र को प्रभावित करती है तथा नेत्रों की कला को प्रभावित कर आंसू निकालती है। यह रबड़ के समान, कपड़ों आदि को भी हानि पहुंचाती है। PAN विशेषतया पौधों को हानि पहुंचाता है। (NO_2), O_3 तथा PAN सामूहिक रूप से प्रकाश-रासायनिक स्मॉग (photochemical smog) कहलाते हैं।

प्रदूषण फैलाने वाले वाहनों पर सरकारी प्रतिबन्ध/नीति की घोषणा

6 अक्टूबर, 2003 को केन्द्र सरकार ने घोषणा की है कि 11 शहरों में, 1 अप्रैल, 2005 से यूरो-III (Euro-III) नियम लागू किए जाएंगे। ये 11 शहर हैं—दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, बंगलौर, हैदराबाद, अहमदाबाद, पुणे, सूरत, कानपुर तथा आगरा।

दिल्ली में वाहन अभी यूरो-II का पालन करते हैं। 1 अप्रैल, 2010 से वाहनों को यूरो-IV के नियमों का पालन करना पड़ेगा। उस दिनांक (1.4.2010) तक देश के अन्य भागों में (इन 11 शहरों के अतिरिक्त) यूरो-III के नियम लागू होंगे।

दो पहिए तथा तीन पहिए वाले वाहनों के लिए 1-4-2005 से यूरो-II नियम लागू होंगे। उनके लिए यूरो-III नियम 1-4-2008 से वरीयतः (preferably) लागू होंगे, परन्तु अनिवार्यतः 1-4-2010 से तो अवश्य ही लागू हो जाएंगे।

1-4-2007 के बाद अन्तर्राष्ट्रीय बस/ट्रक को दिल्ली में नहीं रुकने दिया जाएगा यदि उनकी कम-से-कम क्षमता यूरो-I के नियमों के अनुकूल नहीं है। सभी वाहनों को अनिवार्यतः यूरो-II की क्षमता 1-4-2005 तक प्राप्त करनी होगी।

नवीन उत्सर्जक मानक (New Emission Norms)

सारणी 3.4 पैसेन्जर कारों के लिए (ग्राम/किलोमीटर में)

यूरो	I	II	III	IV
CO (कार्बन मोनो ऑक्साइड)	2.72	2.2	2.3	1.0
HC (हाइड्रोकार्बन)	0.97	0.5	0.20	0.1
NO (नाइट्रिक ऑक्साइड)			0.15	0.08

नोट— $HC + NO = 0.97$, यूरो-I में तथा 0.5 यूरो-II में।

आजकल अधिकांश पेट्रोल कारों के इंजन यूरो-III के अनुसार है, परन्तु कार ऐसी नहीं है।

(c) औद्योगिक स्रोत (Industrial Sources)—हमारे उद्योगधन्धों से भी वायु प्रदूषण होता है। उद्योगों से गैसों, जैसे—कार्बन मोनोआक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड आदि तथा कणिकीय (particulate) पदार्थ आदि निकल कर वायुमण्डल को प्रदूषित करते हैं। कार्बनिक पदार्थों को गरम करने से गैसों उत्पादित होती हैं। क्लोरीन तथा फ्लोरीन-युक्त क्लोरोफ्लोरोमीथेन (chlorofluoromethane) वातावरण में वायुमण्डल में मिल जाती है मशीनों के चलने से, पदार्थों को पीसने, कूटने आदि से, रंगने से तथा छेद करने से ठोस कण या कणिकीय पदार्थ वायुमण्डल में मिलते रहते हैं।

भी पाया गया।

(?) क्या कैल्शियम वंशों में होता है जहाँ वर्षा जल का pH 4.0-4.4 तक होता है कहीं-कहीं तो 2.8 तक।
 (??) आम्ल वर्षा से जलाशय तथा मृदा प्रदूषित होते हैं। अम्लीय वर्षा का कुप्रभाव सबसे अधिक उर्वरी अम्लिका (??) प्रकाश-रासायनिक स्थायी तथा अम्ल वर्षा, रबड़, कपड़ा, धातु, धवनों आदि पर प्रभाव डालती है।

वायु प्रदूषण का पदार्थों पर प्रभाव (Effect on Materials)

(???) फ्लूओरोसिस से धार में कमी होती है, दस्त लगा जाते हैं और लंगड़ापन हो जाता है।
 (Fluorosis) कहते हैं।
 (??) फ्लूओरोसिस द्वारा अस्थि तथा दाँत का अत्यधिक कैल्सीकरण होता है। इस रोग को फ्लूओरोसिस (??) नाक, कान, आँख की यंत्रिका क्षतिग्रस्त होती है।
 वायु प्रदूषण का जानवृत्तों पर भी बुरा प्रभाव होता है, जो कि मनुष्यों पर होता है—

वायु प्रदूषण का जानवृत्तों पर प्रभाव (Effect on Animals)

(v?) वायु प्रदूषण द्वारा पेड़ों पर लाइकेन (lichen) की वृद्धि में अवरोध हो जाता है।
 (v) प्रकाश-रासायनिक स्थायी पदार्थों का रंग उड़ जाता है।
 है तथा कलियाँ खिलने से पहले ही झड़ जाती हैं।
 (uv) हाइड्रोकार्बन (इथाइलीन) से पतियाँ समय से पहले ही गिर जाती हैं, और पुष्पों की पंखुड़ियाँ मूड़ जाती हैं।
 (???) गार्डोजन तथा फ्लूओरोसिस के ऑक्साइड्स फसल की उत्पादकता को कम करते हैं।
 (??) फ्लूओरोसिस, पत्तों के ऊतकों को क्षति पहुँचाते हैं।
 (??) सल्फर डाइऑक्साइड से वनों के पेड़ों पर क्षतिकारक प्रभाव होता है।

वायु प्रदूषण का पौधों पर प्रभाव (Effect on Plants)

(v) हाइड्रोकार्बन से कैसर होने की सम्भावना होती है।
 (uv) NO की अधिक मात्रा से फफुहों को क्षति होती है।
 परिवहन में रुकावट होती है।
 (???) SO₂, NO तथा CO क्षति में पहुँचकर हीमोग्लोबिन से संयुक्त हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप ऑक्सीजन प्रभावित होते हैं और इन्हें क्षति होती है।
 (??) सल्फर डाइऑक्साइड कोमल ऊतकों द्वारा अवशोषित की जाती है, जिसके कारण आँख, कान, नाक, गला पर ये विषाक्त कारिकाओं द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं।
 निकल लिए जाते हैं। इससे छोटे कण निःस्रवण किया द्वारा फफुहों की एंजिमाइसिस में पहुँच जाते हैं। वहाँ (??) ठोस कण जिनकी मात्रा 2 mb से अधिक होती है, नाक के बालों में अटक जाते हैं। सामान्यतया ये बाहर

वायु प्रदूषण का मनुष्य पर प्रभाव

है, वहाँ की वायु में सूई (cotton) के तन्तु भी पाए जाते हैं।
 (pesticides) सल्फर व गार्डोजन के ऑक्साइड्स आदि मुख्य वायु प्रदूषक हैं। ऐसे शहरों में जहाँ कपड़े के कारखाने अतिरिक्त कालकाला, मून्ड हैं तथा दिल्ली में काबन मोनोऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन, फ्लूओरोसिस, पीडिकनायटी कोलकाला, तथा गार्डोजन के ऑक्साइड्स की सबसे अधिक मात्रा अहमदाबाद तथा कानपुर में पाई जाती है। इनके Engineered Particle Matter) के सम्बन्ध में सूचना ग्रहण करता है। SPM की सबसे अधिक मात्रा दिल्ली तथा Engineering Research Institute NBERI) तीन वायु प्रदूषकों—SO₂, NO₂, तथा SPM (Sus- (National Environmental Health Research Institute) में स्थित राष्ट्रीय प्रदूषण अनुसन्धान संस्थान

का मनुष्य पर प्रभाव (Atomic Experiments) — आज के आधुनिक युग में परमाणु ऊर्जा का विभिन्न रूप इनके अतिरिक्त जलमयूखी फटने पर उससे निकलने वाली गैसों में वायुमण्डल को प्रदूषित करती है। में उपयोग किया जाता है। उपयोग करने से पहले इनका परीक्षण किया जाता है जिससे वायुमण्डल प्रदूषित होता है। परमाणु परीक्षण (Atomic Experiments) — आज के आधुनिक युग में परमाणु ऊर्जा का विभिन्न रूप

नीट

परिवाहक परीक्षण में धार
 में सामाजिक नीति का
 नीतिगत उद्देश्य

(i) जल हमारे लिए अति आवश्यक अवयव है। इसकी आवश्यकता लगभग सभी उद्योगधर्मों में होती है। इसमें प्रकृत से प्रदूषित करना है—

(a) मानव द्वारा जल प्रदूषण (Pollution of water caused by man)—जल को मनुष्य निम्न जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत है—(a) मानव, (b) प्रकृति।

3.25 जल प्रदूषण (Water Pollution)

(a) कम मात्रा में जल प्रदूषण का उपयोग करना चाहिए; उदाहरण, प्राकृतिक गैस, तेल, नॉनकीय ईंधन, आदि।

(b) ईंधन का उपयोग करने से पहले ही उसमें से गन्धक अलग करना आवश्यक है।

(c) गैसों का स्क्रीनिंग (scrubbing) करने से SO_2 दूर की जा सकती है।

(i) प्रकाश-रासायनिक स्थायिता को दूर करना चाहिए। यह तभी सम्भव होगा जब विद्युत चालित, बैटरी चालित, सूर्य की रोशनी द्वारा चालित आदि स्वचालित वाहनों का आधिकारिक किया जाए।

(ii) उद्योगों द्वारा उत्पन्नित कठोरकाल पर स्क्रबर्स, प्रैसिपिटर्स तथा फिल्टर्स आदि द्वारा नियंत्रण करना चाहिए।

(iii) SO_2 पर नियंत्रण पाने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए—

वायु प्रदूषण नियंत्रण (Control of Air Pollution)

(i) पर्यावरणीय विभागों के विकास से त्वरित केसर तथा उत्परिवर्तन (mutations) उत्पन्न होते हैं।

(ii) प्रकाश-रासायनिक स्थायिता के प्रभाव से ओजोन स्तर का विघटन होता है और पृथ्वी पर पर्यावरणीय विभागों का विकास बढ़ जाता है, जो कि जीवों के लिए बहुत हानिकारक होता है।

(iii) तापक्रम बढ़ने से वर्षा कम भी अव्यवस्थित हो जाता है।

के कारण।

कर दिया जाए, तो भी 100 की वृद्धि हो जाएगी। पड़ बरसा CO_2 सोखने के CO_2 निकालने लगीं अधिक प्रचलन जाएगी। घने पड़ों के लगाने से भी कोई लाभ नहीं हो पाएगा। यदि आज दुनिया ही 60-70% CO_2 का प्रदूषण बन्द यदि वर्तमान दर पर CO_2 का वायु में प्रदूषण होता रहा तो सन् 2000 तक पृथ्वी का तापमान में $6^{\circ}C$ वृद्धि हो गत दिनों में इंग्लैण्ड में स्थित मौसम विज्ञान के अनुसंधान केन्द्र "हेडले केन्द्र" से प्राप्त रिपोर्ट के अनुसार है, समुद्र में जल की मात्रा बढ़ने से समुद्र के स्थल तथा द्वीपों में पानी बढ़ जाएगा।

(ii) यदि पृथ्वी का तापक्रम $2-3^{\circ}C$ बढ़ जाता है तो तैरियर पिघलने लगते हैं, जिससे नदियों में बाढ़ आती बढ़ गया है।

(i) वर्षों के नष्ट होने से तथा जीवधर्मों ईंधन के अत्यधिक बढ़ने से वायुमण्डल में कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। इसी कारण से पृथ्वी का तापक्रम, "घीस पर प्रभाव" (Green House Effect) द्वारा

वायु प्रदूषण का जलवायु पर प्रभाव (Effect on Climate)

उद्योगों के अपशिष्ट पदार्थों द्वारा विषयविषयता राजमहल (अपरा) का रंग काला पड़ता जा रहा है।

(i) अन्त वर्षों का हाइड्रोजन सल्फाइड सामरस की भी प्रभावित करते हैं। ऐसा विज्ञान कि या जाता है कि

(ii) ओजोन, खड की वस्तुओं का ऑक्सीकरण कर देती है।

(iii) हाइड्रोजन सल्फाइड्स द्वारा चांदी तथा लौह के धातुओं का रंग उड़ जाता है।

नीचे

ऐतिहासिक परिदृश्य में भारत में सामाजिक नीति का गीतगत उर्विकस

सं प्रयोग के पश्चात् अपशिष्ट जल, जिसमें हानिकारक धातु के कण, रंग तथा अन्य आविषालु पदार्थ (toxic substances) घुले रहते हैं, को नालों, जलधाराओं, सरिताओं में छोड़ दिया जाता है।
 उत्तरक, इंधन, चीनी, कपड़ा, पेट्रोल, रिफ़्टोली, ऊर्जा आदि के कारखानों में उत्पन्नित सभी अपशिष्ट तथा आविषालु पदार्थ जल में छोड़ दिए जाते हैं।

(ii) सामुदायिक अपशिष्ट पदार्थ (Community Waste Substances)—जैसे-कूड़ा-कचरा, बाहिर मल (sewage) आदि मानव द्वारा जल में प्रवाहित कर दिया जाता है। भारत के अब तक केवल आठ शहरों में बाहिर मल के शुद्धिकरण संयंत्र (treatment plants) लगाए गए हैं।

(iii) कृषि के आधुनिकीकरण से उत्पन्न तथा कीटनाशकों का उपयोग अधिक बढ़ गया है। जो जल इन खेतों में बहता है, वह अपने साथ इन आविषालु पदार्थों को भी बहा ले जाता है और इस प्रकार भूमिगत जल भी प्रदूषित हो जाता है।

(iv) नाभिकीय तथा ताप-ऊर्जा संयंत्रों में भी, उसे ठण्डा करने के लिए जल को अधिक आवश्यकता होती है। यह जल प्रदूषित हो जाता है और मनुष्य इस जल को सीधे ही जलधाराओं में छोड़ देता है। क्योंकि इस जल का तापक्रम भी अधिक होता है इसलिए जलीय जन्तु तथा पौधे मर जाते हैं।

(v) बड़ी-बड़ी नाल, पानी के जहाज तथा पनडुब्बियां जल में अपने पीछे तेल की धारा छोड़ते जाते हैं जो जल को सतह पर फूल जाता है। इससे जलीय जीवों को आक्सीजन कम मिल पाती है। टर्बिनाओं से या जलबूझकर (इलाक युद्ध-1991) भी तेल जल में मिल जाता है या मिला दिया जाता है, जिससे जल प्रदूषित होता है और जीवों का जीवन कष्टमय या दूभर हो जाता है।

(vi) खानों से निकला अस्लीय जल भी नदियों तथा समुद्र को प्रदूषित करता है।

(vii) जब कीटनाशकों को वायुमयन से छिड़का जाता है तब वे वर्षा-जल के साथ भूमि-जल में मिलकर उसे प्रदूषित कर देते हैं।

(viii) साबुन व जैव-अविघटनी डिटरजेंट (अपमाजक) आदि के अत्यधिक प्रयोग से भी जल प्रदूषित होता है।

(ix) वैज्ञानिक अपने प्रयोगों में अपने रसायनों का प्रयोग करते हैं और बिना शुद्धिकरण के ही उन्हें जल में छोड़ देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक भी प्रदूषण फैलाते हैं।

(b) प्रकृति द्वारा जल प्रदूषण (Water Pollution by Nature)—अस्लीय जल वर्षा होने, कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थों के मिलने से, मृदा अपरदन से, खनिजों के लीचिंग से, कार्बनिक पदार्थों के विघटन आदि से प्राकृतिक जल प्रदूषण होता है।

जल प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Water Pollution)

(i) औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों में लैड, कैडमियम, पारा, जिंक, लोहा आदि मिला रहता है। इनसे जल नहाने तथा पीने योग्य नहीं रहता।

(ii) पारा (Mercury) एक भारी धातु है, जो खाद्य-शृंखला में धीरे-धीरे बढ़ता रहता है। यह जल प्रदूषण का मुख्य स्रोत है। खानों, कारखानों तथा विद्युत, संयंत्र बनाते वाली फैक्ट्रियों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ पारें द्वारा जल प्रदूषित करते हैं। पार से हाथ, पैर, होंठ, जीभ आदि सूजने हो जाते हैं। इसमें बहरपन तथा अन्धापन या पागलपन भी हो जाता है।

(iii) जल में तेल की मिलाने से जलीय जीवों को आक्सीजन नहीं मिल पाती, पक्षियों के पंखों में तेल लगा जाने से वे उड़ नहीं पाते और मर जाते हैं।

(iv) जल का तापक्रम बढ़ने से जीवों की या तो मृत्यु हो जाती है या उनका जीना कठिन हो जाता है।

(v) सुषोषण (Eutrophication)—जल में पोषण पदार्थ की अधिकता भी जीवों को प्रभावित करती है। वह प्रायः स्थित जल जैसे-तालाब, झील आदि में होता है। कारखानों की फैक्ट्रियों के अपशिष्ट पदार्थ, कमांडो खानों का अपशिष्ट पदार्थ, बाहिर जल-मूल, आदि में कार्बनिक पदार्थ अधिक होते हैं। जल में पहुँचकर

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

नीति

नोट

ये जल की उत्पादकता को बढ़ा देते हैं। इससे जलीय पौधे-शैवाल अधिक वृद्धि करते हैं और जल की सतह को ढक लेते हैं। शैवाल श्वसन क्रिया के लिए जल की अधिकांश ऑक्सीजन अपने उपयोग में ले लेते हैं और उसमें जीवों के लिए ऑक्सीजन की कमी हो जाती है।

जल प्रदूषण का नियन्त्रण (Control of Water Pollution)

जल प्रदूषण को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए—

- (i) तालाबों, झीलों तथा जल धाराओं में बैठ कर नहाना, कपड़े धोना, साबुन लगाकर नहाना आदि बन्द कर देना चाहिए।
- (ii) अपशिष्ट पदार्थ जिनका दहन नहीं हो सकता या जैव-विघटन (biodegradation) नहीं हो सकता, उन पदार्थों से निचली भूमि या गड्ढों को भरना चाहिए।
- (iii) वाहित मल शुद्धिकरण संयंत्र लगाने चाहिए और वाहित मल का उपचार करने के पश्चात् ही जल में छोड़ना चाहिए।
- (iv) हमें फॉस्फेट की कम मात्रा वाले साबुन या डिटरजेंट आदि का प्रयोग करना चाहिए।
- (v) पादपनाशक, कीटनाशक, उर्वरकों आदि पदार्थों का केवल आवश्यकतानुसार ही प्रयोग करना चाहिए।

(a) अपशिष्ट जल का उपचार दो प्रकार से हो सकता है

(i) प्राथमिक उपचार (Primary treatment)—इस विधि के अन्तर्गत छानना (filtration), अवसादन (sedimentation), प्लवन (floatation), आदि आता है। इस विधि से उतराने वाले कण दूर किए जाते हैं।

(ii) द्वितीयक उपचार (Secondary treatment)—इसके अन्तर्गत रोगाणुक (microbial) क्रियाओं द्वारा अपशिष्ट पदार्थों का ऑक्सीकरण होता है। वाहित मल शुद्धिकरण संयंत्र द्वारा कार्बनिक फॉस्फोरस तथा नाइट्रोजन, अकार्बनिक फॉस्फोरस में बदल जाता है, जिसको शैवाल तथा अन्य पौधे अधिक अच्छी तरह उपयोग में लाते हैं।

(b) उल्टा परासरण (Reverse Osmosis)—पीने का पानी उपलब्ध कराने के लिए यह सबसे उत्तम विधि है। इस विधि के अन्तर्गत घोल पर दबाव उत्पन्न किया जाता है, जिससे घोल का जल सान्द्रता के विरुद्ध परासरण करने लगता है। इस विधि में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार शुद्ध तथा पीने योग्य जल प्राप्त होता है।

(c) जल का पुनःचक्रिकरण (Recycling of Water)—इनके अतिरिक्त, अवायवीय पाचन (anaerobic digestion) अधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है। इस विधि में उत्तम उर्वरक उपलब्ध होता है और ईंधन गैस भी निकलती है, जैसे—गोबर गैस या जैव गैस। कम्पोस्ट विधि द्वारा भी अपशिष्ट पदार्थों का उपचार किया जा सकता है। इस विधि से रोगाणु (pathogen) नष्ट हो जाते हैं।

3.26 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

मृदा प्रदूषण के स्रोत (Sources of Soil Pollution)

- (i) अम्लीय जल वर्षा तथा खानों से प्राप्त जल, मृदा के मुख्य प्रदूषक हैं।
- (ii) मृदा में कूड़ा-करकट तथा अपशिष्ट पदार्थ मिलने से मृदा प्रदूषित होती है।
- (iii) उर्वरकों तथा कीटनाशक रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से मृदा प्रदूषण होता है।
- (iv) औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ जब मिट्टी में छोड़ दिए जाते हैं, तब मृदा प्रदूषण होता है।
- (v) भारी धातुएं, जैसे—कैडमियम, जिंक, निकल, आर्सेनिक आदि खानों से मृदा में मिल जाते हैं। ये धातुएं पौधों के लिए हानिकारक तो हैं ही, साथ-साथ ये उपभोक्ताओं के लिए भी हानिकारक होती हैं।

1945 में अमेरिका ने जापान के दो प्रमुख नगरों हैरोशिमा तथा नागासाकी पर आण्विक बम गिराए, जिसके फलस्वरूप वहाँ सब कुछ नष्ट हो गया। शांति ही कोई जीव वहाँ जीवित रहा ही। किन्तु इसका प्रभाव आस-पास के शहरों में रहने वाले जीवों पर भी पड़ा। यहाँ तक कि आज लगभग 65 वर्ष बाद, भी वहाँ के बच्चे

नाभिकीय ईंधन तथा रेडियोऐक्टिव आइसोटोप का निर्माण आदि।
 नाटो नियम तथा थोरियम का शुद्धिकरण, आण्विक ऊर्जा संयन्त्र, नाभिकीय शस्त्रों का उत्पादन, परीक्षण तथा प्रयोग, प्राकृतिक खानों के अतिरिक्त मानव द्वारा भी विकरण उत्पन्न किए जाते हैं, जो और अधिक घातक हैं, जैसे को नाइट्रिकरण कहते हैं। कम नमी तथा सूदा में वायु की कमी होने पर नाइट्रिकरण की दर घट जाती है। परिवर्तन होता है, इसके बाद नाइट्रिकरण ब्रेकरीया द्वारा नाइट्रेट का नाइट्रेट में परिवर्तन होता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया नाइट्रोजन चक्रण में नाइट्रिया-ग्राह्य में नाइट्रेटोसोमानस डैक्टोरिया द्वारा अमोनिया का नाइट्रेट में

रेडियम-224, यूरेनियम-238, थोरियम-232, पोटेशियम-40, कार्बन-14 आदि से होता है।
 के समक में हम सूक्ष्म रहते हैं, ये कम स्तर के विकरण के स्रोत हैं। सूक्ष्म तथा स्थलीय विकरण धूमि में उपस्थित (γ-कण) के स्तर: उत्पन्न होने की विद्युत्नाभिकता (radioactivity) कहते हैं। प्राकृतिक, सूक्ष्म स्तर के विकरण आण्विक विखण्डन के फलस्वरूप प्रोटीस (α-कण), इलेक्ट्रॉन (β-कण) तथा गामा-किरणों विकरण प्रदूषण स्रोत (Sources of Radiation Pollution)

3.28 विकरण प्रदूषण (Radiation Pollution)

व्यक्ति प्रदूषण के दिनों-दिन बढ़ते खतरे एवं उनसे दानिकारक प्रभावों को कम करने के लिए भारतीय कानून भारत में व्यक्ति प्रदूषण नियन्त्रण अधिनियम 1989 में एक तकनीकी प्रक्रिया में व्यक्ति प्रदूषण के नियन्त्रण एवं व्यक्ति प्रदूषण शिकारत सम्बन्धी विधायी के निर्धारण हेतु अनेक कानून बनाए गए हैं। भारत सरकार के पर्यावरण मन्त्रालय के केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड ने वर्ष 1989 में एक तकनीकी समिति का गठन किया जिसने व्यक्ति प्रदूषण से उत्पन्न होने वाले नुकसान एवं इसके नियन्त्रण के नियमों पर उसने सुझाव प्रस्तुत किया। सरकार तदनुसार कार्यवाही कर रही है।

भारत में व्यक्ति प्रदूषण नियन्त्रण

- (i) शोर न करने वाली मशीनों का निर्माण करना चाहिए।
- (ii) मशीनों का ठीक प्रकार से रख-रखाव करना चाहिए।
- (iii) व्यक्ति उत्पादन करने वाली मशीनों को ध्वनिरोधी कमरों में ही लगाना चाहिए।
- (iv) कारखानों में कार्यरत कर्मचारियों को अपने कानों में रुई लगानी चाहिए।
- (v) कारखाने आवास-गृहों से दूर लगाने चाहिए।
- (vi) लाइवस्ट्रीकर केवल कुछ ही समय के लिए लगाने चाहिए।
- (vii) स्वचालित वाहनों के हॉर्न बजाने पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।
- (viii) सड़कों के किनारे वृक्ष लगाने चाहिए जिससे ध्वनि प्रदूषण कम होता है।

ध्वनि प्रदूषण नियन्त्रण (Control of Noise Pollution)

(vi) यदि कोई व्यक्ति 80-90 db की ध्वनि में 8 घण्टे लगाता रहता है तो उसमें बहुरूपन ग्रस्त हो जाता है।
 ध्वनि प्रदूषण से भावनात्मक बिभक्ष (emotional disturbance) हो जाता है और हृदय, मस्तिष्क, फेफले आदि पर दुष्प्रभाव पड़ता है।
 ध्वनि प्रदूषण से नींद नहीं आती, आराम नहीं मिलता।

- (ii) ध्वनि प्रदूषण से विडंबितकरण, फिर दर्द, कष्ट आदि आता है।
- (iii) अकस्मात तेज ध्वनि का हृदय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। हृदय गति दर बढ़ जाती है, मनुष्य शिथिल हो जाता है, स्निग्ध नलिकाएँ सिकुड़ जाती हैं, स्निग्ध दाब में परिवर्तन आ जाता है।

नीचे

परिचालक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का निर्माण उद्देश्यकाम

नोट

स्थापित कर पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के संरक्षण में सकारात्मक भूमिका निभा सकता है। बढ़ती प्रदूषण समस्या से चिंतित विश्व के देश पर्यावरण प्रबन्धन के सम्बन्ध में यथासम्भव प्रयास कर रहे हैं।

भारत में पर्यावरण संरक्षण के प्रयास

भारत में प्रकृति की रक्षा का दायित्व जनश्रुतियों में दीर्घकाल से मिलता चला आ रहा है, उदाहरणार्थ 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में स्पष्ट कहा गया है कि मानव को पौधों और जानवरों की रक्षा करनी चाहिए।

आधुनिक युग में स्वतंत्रता के पूर्व भी भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेक कानून बनाए गये। आजादी के पूर्व सबसे पहली बार वन अधिनियम 1927 के द्वारा पर्यावरण संरक्षण की बात कही गयी थी। इसके बाद क्रमशः इण्डियन फिशरीज एक्ट 1897; विष अधिनियम 1919; इण्डियन बॉयलर्स एक्ट 1923; मैसूर डिस्ट्रिक्टव एण्ड पेस्ट एक्ट 1917; तथा बिहार वेस्ट लैण्ड्स एक्ट, 1946 पारित किये गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान में पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न उपबन्धों को संविधान में स्थान दिया गया। इसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में संविधान की प्रस्तावना, मूलाधिकारों, राज्य के नीति निर्देशक तत्वों तथा मूल कर्तव्यों में देखा जा सकता है।

- संविधान की उद्देशिका में पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी प्रावधान—यद्यपि भारतीय संविधान की प्रस्तावना में प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया लेकिन इसमें जिस 'समाजवादी' राज्य की स्थापना की बात कही गयी है वह तभी संभव हो सकती है जब सभी का जीवन स्तर ऊंचा हो जिसमें स्वच्छ एवं प्रदूषण रहित पर्यावरण की विशेष भूमिका है।
- संविधान के मूलाधिकारों में पर्यावरण संरक्षण—यद्यपि भारतीय संविधान के भाग 3 में वर्णित मूलाधिकारों में पर्यावरण संरक्षण के विषय में प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी नहीं कहा गया, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से कुछ मूलाधिकारों के अन्तर्गत पर्यावरण को भी समाहित कर लिया गया है। उदाहरणार्थ, अनुच्छेद 14 में वर्णित समानता के अधिकार में जो प्रतिबन्ध लगाए गये हैं उनका सम्बन्ध पर्यावरण संरक्षण से है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 21 में वर्णित प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अन्तर्गत न्यायिक निर्णयों में धूम्रपान से बचाव भी शामिल किया गया है।
- संविधान में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में पर्यावरण संरक्षण—संविधान का अनुच्छेद 47 तथा 48A पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित है। अनुच्छेद 47 राज्य को मादक पेयों और हानिकारक औषधियों के उपयोग को कुछ अपवादों के साथ रोकने का निर्देश देता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 48A कहता है कि राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा उसमें संवर्द्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

संविधान में मूल कर्तव्यों में पर्यावरण संरक्षण

संविधान का अनुच्छेद 51A(G) कहता है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह—

- (i) प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे,
- (ii) प्राकृतिक पर्यावरण का संवर्द्धन करे,
- (iii) वन व वन्य जीवों की रक्षा करे।

यहां प्राकृतिक पर्यावरण में प्राकृतिक तथा कृत्रिम वातावरण दोनों शामिल हैं। इस अनुच्छेद में जिस कर्तव्य का उल्लेख है उसकी पूर्ति तभी संभव है जब पर्यावरण सुरक्षित रहे उसमें किसी प्रकार का प्रदूषण न हो। संसद इस कर्तव्य का पालन करने के लिए उपयुक्त विधायन की व्यवस्था भी कर सकती है। संसद ने इसी भावना से प्रेरित होकर अनुच्छेद 253 की शक्ति से वायु प्रदूषण अधिनियम, 1981; पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 अधिनियमित किये हैं।

नवम्बर 1980 में देश में पर्यावरण संरक्षण एवं उसकी संवर्द्धि के लिए 'पर्यावरण विभाग' स्थापित किया गया, पर्यावरण विभाग को महत्त्व प्रदान करते हुए 1985 में केन्द्र में एक अलग मन्त्रालय 'पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय' का गठन किया गया।

कारावास की व्यवस्था।

(?) वन जीवों के शिकार को दृष्टनीय अपराध मानते हुए 25 हजार रुपये आर्थिक दण्ड और 5 वर्ष के वन जीवों के संरक्षण के लिए इसमें प्रावधान किए गए हैं कि—

वन जीव संरक्षण अधिनियम, 1972

क्रमशः 37,761 वर्ग किमी व 1,44,164 वर्ग किमी में फैले हुए हैं।

क्षेत्रों की स्थापना करके उन्हें वैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया। देश में 89 राष्ट्रीय पार्क, 490 अभयारण्य हैं जो वन जीव संरक्षण, अधिनियम, 1972 द्वारा कर्नाटी मान्यता द्वारा कई राष्ट्रीय पार्कों, अभयारण्यों व सुरक्षित

(ii) प्रजाति का उसके प्राकृतिक वास स्थान से बाहर ले जाकर संरक्षण, परिरक्षण एवं संवर्द्धन करना।

(?) जीव विविधता को अपने स्थान पर ही संरक्षण,

भारत में जीव विविधता के संरक्षण के लिए दो स्तरीय पर प्रयास किया गया—

विशेष स्थान दिया गया और पर्यावरण संरक्षण के प्रयास तेज हुए हैं।

का प्रावधान है। इसके अलावा राष्ट्रीय वन्य जन्तु संरक्षण नीति, 1992 के पारित होने के बाद वन्य जीव संरक्षण पर भारत में वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972 में अधिसूचित जन्तुओं के शिकार पर दण्डनात्मक कार्रवाही

वन्य जन्तु संरक्षण

आधिक संग्रह होगा: (1) वन्य जन्तु संरक्षण, (2) प्राय एवं वन संरक्षण।

इनके संरक्षण के प्रयास किए जा रहे हैं। जीव संयत्ता के संरक्षण के इन प्रयासों को तीन वर्गों में बांटेकर समझना भारत में अपनी समृद्ध जीव-विविधता को विगुल होने से बचाने के लिए उन प्रजातियों की पहचान करके

जाला शीर्ष सलाहकारी निकाल है। प्रधानमंत्री, भारतीय वन्य जीवन बोर्ड के पदेन अध्यक्ष होते हैं।

- भारतीय वन्य जीवन बोर्ड वन्य जीवन संरक्षण की अनेक योजनाओं के क्रियान्वयन, निगरानी एवं निरीक्षण करने प्रस्तुत करती है।

- **राष्ट्रीय वन्य जीवन कार्यायोजना**—यह वन्य जीवन संरक्षण के लिए कार्यायोजना एवं कार्यक्रम की रूपरेखा 1998 में संशोधित किया गया।

- **संशोधित वन नीति 1988** ही वर्गों की सुरक्षा, संरक्षण और विकास का आधार है। इसे पुनः वर्ष 1990 तथा प्रथम वन नीति सन् 1894 में संशोधित की गयी।

- **भारत की वन नीति एवं अन्य कानून (India's forest policy and other Laws)**—भारत की भौगोलिक क्षेत्रफल का 20.55% वनाच्छादित है।

- कोलकाता, नागपुर तथा शिमला में इसके क्षेत्रीय कार्यालय हैं। भारत 2004 के अनुसार देश के कुल बाढ़ तथा पहाड़-पौष केन्द्रित नक्षी हि-वर्ष में बनाता है। इसका मुख्यालय देहरादून में है तथा बंगलौर, भारतीय वन सर्वेक्षण-वर्ष 1981 में स्थापित यह संगठन देश के लिए विषय-केन्द्रित नक्षी हर 10 वर्ष

सर्वेक्षण एवं सूचीकरण करता है। इसका भी मुख्यालय कोलकाता में स्थित है।

- **भारतीय प्राणी विज्ञान सर्वेक्षण**—वर्ष 1916 में स्थापित यह संगठन देश के जीव-जन्तुओं से सम्बन्धित और उनकी पहचान करता है। इसका मुख्यालय कोलकाता में स्थित है।

- **भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण**—वर्ष 1980 में स्थापित यह संगठन देश के वानस्पतिक संसाधनों का सर्वेक्षण जो पर्यावरण से सम्बन्धित है।

- **वन्य जीव संरक्षण और पर्यावरण**—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 का अध्याय लोक व्यवस्था और शान्ति उल्लंघन पर 6 माह कारावास या जुर्माना तथा दोनों की व्यवस्था की गयी है।

- **सुरक्षा, शिष्टता और सदाचार** पर प्रभाव डालने वाले अपराधों के विषय में उपलब्ध किया गया है। इसके

- **भारतीय दण्ड संहिता और पर्यावरण**—भारतीय दण्ड संहिता 1860 के अध्याय 14 लोक स्वास्थ्य, क्षेत्र

नीट

ऐतिहासिक परिदृश्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

नोट

- (ii) किसी वन्य जीव का कोई अंग या उससे निर्मित सामग्री रखने के व्यापार पर प्रतिबन्ध।
- (iii) अभयारण्य क्षेत्र में मछली पकड़ने पर प्रतिबन्ध।
- (iv) मोर पक्षी, बारहसिंहा (deer) आदि के पालने व शिकार पर प्रतिबन्ध यदि मुख्य वन्य जीव वार्डन का प्रमाण-पत्र मिल गया हो तब अनुमति है, परन्तु मोर के विषय में यहां अपवाद है।
- (v) नील गाय आदि से किसानों की फसलों को हो रहे नुकसान को देखते हुए उन्हें अपनी फसलों के संरक्षण के लिए अपने खेतों के चारों ओर करेण्टयुक्त तारों की बाड़बन्दी की अनुमति।
- (vi) बिना लाइसेंस के शहतूत के शाल बनने पर भी प्रतिबन्ध रहेगा।

बायोस्फीयर रिजर्व की अवधारणा

यूनेस्को (UNESCO) द्वारा सुझाई रणनीति के आधार पर वर्ष 1968 में यह विचार दिया गया कि पर्यावरण में दुर्लभ प्रजातियों को बचाने के लिए उनके मूल आवास (Original Habitat) में ही संरक्षित करके उसकी समग्र पर्यावरणीय परिस्थितियों के साथ उसके परिवर्द्धन की स्थितियां प्रदान की जाएं। इसे जैवमण्डल (Biosphere Reserve) की संज्ञा दी गई। 'जैवमण्डल' नाम वी. आई. वर्नादस्की ने दिया था। इसके परिणामस्वरूप भारत में जैवमण्डलों की स्थापना की गई जिसे वर्ष 1972 में वैधानिक मान्यता मिली।

वन्य जीवन अनुसन्धान

वन्य जीवों के विषय में अनुसन्धान कार्य सम्पन्न करने का कार्य भारतीय वन्य जीवन संस्थान करता है। देश के विभिन्न भागों में इसके लिए जो अनुसन्धान परियोजनाएं चल रही हैं, उनमें प्रमुख हैं—

- (i) वन्य जीवों के निवास का क्रमिक विकास,
- (ii) हाथियों का गमनागमन,
- (iii) घड़ियाल एवं कछुओं की पारिस्थितिकी,
- (iv) विलुप्त प्राय प्राणियों पर शोध,
- (v) पशुओं के व्यवहार, पशुओं के स्वास्थ्य आदि पर कार्य।

3.30 विशिष्ट प्रतिबन्धित सुरक्षित परियोजना क्षेत्र (Special Restricted Safe Project)

जैवमण्डल, राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य के अलावा कुछ विशिष्ट जन्तुओं एवं जीव के संरक्षण के लिए भारत सरकार ने अलग से भी परियोजनाएं चलाई हैं, जिनमें प्रमुख हैं—

1. बाघ संरक्षण परियोजना (Project Tiger)

देश में बाघों की संख्या में लगातार गिरावट को देखकर भारत सरकार ने सन् 1973 में इस योजना का आरम्भ किया। इसके अन्तर्गत प्रत्येक टाइगर रिजर्व क्षेत्र के लिए 30 वर्ग किसी भूमि आरक्षित की गई। वर्तमान में देश में 15 राज्यों में 27 टाइगर रिजर्व स्थापित हो चुके हैं।

2. हाथी परियोजना (Project Elephant)

भारत सरकार ने देश में हाथियों की संख्या में लगातार होती जा रही कमी को देखकर वर्ष 1992 से देश में हाथी परियोजना लागू की। इसका उद्देश्य जंगली हाथियों को उनके आवास स्थल पर ही सुरक्षित रखना, शिकारियों से उनकी सुरक्षा करना, मानव व हाथी के मध्य के संघर्ष को कम करना आदि शामिल हैं।

3. गिर शेर संरक्षण परियोजना

भारत में शेरों की संख्या में निरन्तर गिरावट के कारण गुजरात सरकार ने वर्ष 1972 में गिर लायन प्रोजेक्ट का आरम्भ किया। एशियाई शेर का एकमात्र प्राकृतिक आवास सौराष्ट्र (गुजरात) है, जहां 1,412 वर्ग किमी में इनके संरक्षण के लिए यह परियोजना चलाई जा रही है।

प्रति माने जाते हैं।

वणुकीप्रसार भारत ने इसे राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मंच प्रदान किया। इस कारण सुन्दरलाल बहुगुणा इस आन्दोलन के संरक्षण के लिए एक अग्रिम महिला 'श्रीमती गौरा देवी' द्वारा शुरू किया गया, लेकिन सुन्दरलाल बहुगुणा व विपकी आन्दोलन-उत्तर प्रदेश के चमौली स्थान से आरम्भ हुआ यह वन बचाओ आन्दोलन हिमालय वन उपाय आन्दोलन के रूप में प्रसृत है।

भारत में वनों के संरक्षण हेतु अनेक उपाय किये गये हैं जिनमें सामाजिक संस्थाओं और सरकार के कुछ

3.31 भारतीय संदर्भ में वन संरक्षण (Forest Protection in Indian Context)

महत्वपूर्ण है कि इस मुद्दा की गणना विषय के दुर्लभ स्तनधारियों में होती है।

मणिपुर में पाए जाने वाले श्वान मुद्दा के संरक्षण के लिए यह योजना वर्ष 1977 से चलाई जा रही है।

10. श्वान परियोजना

से हागल परियोजना चलाई जा रही है।

कश्मीर के 'याची ग्राम राष्ट्रीय उद्यान' में ही कुछ संख्या में बचा है। यहाँ इसकी संख्या में प्रसार के लिए सन् 1970

हागल रेण्डर प्रजाति का जीव है जो Red Data Book में भी स्थान पा चुका है। अब यह केवल

9. हागल परियोजना

अभयारण्य से किया।

भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृतिक संरक्षण संघ की मदद से कस्तूरी मुद्दा परियोजना का आरम्भ केदारनाथ

औषधीय प्रयोग में खालि प्राप्त कस्तूरी मुद्दा शिकार के कारण विपुल मात्रा में प्रचुर गया। फलतः

8. कस्तूरी मुद्दा परियोजना (Muski Deer Project)

हिमालयन जंगु पार्क (दार्जिलिंग) में इसके संरक्षण के लिए लाल पांडा परियोजना आरम्भ की गई।

प्रदेश में 'कैट विवर' के नाम से जाना जाता है। वर्ष 1996 में विषय प्रकृति निधि के सहयोग से प्रदमना नाथू

भारत के पूर्वी हिमालय में 1,500 से 4,000 मीटर की ऊंचाई पर पाया जाने वाला यह जानवर अण्णावले

7. लाल पांडा परियोजना (Red Panda Project)

(d) सुन्दरान राष्ट्रीय उद्यान एवं वन्य जीव अभयारण्य-बीबीस पराना (पश्चिम बंगाल)

(c) जलदापारा अभयारण्य-जलपाईगुड़ी (प. बंगाल)

(b) मानस अभयारण्य-बारपेटा (असम)

(a) काजीरंगा अभयारण्य-जोरहाट (असम)

के संरक्षण के लिए 'गैंडा परियोजना' आरम्भ की। भारत के प्रमुख गैंडा संरक्षण क्षेत्र हैं-

भारत में गैंडों के शिकार के कारण गैंडों की गिरती संख्या को देखकर भारत सरकार ने वर्ष 1987 में गैंडों

6. गैंडा परियोजना (Project Rhinoceros)

परियोजना केन्द्र सरकार द्वारा शुरू की गई।

(Food and Agricultural Organisation) की सृष्टि पर मारमच्छी एवं घड़ियालों के प्रजनन एवं प्रबन्ध की

भारत में घड़ियालों एवं मारमच्छी की निरन्तर गिरती संख्या के कारण वर्ष 1978 में खाद्य एवं कृषि संगठन

5. घड़ियाल प्रजनन एवं प्रबन्ध परियोजना

पर कार्य चल रहा है।

उड़ीसा के गारिमाया सागर तट में 'ओरिल विडले' नामक समुद्री कछुओं के संरक्षण की एक महत्वाकांक्षी परियोजना

देश में विपुल होती कछुआ प्रजातियों के संरक्षण के लिए केन्द्र सरकार ने इस परियोजना का आरम्भ किया।

4. कछुआ संरक्षण परियोजना

नीट

भी स्थापित किए गए हैं।

इसका मुख्यालय देहरादून में है, साथ ही बंगलौर, कोलकाता, नागपुर तथा शिमला में इसके क्षेत्रीय कार्यालय

वन सर्वेक्षण संस्थान (Indian Forest Survey Institute) की स्थापना की गई।

6. भारतीय वन सर्वेक्षण-पूर्व देश में वनों की स्थिति का लेखा-जोखा रखने के लिए वर्ष 1981 में भारतीय

को लेकर देहरादून में वर्ष 1986 में भारतीय वन शोध एवं शिक्षण संस्थान की स्थापना की गई।

5. वन अनुसन्धान केन्द्रों की स्थापना-वैश्व सम्पदा व वनों के विषय में अनुसन्धान व वन शिक्षण के उद्देश्य

जिनके पीछे घटते जा रहे हैं, उनके लिए ऊतक संवर्द्धन की पद्धति का उपयोग किया जा रहा है।

4. ऊतक संवर्द्धन (Rissue Culture)-कुछ अपुष्पाभिन्न पौधे जिनके बीज जिनके बीज कठिनाई से बनते हैं तथा

प्लांट सैन्चुअरी, शिलांग की भारतीय राष्ट्रीय आर्किड सैन्चुअरी इसी प्रयास की एक कड़ी है।

3. पादप अभयारण्य की स्थापना-जो भी वानस्पतिक महत्व के पौधे विलुप्त होते जा रहे हैं, उन्हें उनके

संकटग्रस्त पौधों की सूची बनाकर उनके वानस्पतिक नामों को सुरक्षित एवं संरक्षित करने का प्रयास कर रहा है।

2. वानस्पतिक बैंक की स्थापना-भारत में नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लांट जेनेटिक रिसोर्स (NBPGR) सभी

एवं विकास के लिए जीन बैंकों की स्थापना की गई है।

1. जीन बैंक की स्थापना-देश में प्राप्त विभिन्न खद्यान एवं अन्य फसलों की विभिन्न प्रजातियों के संरक्षण

के लिए सरकारी प्रयास किए जा रहे हैं।

स्थापना 'शिलांग' में की गई है। इस तरह इस दुर्लभ एवं विलुप्त प्राय वनस्पतियों को सुरक्षित करने के संरक्षण

Sanctuary) की स्थापना कर चुकी है। इसी प्रकार आर्किड के संरक्षण के लिए 'भारतीय आर्किड संग्रहालय' की

प्राय माना जा रहा है। इसी समस्या को ध्यान में रखकर मेघालय सरकार घटपर्णी अभयारण्य (Pitcheh Plant

प्रजातियाँ धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही हैं। सीलोग्राइन नामक आर्किड जो मेघालय में ही पाया जाता है, अब विलुप्त

वृक्ष संकटग्रस्त श्रेणी में शामिल हो गए हैं। देश में आर्किड की लगभग 1,200 प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिसमें 20

सम्पदा नष्ट होने के कारण पर है। 'इण्डियन फॉरेस्टर' नामक पत्रिका के अनुसार भारत के 20 प्रकार से अधिक

हैं। विश्व की 33 प्रतिशत घटपर्णी की प्रजातियाँ केवल भारत व भारतीय महाद्वीप में ही पाई जाती हैं। अब यह वैश्व

प्राणियों के अतिरिक्त पौधों एवं वनों के क्षेत्रों में संरक्षण प्रदान करने के लिए भी सरकार ने प्रयास किए

3.32 पादप एवं वन संरक्षण (Plant and Forest Conservation)

रहा है। इसका उद्देश्य वनों की सुरक्षा तथा गणव्यवस्थाओं के वन सम्बन्धी अधिकारों को वापस दिलाना है।

तिलाड़ी का आन्दोलन-उत्तरकाशी के तिलाड़ी नामक स्थान पर सन् 1930 से यह आन्दोलन चल रहा था।

आरम्भ किया गया। महाराष्ट्र सरकार की छद्म पदावरोध नीति के विरोध में इसका आरम्भ किया गया।

परिवर्तनी घाट बचाओ आन्दोलन-परिवर्तनी घाट (महाराष्ट्र) में यह आन्दोलन गोआ की पीपुल्स पार्टी द्वारा

जाती है।

वैचार करती है तथा विवाह की तिथि के दिन वह पौधे किसी निर्धारित वन क्षेत्र में स्मृति के रूप में रोपित कर दी

ने पहाड़ों को पुनः हराभरा करने के लिए यह आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन में पौधों की पौधे कुमारी कन्याएँ

श्री आन्दोलन-उत्तराखण्ड में पहाड़ों के वृक्षहीन होने को देखकर सन् 1995 में कल्याण सिंह रावत

में पड़े और मानव के वैश्विक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक स्थलों के साथ आर्थिक स्थलों पर भी जोर दिया जाता है।

है। इस आन्दोलन का नारा है-'उलसु, बेलसु, मनु बलिस' अर्थात् बचाओ, बढ़ाओ और काम में लाओ। आन्दोलन

एशिया की आन्दोलन-यह शिक्षण भारत का विपक्षी आन्दोलन है। इसके जनक व प्रणेता श्री पाण्डुरंग हेगडे

लाइली नामक आदिवासी महिला द्वारा चलाया गया।

कछ भाईला आन्दोलन-राजस्थान के बांसवाड़ा जिले में वन संरक्षण के लिए यह आन्दोलन श्रीमती

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत
में सामाजिक नीति का
नीतिगत उद्देश्य

उपयोगी ऊर्जा स्रोत में परिवर्तित करना है। प्रतिदिन 87 करोड़ 30 लाख लीटर घरेलू गन्दागी को गंगा में गिरने से गंगा कार्ययोजना का उद्देश्य नदी में प्रवाहित होने वाली गन्दागी को अन्य स्थानों पर एकत्र करना और उन्हें बहाव की मात्रा के वर्तमान स्तर में 75 प्रतिशत कमी लाना है।

द्वि 1985 में 'गंगा-कार्ययोजना' के प्रथम चरण की शुरुआत की गई। इस कार्य योजना का लक्ष्य गंगा में गन्दागी के बालाचरण कुप्रभावित हो रहा है। विश्व में परिवर्तन कही जाने वाली इस नदी की स्वच्छता को आवश्यक समझते छोटे-बड़े उद्योगों ने अपने उत्सर्जी पदार्थों से उसे बुरी तरह प्रदूषित कर दिया है। इससे मनुष्य के साथ-साथ सम्पूर्ण गंगा कार्ययोजना-गंगा नदी उत्तर भारत में सर्वाधिक महत्वपूर्ण जलस्रोत है। इसके तटी पर स्थापित सैकड़ों

मन्गलाय' के अधीन।
दोनों संस्थाओं में से पहले को 'ग्रामीण विकास मन्गलाय' के अधीन रखा गया है और दूसरे को 'पर्यावरण एवं वन का गठन कर दिया गया है—(2) बजर विकास विभाग और (1) राष्ट्रीय वनीकरण एवं पर्यावरण विकास बोर्ड। इन को प्रारंभ करने के लिए राष्ट्रीय बजरमूँम विकास बोर्ड के कार्यों को विभाजित कर दिया गया है और दो संस्थाओं बरगाह-प्रबन्धन जैसे कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है और इस विभाग में प्रोत्साहन दिया जाता है। इन लक्ष्यों से वनीकरण का कार्यक्रम चलाना। इसके अन्तर्गत वृक्षरोपण, वैकल्पिक ईंधन, लकड़ी के वैकल्पिक स्रोत, राष्ट्रीय बजर मूँम विकास बोर्ड (N.W.D.B.)—इस बोर्ड का मुख्य उद्देश्य है—जनसाधारण के सहयोग

13. वानिकी अनुसन्धान तथा मानव संसाधन विकास, केन्द्र छिन्दवाड़ा (मध्य प्रदेश)।

12. सामाजिक वानिकी व इको रिहैबिलिटेशन शोध केन्द्र, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

11. वर्षा एवं नमी क्षेत्र वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट (असम)

10. इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय वन अकादमी, देहरादून (उत्तराखण्ड)

9. भारतीय वन प्रबन्ध संस्थान, भोपाल (मध्य प्रदेश)

8. वन अनुसन्धान केन्द्र, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)

7. हिमालय वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला (हिमाचल प्रदेश)

6. मरुभूमि वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

5. वनीकारकता संस्थान, रांची (झारखण्ड)

4. उष्ण कटिबन्धीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर (म.प्र.)

3. काष्ठ विज्ञान व तकनीकी संस्थान, बंगलौर (कर्नाटक)

2. वन आनुवंशिकी संस्थान, कोयम्बटूर (तमिलनाडु)

1. वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून (उत्तराखण्ड)

देश में पर्यावरण संरक्षण एवं वन विकास हेतु निम्नलिखित वन शिक्षा एवं शोध संस्थान स्थापित किये गये

3.33 वन शिक्षा एवं शोध से सम्बद्ध संस्थान (Forest Education and Research Related Institute)

करना।

(17) वनों के सर्वेक्षण हेतु आधुनिक रिमोट सेंसिंग एवं सैटेलाइट जैसी तकनीकों का विकास व परीक्षण

(18) वनाच्छादित क्षेत्रों का वास्तविक सत्यापन और मूल्यांकन।

(19) राष्ट्रीय वनस्पतिक मानचित्र तैयार करना।

(20) सम्पूर्ण भारतीय भू-भाग में विस्तृत वनों की सर्वेक्षण रिपोर्ट तैयार करना।

यह संस्थान जो कार्य सम्पन्न करती है, उसमें प्रमुख इस प्रकार है—

नीचे

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

नोट

रोकने, उसकी दिशा बदलने तथा उसका उपचार करने के लिए बुनियादी ढांचा खड़ा करने का लक्ष्य रखा गया है। इसमें से 64 करोड़ 50 लाख लीटर कचरे को बीच में रोकने और 48 करोड़ 45 लाख लीटर शहरी अपशिष्ट का प्रतिदिन उपचार करने योग्य बुनियादी ढांचा तैयार कर लिया गया है। गंगा कार्ययोजना चरण-1 को 31 मार्च, 2000 को बन्द कर दिया गया। इनमें से कम लागत वाली लगभग सभी मल व्ययन परियोजनाएं तथा विद्युत शवदाह-गृहों के निर्माण का कार्य पूरा कर लिया गया है। इससे गंगा नदी के प्रदूषण में उल्लेखनीय कमी आयी है।

गंगा कार्य योजना के तहत गंगा की तटवर्ती 68 बड़ी औद्योगिक इकाइयों को प्रदूषण-नियन्त्रण उपाय करने का निर्देश दिया गया है और कई अन्य इकाइयों को नियमों एवं निर्देशों का उल्लंघन करने के कारण बन्द करने के न्यायालयीय निर्देश भी दिए गए हैं। नदियों के जल की गुणवत्ता का परीक्षण-प्रबन्धन केन्द्रीय जल आयोग तथा केन्द्रीय एवं राज्य प्रदूषण-नियन्त्रण बोर्डों के द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता है।

यमुना कार्ययोजना—भारत सरकार द्वारा यमुना नदी की स्वच्छता बनाए रखने तथा उसे स्नान श्रेणी के स्तर तक लाने के लिए सन् 1993 में यमुना कार्ययोजना के कार्यान्वयन हेतु स्वीकृति प्रदान की गई। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य यमुना नदी के तट पर स्थित 95 नगरों के मल जल को यमुना में सीधे प्रवाहित करने से रोकना है। इस योजना के अन्तर्गत उपयुक्त स्थानों पर सीवेज ट्रीटमेन्ट प्लांट, विद्युत शवदाह गृह तथा कम लागत वाले शौचालय स्थापित किए जा रहे हैं।

राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना—वर्ष 1995 में नदियों के जल को प्रदूषण मुक्त बनाने के लिए राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना शुरू की गई। इसके माध्यम से मुख्यतया गंगा, यमुना, दामोदर और गोमती को प्रदूषण मुक्त करने की योजना है। वर्तमान में, इस योजना के तहत 18 राज्यों के 157 शहरों की 31 अन्तर्राज्यीय नदियां आती हैं। नदियों को प्रदूषण मुक्त करने के लिए 763 योजनाएं मंजूर की गई हैं। इस कार्ययोजना के तहत अब तक 381 परियोजनाएं पूरी हो चुकी हैं। गंगा कार्य परियोजना-II भी इसमें शामिल कर ली गई और इस प्रकार बृहत् राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना में 2,014.39 करोड़ रुपये की लागत से 14 राज्यों के 141 शहरों में 22 नदियों को प्रदूषण रहित बनाने व उनके संरक्षण की योजना तथा देश के शहरों में स्थित महत्वपूर्ण झीलों को साफ करने के लिए राष्ट्रीय झील संरक्षण योजना प्रारम्भ की गई है। इसके प्रथम चरण में कुल चुनी गई 26 झीलों में से 11 झीलों में कार्य शुरू किया गया।

3.34 भारत में प्रदूषण नियन्त्रण की नीतियां (Policy of Pollution Control in India)

पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय ने 1992 में प्रदूषण नियन्त्रण का नीतिगत घोषणा-पत्र जारी किया। मन्त्रालय की परियोजनाओं में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं भी सहयोग कर रही हैं। विश्व बैंक की सहायता से 'औद्योगिक प्रदूषण नियन्त्रण परियोजना' (आई. पी. सी. पी.) शुरू की गई है। जल एवं वायु-प्रदूषण से सम्बन्धित मामलों के नियोजन के लिए 'केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड' सर्वोच्च संस्था है। अनेक औद्योगिक इकाइयों की उत्सर्जन प्रणाली को वैज्ञानिक बनाने के लिए पर्यावरणीय संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत 'न्यूनतम नियन्त्रण प्रतिदर्श' (मिनास) निर्धारित किए गए हैं, जिनमें प्रदूषण नियन्त्रण के विभिन्न मानदण्डों को निर्धारित किया गया है।

पर्यावरण मन्त्रालय ने सम्पूर्ण देश में 19 ऐसे क्षेत्रों की पहचान की है, जिनमें प्रदूषण की समस्या अत्यन्त गम्भीर है और जिनके लिए विशेष सतर्कता की आवश्यकता है। इन क्षेत्रों में कुछ प्रमुख हैं—गुजरात में वापी, उत्तर प्रदेश में सिगरौली, पश्चिम बंगाल में हावड़ा, असम में डिगबोई, राजस्थान में पाली, बिहार में धनबाद, दिल्ली में नजफगढ़ और तमिलनाडु में मनाली। केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड के द्वारा एक अन्य परियोजना प्रस्तावित की गई। इसके अन्तर्गत देश में ऐसे क्षेत्रों की पहचान करना है जो एक निश्चित सीमा तक के प्रदूषण को सह सकते हैं और वहां नए उद्योग लगाए जा सकते हैं। NATMO (नेशनल एटलस एंड थीमेरि मैप ऑर्गनाइजेशन) तथा NRSA (नेशनल रिमोट सेसिंग एजेन्सी) के सहयोग से यह पूरा होगा। 17 राज्यों के 22 जिलों में यह कार्य शुरू किया गया। छिंदवाड़ा (मध्य प्रदेश), पलक्कड़ (केरल), सोलन (हिमाचल प्रदेश), विष्णुपुर, इम्फाल व थाउवाल (मणिपुर),

कहा जाता है।

क्षेत्र की 50% जल की आपूर्ति केवल वर्षा जल से ही हो सकती है। जल प्रबन्धन की इस विधि को 'रेन हार्वेस्टिंग' उतारना है। इस विधि को ब्रेनर्ड में अपनाकर जल संचयन को कम करने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रीय राजधानी में गिर रहा है, वहीं के प्रतिमात जल में पहुँचाकर जल की उपलब्धता को बढ़ाना तथा सू-गर्भ जलस्तर को ऊपर जल प्रबन्धन के इस कार्यक्रम का उद्देश्य वर्षा जल को एकत्र करके उसका प्रयोग करना और जिस क्षेत्र

(e) रेन हार्वेस्टिंग

कार्यक्रम (Green Rajasthan Programme) भी सन् 1991-92 में लागू किए गए।
1990-91 में लागू किया। हरि-परी दिल्ली अभियान (Green Delhi Campaign) व राजस्थान हरितिया परियोजना के भी मुहिम शामिल की गई। हरियाणा हरितिया कार्यक्रम (Green Haryana Programme) सन् 1970 के दशक में हरितिया कार्यक्रम लागू किया गया। इसके अन्तर्गत राज्यों तथा शहरों को हरि-परी

(d) हरितिया कार्यक्रम

एवं पशुचर्या मन्त्रालय द्वारा किया जाता है।

देकर पशुचर्या की समस्याओं के सार्थक समाधान में सहयोग कर सकें। इन वाहिनियों का समस्त व्यय केन्द्रीय वन के विविध पहलुओं से अवगत कराया जाता है जिससे सदस्य तथ्यात्मक रिपोर्ट अपने अध्यक्ष (जिलाधिकारी) को शामिल किया गया जिनकी संख्या 20 रही गई। सम्मेलनों व प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से पहले इनकी पशुचर्या सुनिश्चित किया, इनमें सदस्य विद्यार्थी, व्यवसायी, स्वयंसेवी संस्थाओं के सदस्य व अन्य जागरूक व्यक्तियों को देश के विभिन्न राज्यों के 100 जिलों में इनका गठन किया, जिन्हें जिलाधिकारी की अध्यक्षता में कार्य करना 1992-93 में केन्द्रीय पशुचर्या विभाग द्वारा 'पशुचर्या वाहिनियों' का गठन किया गया। कार्यक्रम के प्रथम चरण में पशुचर्या संरक्षण, सुधार तथा पशुचर्या प्रदूषण के कारणों से आम जनता को जोड़ने के उद्देश्य से सन्

(c) पशुचर्या वाहिनियों

श्रीमती निम्नलिखित

करने वाली एजेंसियाँ हैं। यह 'डको मार्क' निरवय ही बाजार में पशुचर्या जागरूकता लाने की दिशा में प्रभावी अपेक्षित मानक अधिभूषित किए गए हैं। भारतीय मानक ब्यूरो/बिहू तथा निरीक्षण, निर्देशालय इस योजना को लागू कराया, वृत्त, मकान-निर्माण में प्रयुक्त घुँट और कपड़े धोने के साबुन के मामले 'डको मार्क' लेबल देने के लिए व्यवस्था शुरू की गई है। इस लेबल के लिए 19 प्रकार के उत्पादों को चुना गया है। नहाने के साबुन, डिटरजेंट, पशुचर्या के अन्तर्गत उपभोग्य वस्तुओं की पृथक् पहचान के उद्देश्य से 'डको मार्क' लेबल लाने की

(b) डको मार्क

लिए भी आवश्यक किये जा रहे हैं। सप्ती राज्य प्रदूषण नियन्त्रण बोर्डों की विनियमन की गई है।

नामक एक सॉफ्टवेयर पैकेज तैयार किया गया। इसके साथ ही इन अभिलेखों में प्रस्तुत सूचनाओं के विश्लेषण के औद्योगिक इकाइयों को पशुचर्या सम्बन्धी अभिलेखों की तैयारी करने में सहायता प्रदान करने हेतु पशुचर्या

(a) पशुचर्या पर सॉफ्टवेयर

प्रदूषण नियन्त्रण नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्रम भी प्रारम्भ किए गए हैं-

आदेश निकाला था।

के प्रमुख सचिव को आई हथों लिया तब जाकर दिल्ली सरकार ने 17 नवम्बर को इन इकाइयों को बन्द करने का तक के लिए बड़ा दिया था। इसके बावजूद कुछ न होने पर 14 नवम्बर, 2000 को सूर्यम कोर्ट ने दिल्ली सरकार जनवरी, 1997 तक का समय दिया था। परन्तु प्रशासन द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की जाने पर इसे 31 दिसम्बर, 1999 श्रमिक, व्यापारी व नौका इसके विरोध में सहकारों पर आ गए। सन् 1996 में भी सूर्यम कोर्ट ने यह आदेश दी थी और से हटाने का आदेश दिया। इस को लेकर दिल्ली में 20-21 नवम्बर, 2000 को बड़ा आन्दोलन शुरू हो गया। लाखों सूर्यम कोर्ट ने दिल्ली की आबादी वाले क्षेत्रों में स्थित लगभग 1 लाख औद्योगिक इकाइयों को निवासी क्षेत्रों

प्रकार के नशी तैयार हो चुके हैं।

गाजियाबाद (उ.प्र.), पंचमहल (गुजरात), मैसूर (कर्नाटक), सुदूरगढ़ (उड़ीसा), सिहभूम (झारखण्ड) के लिए इस

नोट

एनिलीसिक परिशेष में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

(h) पॉलिथीन की शैलियाँ पर प्रतिबन्ध
 पॉलिथीन की शैलियों से होने वाले प्रदूषण के महानजर दिल्ली सरकार ने 2 दिसम्बर, 1999 को एक बिल पारित किया जो 24 दिसम्बर, 1999 को प्रभावी हुआ। इसके अन्तर्गत रंगीन पॉलिथीन शैलियाँ पूरी तरह प्रतिबन्धित कर दी गई हैं। केवल माइक्रोन वे माटे सफेद शैल ही इस्तेमाल होंगी। इन्हें भी खाद्य सामग्री के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। प्रतिबन्ध तोड़ने पर 10,000 से एक लाख रुपये तक जुर्माना हो सकता है और पांच वर्ष तक की जेल हो सकती है। पन्चु बिल केवल पुनर्विक्रय एग्रीस्ट्रक तक ही सीमित है।

कम्यूनिटी न्यूक्लियस (सीएनजी) का विकास वैकल्पिक ईंधन के रूप में किया गया है, जिसका माटेकराई के ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाएगा। 15 अगस्त, 1995 को नई दिल्ली में सीमित पैमाने पर इस वैकल्पिक ईंधन के प्रयोग का शुभारम्भ किया गया। कम्यूनिटी न्यूक्लियस (CNG) के प्रयोग के लिए कार में एक अतिरिक्त टिकट लगाना पड़ता है, जिसकी प्रकिया अत्यन्त सरल एवं न्यूनतम मूल्य स्तर की है। दिल्ली सरकार ने आश्वासन दिया है कि CNG आधारित तिपटिया वाहनों को बिकी कर में छूट दी जाएगी और ब्याज दर में भी छूट दी जाएगी ताकि इनका उपयोग अधिकतम हो सके।
 इन्टरप्रिक्स गैस लिमिटेड (IGL), न्यू दिल्ली द्वारा बनायी गई CNG फिट का मूल्य दिसम्बर 30, 1999 को 30,000 रुपये रखा गया है। इसके प्रयोग से प्रदूषण नहीं होता है तथा कार के ईंधन में 50% बचत होती है। फिट लगाने पर भी CNG या पेट्रोल किसी भी ईंधन का उपयोग किया जा सकता है।

देश के शहरों का वायु-स्तर सुधारने के उद्देश्य से माटेर गैसोलिन तथा डीजल जैसे वाहनों में प्रयुक्त होने वाले ईंधन में सुधार लाने के लिए एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम शुरू किया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सर्वप्रथम 1 अप्रैल, 1995 में चार महानगरों-दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता और चेन्नई में चुने हुए पेट्रोल पम्पों पर माटेरवाहनों में सीसा रहित पेट्रोल का प्रयोग आरम्भ किया गया। 1 अप्रैल, 1996 से देश के सभी पेट्रोल पम्पों पर कम सीसा वाला पेट्रोल (प्रति लीटर 0.15 ग्राम सीसा) उपलब्ध कराया जा रहा है। इस प्रकार के पेट्रोल का प्रयोग उन्हीं वाहनों में किया जा सकता है, जिनमें कैटेलेटिक कन्वर्टर लगा हुआ है। इससे वाहनों से होने वाले प्रदूषण को 50 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। अभी तो आयातित कैटेलेटिक कन्वर्टर का उपयोग किया जा रहा है, किन्तु शीघ्र ही 'नेशनल इन्वायर्समेन्टल इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट' द्वारा विकसित स्वदेशी कन्वर्टर का प्रयोग भी शुरू हो जाएगा, जो सस्ता होगा। 1 अप्रैल, 1996 से ही चारों महानगरों में 0.5 गन्धक वाला डीजल उपलब्ध कराने की योजना भी शुरू हो गई है। 15 अगस्त, 1997 से 0.25% सल्फर वाला डीजल दिल्ली में भी उपलब्ध हो गया। राजधानी दिल्ली में सड़क पर वाहनों से होने वाले प्रदूषण को नियन्त्रित करने के लिए एक 'वाहन प्रदूषण नियन्त्रण मिशन' भी प्रारम्भ किया गया है।

(g) सीसा-रहित पेट्रोल एवं कैटेलेटिक कन्वर्टर
 जाता है।
 कार्बकमी, व्याख्यानों, जल में प्रदूषण को जांच आदि सरल वैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से कार्या (4) इकी क्लर्बों के सदस्यों को पर्यावरण संरक्षण और परिरक्षण का ज्ञान दृश्य-श्रव्य उपकरणों, प्रशोचनी उपलब्ध कराई जा रही है।
 (3) इन क्लर्बों में छात्रों को प्यजल तथा वायु के नमूनों की जांच करने के लिए पाठ्य-सामग्री और फिट क्लर्ब स्थापित किए गए हैं।
 (2) विद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों को पर्यावरण के सम्बन्ध में जागरूक बनाने के लिए 2,000 विद्यालयों में इकी

(1) जीवन के रचनात्मक दौर में किशोरों में पर्यावरण संरक्षण के लिए अनुकूल आदर्श डालने के लिए केन्द्र सरकार ने इकी क्लर्बों की एक महत्वपूर्ण योजना आरम्भ की है।

नीचे
 में सामाजिक नीति का
 एतेहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत
 में सामाजिक नीति का
 नीतियां उद्देश्यकाम

- जल स्रोतों को प्रदूषण से बचाए, पीने के लिए शुद्ध जल का प्रयोग करें।
- औद्योगिक विकस एव नगरीकरण के लिए नवीं का विनाश सोकें।
- ऊर्जा के लिए पर्याप्त विद्युत पदाथी एवं लकड़ी के विकल्प तलाशें, जैसे-सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, ताप ऊर्जा, जल ऊर्जा एवं प्राकृतिक गैस इत्यादि जो सस्ते एवं पर्यावरणीय दृष्टिकोण से दीर्घकालिक हैं।
- खाली स्थानों, मकानों, सड़कों के किनारों पर अधिक-से-अधिक वृक्षारोपण करें।
- अपने घर, महल्लों, नगर, गांव एवं शहर का वातावरण स्वच्छ एवं सुन्दर रखें।
- स्वच्छि प्रदूषण न करें उसे वातावरण का माध्यम रहने दें।

ही पर्यावरण संरक्षण में योगदान भी देंगे-

पर्यावरण को संद्विषित करने वाले कारक कौन हैं यह प्रश्न उत्तरना जरूरी नहीं है जितना जरूरी है कि एक आम आदमी कैसे पर्यावरण संरक्षण में अपना सहयोग दे सकता है, क्योंकि पर्यावरण संरक्षण के लिए सरकारी प्रयासों के बावजूद भी आम नागरिक की सहभागिता अत्यन्त आवश्यक है तथा सही मायने में हम पर्यावरण संरक्षण के लिए बलपूर्वक जा रहे अभियान को सफल मार्गों पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित कुछ तथ्य वर्णित हैं जिनका पालन प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए। ऐसा करते हम अपने पर्यावरण को प्रदूषण से होने वाली असीम क्षति से बचा सकते हैं एवं पर्यावरण की पीढ़ी के लिए एक सुन्दर एवं स्वच्छ पर्यावरण को संरक्षित रख सकते हैं। पर्यावरण संरक्षण में जनसामान्य को निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए जिससे वह पर्यावरण के प्रति अपनी भूमिका को निर्वाह कर सकेंगे साथ

पर्यावरण संरक्षण में जनसामान्य की भूमिका

पर्यावरण के संरक्षण के लिए संविधान में प्रावधानों, अधिनियमों एवं कानून निर्माण के अलावा जो सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है वह है पर्यावरण संरक्षण के प्रति लोगों में जागरूकता पैदा करना, लोगों को पर्यावरणीय प्रदूषणों से हो रहे हानिकारक प्रभावों की सम्पूर्ण एवं विस्तृत जानकारी देना। पर्यावरण संरक्षण के लिए जागरूकता को एक अभियान के रूप में विकसित करना होगा जिसके विभिन्न पक्ष होने चाहिए, जैसे-सोचनगर, संगोष्ठी, प्रशिक्षण कार्यक्रम, प्रदर्शनी, प्रतियोगिताओं का आयोजन, शिक्षण संस्थाओं, गैर-सरकारी संस्थाओं एवं समाज सेवा संगठनों द्वारा पर्यावरण जागरूकता के विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन, पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता एवं पर्यावरण जागरूकता के संदर्भ में प्रचार-प्रसार सामग्री का निर्माण एवं वितरण इसके अलावा प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों, पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर लघु वृत्तचित्र, नाटक एवं फिल्मों का निर्माण करना। शहरों एवं गांवों में मुख्य स्थलों पर बड़ी-बड़ी बोर्डिंग लगाना, समाचार-पत्रों में पर्यावरणीय लेखों का प्रकाशन, दूरदर्शन एवं आकाशवाणी के माध्यम से पर्यावरण जागरूकता एवं संरक्षण से सम्बन्धित विषय पर सानवर्द्धक एवं टीविक जानकारी का प्रसारण करना। ये समस्त कार्य निरविरत रूप से पर्यावरण संरक्षण में अपनी अहम भूमिका को निर्वाह कर सकते हैं और भावी पीढ़ी को एक सुन्दर एवं स्वच्छ वातावरण प्राप्त कर सकते हैं।

3.35 पर्यावरण संरक्षण-जन-सामान्य की भूमिका एवं पर्यावरण जागरूकता (Environment Protection—Peoples Role and Environment Awareness)

जल एवं वायु-प्रदूषण के मूल्यांकन, निरीक्षण और नियन्त्रण के लिए उच्चतम राष्ट्रीय संस्था है **केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड**। इस बोर्ड पर 1974 के जल-प्रदूषण की रोकथाम और नियन्त्रण अधिनियम, 1981 के वायु-प्रदूषण की रोकथाम और नियन्त्रण अधिनियम तथा 1977 के जल उपकरण अधिनियम को विकसित करने का दायित्व है। 23 राज्यों और संघशासित प्रदेशों में इस अधिनियम को अपना लिया है और इस राज्यों में प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड गठित किए जा चुके हैं। 1986 के पर्यावरण संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड का कार्य-क्षेत्र और विस्तृत हो गया है। इसके अन्तर्गत 61 उद्योगों के मामलों में निस्सुन और उत्सर्जन के मानक अधिसूचित किए गए हैं। 84 प्रयोगशालाओं को पर्यावरण सम्बन्धी प्रयोगशालाओं के रूप में मान्यता दे दी गई है।

(?) केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड

नीचे

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

विश्व की वर्तमान शासन प्रणाली में राजकीय व्यवस्था द्वारा अपनी जनता के कल्याण व मूलभूत सुविधाओं के लिए योजनाएं तैयार व क्रियान्वित की जाती हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि इन योजनाओं का समुचित लाभ कतिपय कारणों से जनता तक नहीं पहुँच पाता है। परिणामस्वरूप जनता में असन्तोष व राजकीय व्यवस्था के प्रति शोध रहता है जो दूसरी तरफ राजकीय व्यवस्था भी अपनी असफलता से क्षुब्ध रहती है। इस स्थिति को ही अराजकीय अवस्था स्वयंसेवी संस्थाओं की उत्पत्ति के रूप में देखा जाता है। सामान्यतः अराजकीय संस्थाएँ (Non-govern-

पुर्वापर संरक्षण में स्व-सहयोग समूहें अथवा स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका

पुर्वापर संरक्षण का बुनियादी लक्ष्य प्राकृतिक संसाधनों के मानवीय उपयोग के प्रबन्धन से है ताकि वर्तमान पीढ़ी के लिए दीर्घकालीन लाभ प्राप्त हो सके एवं भावी पीढ़ी को भी लाभ प्राप्त हो सके। इसमें पुर्वापर संरक्षण के अलावा मानव की भागीदारी एवं पुर्वापरण जागरूकता का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होता है। पुर्वापरण संरक्षण किया जा सकता है, क्योंकि पुर्वापरण प्रदूषित नहीं किया गया है मानव द्वारा, इसका समाधान एवं संरक्षण भी मानव ही कर सकता है। मानव को प्रकृति के साथ तारतम्य बनाकर चलना होगा तथा पृथ्वी पर जीवन की अवधारणाएँ सही रूप में फलीभूत हो सकेंगी।

पुर्वापरण एवं वन मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा पुर्वापरणीय जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से 'पुर्वापरण वन तथा वन्य जीवों के परिक्षण के लिए लोगों को शामिल करने हेतु एक अभियान के रूप में 'पुर्वापरण वाहिनी' का गठन किया गया है। राष्ट्र स्तर पर पुर्वापरणीय जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से भारत सरकार के पुर्वापरण एवं वन मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा पुर्वापरणीय जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से पुर्वापरण, अन्तर्गत उल्लेखन करने वाले की शिक्षापरत मानवीय न्यायपाल्य में कर सकता है।

अधिनियम के अन्तर्गत सामान्य नागरिक को भी यह अधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत उस उद्योग की बिजली, पानी एवं अन्य सेवाओं को तत्काल प्रभाव से बन्द किया जा सकता है। इस के लिए खराब बन गई हो, को बन्द करने, नियमित करने अथवा प्रतिबन्धित करने का अधिकार दिया गया है। इसके अलावा सरकार को पुर्वापरण सुरक्षा हेतु किसी भी ऐसे उद्योग या इकाई को जिसकी गतिविधि पुर्वापरण सुरक्षा की सजा अथवा एक लाख रुपये तक जुर्माना अथवा दोनों ही दिया जा सकता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत में प्रावधानों के उल्लेखन होने की स्थिति में कड़े दण्ड का प्रावधान किया गया है। प्रथम बार उल्लेखन पर पाँच वर्ष पुर्वापरण के संरक्षण के लिए पुर्वापरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 की स्थापना की गई थी। इस अधिनियम के अन्तर्गत एक सामान्य आदर्शी पुर्वापरण के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

इस प्रकार एक सामान्य आदर्शी पुर्वापरण के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

- लोगों में पुर्वापरण के प्रति जागरूकता फैलाने एवं प्रदूषण से होने वाले पुर्वापरणीय प्रभावों के प्रति सचेत बनाने की रक्षा करें।
- जानवरों एवं कपड़ों को नदी में न धोएँ।
- घरों का कूड़ा-करकट एवं गन्दगी पानी में न मिलाने।
- बैरिक खार एवं जैव कीटनाशकों का प्रयोग करें।
- रासायनिक खादों एवं रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग से बचें।
- समस्त जीव-जन्तुओं की सुरक्षा में योगदान दें।
- शहरीकरण पर रोक में सहयोग करें।
- प्रभाव पड़ता है।
- जनसंख्या वृद्धि में कमी करें, क्योंकि जनसंख्या वृद्धि का हमारे प्राकृतिक संसाधनों एवं पुर्वापरण पर सीधा
- उद्योगों को प्रदूषण रहित संयंत्रों की स्थापना के लिए प्रोत्साहित करें।
- वाहनों की नियमित सौकरा एवं उचित रखरखाव कर वायु प्रदूषण को कम करें।
- लाउडस्पीकरों व हॉर्न का अधिक अव्यवकता पर ही प्रयोग करें।

नीचे

पारिस्थितिक परिदृश्य में भागीदारी के लिए प्रोत्साहित करें।

वाटरशेड कार्यक्रम जल संरक्षण एवं प्रबन्धन कार्यक्रम से संबद्ध है तथा स्थानीय पर्वतारोह प्रबन्धन का अंग है। वाटर शेड (जल ग्रहण) एक भूजलीय इकाई है जिसमें जल बहकर एक स्थान पर आता है। देश में पारिस्थितिकीय व्यवस्था, पर्वतारोह, स्थिरता तथा सक्षमता को प्रभावित होने से बचाने के लिए समन्वित बजट भूमि

वाटरशेड विकास

3.36 वाटरशेड विकास कार्यक्रम एवं संयुक्त वन प्रबन्धन (Watersheds Development Programme and Joint Forest Management)

में विशेष महत्व के हैं। अपनी पहचान बना चुकी है। इसमें 'तटल मारत संघ' नामक स्वयंसेवी संघ के कार्य परम्परागत जलस्रोतों के संरक्षण गुजरता आदि ग्रामों में सक्रिय स्वयंसेवी संगठनों की सफल भूमिका राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर में राष्ट्रीय पर्वतारोह जागरूकता अभियान संघालित करने में लिया। जल संग्रहण के क्षेत्र में विशेषकर राजस्थान, पर्वतारोह शिक्षा केन्द्र इसका उदाहरण है जिसकी कार्यक्षमता व दक्षता का लाभ सरकार ने सन् 1986 में सारे देश में पर्वतारोह शिक्षा के माध्यम को सशक्त व परिवेश सापेक्ष बनाने में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। गुजरात का स्वच्छ, हरीतिमा विस्तार आदि कार्यों को जनता के सहयोग से गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा संघालित किया जा रहा है। काफी परिवर्तन स्वयंसेवी संस्थाएँ करने में सफल रही हैं और आज देश के शहरी क्षेत्रों में कूड़ा-कचरा निपटान, का महत्व तो यह जानते हैं लेकिन उनके संरक्षण व प्रदूषक नियन्त्रण को प्रशासन का कार्य समझते हैं। इस स्थिति गुलना में अधिक प्रभावी बना सकते हैं। शिक्षित शहरी लोगों में भी पर्वतारोह जागरूकता का अभाव है। पर्वतारोह है जब उनकी प्रकृति की हरीतिमा का महत्व सूझ में आ सके। इस कार्य को स्वयंसेवी संगठन, सरकारी तन्त्र की जब कार्यक्रमों की स्थानीय आवश्यकता व आर्थिक उद्योग के साथ जोड़ा जाए। ऐसी स्थिति तब पैदा हो सकती लिए कोई महत्व नहीं है। वन संरक्षण व संवर्धन के कार्यों में जनता की भागीदारी तथा सुनिश्चित हो सकती है। का सहारा है, और उन्हें जलाकर वे भोजन पका सकते हैं, ऐसी स्थिति में वनीकरण व वृक्षारोपण कार्यों का उनके का अर्थ व महत्व ही पता नहीं है, उनके लिए पढ़ें इसलिए महत्वपूर्ण है कि छाया दे सकते हैं। दो जून की योटी संस्थाओं की भूमिका प्रभावी मानी जाती है। हमारे देश में जहाँ आज भी 60 प्रतिशत जनता ऐसी है जिसे पर्वतारोह बीच जाते हैं। जनता उनके कार्यक्रमों को अपने हित में मानकर सहयोग करती है। पर्वतारोह संरक्षण के क्षेत्र में इन जानते-समझते हैं। अपनी पहचान बनाकर उनका विरवास प्राप्त करते हैं और फिर अपनी योजना लेकर जनता के स्थानीय जनता के मध्य घुलमिल जाते हैं। वहाँ की संस्कृति, सामाजिक परम्पराओं, मान्यताओं और जन-विरवास को स्वयंसेवी संगठनों की सफलता के मूल में इनकी कार्यप्रणाली है। ये संगठन अपने लक्ष्य को निर्धारित कर में महत्वपूर्ण भूमिका है।

संस्थाओं की संख्या हमारे देश में 340 के लगभग है। इन संस्थाओं की पर्वतारोह, शिक्षा, चेतना तथा जन-जागृति गैर-सरकारी संगठनों की प्रभावी व सहाय्य भूमिका रही है। पर्वतारोह के विविध आयामों पर कार्यरत स्वयंसेवी विभिन्न ग्रामों में शिक्षा, ग्रामीण विकास, जैव-विविधता, विज्ञान लोकप्रियकरण व पर्वतारोह संरक्षण के क्षेत्रों में व भूमिका काफी बड़ी है। जनता के लाभ कार्यों में इनकी विरवसनीयता को स्वीकार किया गया है। हमारे देश की गई है और इनको एक आवश्यक अंग के रूप में माना जाता है। हमारे देश में वित्त 30-40 वर्षों में इनकी संख्या विरव के विकसित देशों में गैर-सरकारी संगठनों की विकास कार्यक्रम में 60 प्रतिशत तक भागीदारी पाई निर्धारित करती है। कई संस्थाएँ विविध कार्यों को भी करने में अपने संगठनात्मक रूप के कारण सक्षम होती हैं। जा सकता है कि वे अपने परिवेश की समाज व्यवस्था के हित के किसी एक बिन्दु को चयनित कर अपना लक्ष्य जनता की अपेक्षाओं, आकांक्षाओं व आवश्यकताओं को सरकार तक पहुँचाना। इनके कार्यक्षेत्र के बारे में इनका कहा जा रहा है। इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली में प्रमुख होना है, सरकारों की योजनाओं को जनता तक पहुँचाना और संस्थाएँ होती हैं जिनमें विविध क्षेत्रों के रक्ष लोग यथा वित्तीय, विधिवत, इंजीनियर, वैज्ञानिक, शिक्षाविद् आदि mental Organisation) या स्वयंसेवी संस्थाएँ (Voluntary Organisation) जनता के लोगों में से ही बनी

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

इन्वॉल्वमेंट एजुकेशन, पटना, एकलव्य, होशंगाबाद, मध्य प्रदेश आदि महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। जल संग्रहण और प्रदान की जाती है। पृथ्वीवरीय शिक्षण के क्षेत्र में पृथ्वीवरीय शिक्षण व शोधकेंद्र, पूना, ईस्ट वेस्ट सेन्टर फॉर विषय के रूप में स्वीकृति दी गई। ग्रामीण स्तर पर 'बालवाहिनियाँ' के माध्यम से बच्चों को परिवेश की जानकारी आयोजित की गई जिसमें उत्तराखण्ड के जॉनियर हाईस्कूलों में उत्तराखण्ड सरकार द्वारा पृथ्वीवरीय शिक्षण को एंजिन्डर किया गया व 2,000 अत्याधुनिक सम्मिलित है। मई, 2001 में पृथ्वीवरीय शिक्षण पर एक राष्ट्रीय कार्यशाला भी केंद्र में माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा 6 से 8 तक पृथ्वीवरीय शिक्षण कार्यक्रम संवाहित किया जा रहा है। इसमें 2,00,000 में उत्तराखण्ड सेवानिवृत्त, पृथ्वीवरीय शिक्षण संस्थान सन् 1987 से कार्य कर रहा है। वर्तमान में उत्तराखण्ड के 2000 जलस्रोतों के संग्रहण व सन्निवृत्त जल का महत्वपूर्ण रक्षावाहन है। पाठ्यक्रम निर्माण व विद्यालय शिक्षण के क्षेत्र में अग्रिम में संलग्न है। सन् 1997 में प्रकाशित 'डायिंग विज्डम' (Dying Wisdom) देश के परम्परागत अपने प्रकारों, पीस्टो, स्लाइड, वीडियो कैसेट्स और उल्लेखनीय फिडलिटिस रिपोर्ट सीरिज के माध्यम से पृथ्वीवरीय संस्थान द्वारा शैक्षणिक किट भी विकसित किए जाते हैं। सन् 1982 से सेन्टर फार साइन्स एण्ड इन्वॉल्वमेंट, नई दिल्ली से ऊपर लीज इस केंद्र का प्रमाण करते हैं। यहाँ पर स्कूलों छात्रों के प्रमाण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। हिस्ट्री सन् 1978 से पृथ्वीवरीय वेतना व जागरूकता के कार्य में लगी है। एक अग्रिम के अनुसार प्रतिवर्ष 2 लाख उत्तराखण्ड पृथ्वीवरीय शिक्षण संस्थान, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड) आदि प्रमुख संस्थाएँ हैं। नेशनल म्यूजियम ऑफ नेचुरल एजुकेशन, नई दिल्ली, केंद्रल शास्त्र साहित्य परिषद, तिरुवनन्तपुरम, नेशनल म्यूजियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री, मुम्बई, अहमदाबाद (गुजरात), सेन्टर फॉर इन्वॉल्वमेंटल एजुकेशन (CIE), बैनई (तेलंगाना), सेन्टर फॉर इन्वॉल्वमेंटल विज्ञान परिषद, कोटा (राजस्थान), सेन्टर फार साइन्स एण्ड इन्वॉल्वमेंट (CSE), दिल्ली, पृथ्वीवरीय शिक्षण केंद्र, पृथ्वीवरीय शिक्षण, वेतना व जागरूकता के कार्यक्रमों के साथ देश में कार्यरत अनेक विशिष्ट संस्थाएँ हैं।

संस्थाएँ

पृथ्वीवरीय शिक्षण, वेतना व जागरूकता, वन संरक्षण और जल संग्रहण के क्षेत्र में कार्य कर रही अग्रणी साधक प्रयास किंचित जाएँ तो वन संरक्षण और अनातः पृथ्वीवरीय संरक्षण में वांछित सफलता प्राप्त की जा सकती है। विकासखण्ड को इकाई मानकर नियोजित ढंग से सरकार एवं स्वयंसेवी संस्थाओं तथा पंचायती राज संस्थाओं द्वारा के बारे में लोगों को शिक्षित करने में सरकारात्मक भूमिका निभा सकती है। यदि एक ग्राम समूह अथवा एक समूह है। साथ ही ये स्वयंसेवी संस्थाएँ, पुराने, हरे वृक्षों को बचाने तथा उन्हें काटे जाने से रोकने में व वन संरक्षण पर वृक्षरोपण एवं उनके रख-रखाव का कार्य पंचायती राज संस्थाएँ तथा स्व-सहयोग समूह अच्छी तरह सम्पन्न कर पंचायत धरों, सड़कों के किनारे, विकल्पालयों, बस स्टैंड एवं रेलवे लाइनों के किनारों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों कार्य कर उसके संरक्षण एवं रक्षण की व्यवस्था रानी चाहिए जबकि सार्वजनिक स्थल-यथा-विद्यालयों, अग्रिमयान चलाना जा रहा है। सरकार द्वारा विलेन हुए जंगलों को सघन बनाने, बजार पड़ी भूमियों में वृक्षरोपण का अतिरिक्त ऊँचि वारिकी एवं मरुस्थलीकरण को रोकने के लिए राज्य सरकारों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा वृक्षरोपण में पृथ्वीवरीय एवं वन प्रबन्धन में स्व-सहयोग समूह प्रभावी भूमिका निभा रहे हैं। भारत में भी सामाजिक वारिकी के वन प्रबन्धन में राज्य एवं स्व-सहयोग समूहों की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। विषय के विकसित देशों

- (xiii) सामुदायिक वनों का विकास आदि।
- (xiv) वन संरक्षण तथा सर्वजन कायाँ में जन-सहभागिता।
- (xv) संकटग्रस्त प्राय पृथिवी के संरक्षण के समुचित उपाय।
- (xvi) वृहत् परिचयाना स्थलों के वन से पूर्व वन विनाश का आकलन।
- (xvii) से लागू करना।
- (xviii) वनों को अवैध कटने पर प्रभावी रोक के लिए अधिक वारिकी तथा वन संरक्षण कानूनों का कड़ाई।
- (xix) देश के लिए वनों पर निर्भरता घटाने हेतु वैकल्पिक साधनों का विकास।
- (xx) पुनर्वनारोपण।
- (xxi) सघन वनों में मानवीय हस्तक्षेप पर रोक (कृषि, पशुचारण, खनन आदि)।
- (xxii) वनों का नियमित सर्वेक्षण तथा संरक्षण कानूनों का मूल्यांकन।

टीका

परिहासिक परिग्रहण में भारत में सामाजिक नीति का निर्माण उर्विकस

नीति

संरक्षण के क्षेत्र में तेलुगु भारत संघ अलवर (राजस्थान) का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। संस्था के भारत संघ' द्वारा सन् 1985 से अब तक 4,500 जोहड़ (छोटे बांध) राजस्थान के 11 जिलों में बनाए गए हैं। सबसे वामनामिक कार्य है सूख चुकी अरवली नदी को पुनः जन्दा करना, जब क्षेत्र में 350 जोहड़ बने तो अरवली नदी प्रवाहित होने लगी। आज पूरा क्षेत्र हरियालीमय है और खेती यहाँ आकर्षक व्यवसाय है। परम्परागत जल संग्रहण की 'जोहड़ परम्परा' के सफल प्रयोग के लिए राजर्क्षसिंह को जोहड़ बाले बाबा भी कहा जाता है।

गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में 'सौराष्ट्र लोकमंच' के यशामजी भाई विगत दो दशकों से सूखे कुओं को रिवाज करने में लगे हैं। उन्नीस क्षेत्र के तकरीबन 3 लाख कुएँ रिवाज कर दिए हैं और अपनी इस मुहिम को उन्नीस सारे सौराष्ट्र में गाव-गाव तक पहुँचाया है। इसके अतिरिक्त गुजरात के अन्य क्षेत्रों में 'वृक्ष प्रेम सेवा ट्रस्ट', 'श्री कुण्डला लागुका सेवा मण्डल' आदि संस्थाएँ भी उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं। बिहार के सोनभद्र जिले में 'वनवासी सेवा आश्रम' क्षेत्र के सैकड़ों गावों में पानी संग्रहण कार्यों में लगा है। पलामू जिले में 'पानी बचाना मंच' के कार्य भी पानी सम्पत्ता सम्पादन में सफल रहे हैं, इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश में भी कई संगठन इस पुनीत कार्य में लगे हैं।

वन संरक्षण के क्षेत्र में दशोली ग्राम स्वराज्य संघ, गोंडखर में गोंगी ग्राम स्वराज्य संघ उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड द्वारा सन् 1972-73 में चलाए गए 'विपकी आन्दोलन' को विषय मंच में पहचान मिली है। इस आन्दोलन से सरकार को अपनी वन नीति बदलनी पड़ी और कटले वनों को बचाया जा सका। इसी की तर्ज पर 'एफिको आन्दोलन' (कर्नाटक 1983) दक्षिण में परिषद घाट के वनों को बचाने के लिए चलाया गया। सन् 1979 में कैरल के वन्य जीवों से भरे सघन जंगल क्षेत्र- 'साइलेंट वैली' में सरकार द्वारा एक जल विद्युत परियोजना लागू करने की योजना बनाई तो 'साइलेंट वैली सुरक्षा समिति', नामक संस्था ने इसका विरोध पथप्रदर्शनीय दृष्टि से करते हुए निरस्त करवाया। राजस्थान में वृक्षारोपण के कार्य में 'वृक्ष बाओ', बरसात लाओ' के नारे के साथ विगत चार दशकों से लगे हैं- प्रेमजी भाई पटेल। उत्तराखण्ड में वृक्षारोपण के क्षेत्र में कार्य कर रही 'पैती', संस्था भी उल्लेखनीय कार्य कर रही है जिसमें शादी-ब्याह संस्कारों में कार्यक्रम को जोड़ते हुए 'पैती बहनें' अपनी जन्मस्थली में विवाह के दौरान वृक्षारोपण कार्य सम्पादित करती है, इस कार्यक्रम को मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान के अलावा विदेशों यथा चीन, फ्रांस आदि देशों में मान्यता मिल रही है।

दी पीपुल्स कमीशन ऑन एनवायरमेंट एण्ड डेवलपमेंट

पथावलीय समस्याओं के साक्षक और समुचित समाधान में स्थानीय परिवेश के भूगोल, जीवन शैली आदि विकसित की जा सकती है। इस विचार के दृष्टिकोण सर्वप्रथम सन् 1990 में दिल्ली में अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं ने मिलकर एक फोरम गठित किया जिसे दी पीपुल्स कमीशन ऑन एनवायरमेंट एण्ड डेवलपमेंट का नाम दिया गया। संस्था पूरे भारत के पथावलीय की वर्तमान स्थितियों की सम्पूर्ण जानकारी के लिए स्थान-स्थान पर लोगों से जाकर मिलती है और सम्पर्क के आधार पर अपना पथावलीय प्रतिवेदन तैयार करती है। संस्था का मुख्य उद्देश्य यह है कि इन अल्पवर्गीयों के निष्कर्षों पर ही देश के पथावलीय संरक्षण, सुधार तथा सुरक्षा की योजनाएँ बनें और क्रियान्वित किये जाएं।

3.37 शहरी एवं ग्रामीण विकास, आवास तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, महिला, युवा एवं क्षीय कार्यक्रम (Urban and Rular Development, Housing and Poverty Alleviation Programme, Woman, Youth and Regional Programme)

ग्रामीण विकास की रणनीति (Strategies of Rural Development)

देश में आर्थिक विकास के जो भी कार्यक्रम बने हैं उनका मुख्य उद्देश्य गरीबी उन्मूलन का है। देखा जाये तो देश के सम्पूर्ण भू-भाग का तीन-चौथाई भाग गाँवों का है और गाँवों में बहुसंख्यक लोग गरीबी की रेखा के नीचे

नोट

है। ऐसी स्थिति में यदि हम गरीबी को कम करना चाहते हैं या इसका उन्मूलन करना चाहते हैं तो हमारे विकास कार्यक्रमों का केन्द्र गाँव होने चाहिए। इसी कारण केन्द्र में ग्रामीण विकास मंत्रालय को नया नाम **ग्रामीण रोजगार और गरीबी उन्मूलन (Rural Employment and Poverty Alleviation)** दिया गया है। इस मंत्रालय का मुख्य उद्देश्य बढ़ती हुई बेरोजगारी और गरीबी को हटाना है। गाँवों में कुछ नई योजनाएँ बनी हैं। ये योजनाएँ आर्थिक उपार्जन के लिए हैं। इनमें मुख्य रूप से जवाहर रोजगार योजना, रोजगार बीमा योजना, समन्वित विकास कार्यक्रम और समन्वित है। ग्रामीण विकास के लिये क्षेत्रीय विकास होना चाहिए, ये मूल्य सुधार लागू करना चाहिए, आवास व्यवस्था का कार्यक्रम होना चाहिए और इसके अतिरिक्त पीने के शुद्ध पानी और परिवारण होना चाहिए। यहाँ हम कुछ ऐसे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को उल्लेख करेंगे जिस केन्द्र और राज्य सरकारें चला रही हैं। ये कार्यक्रम इन्डिया ग्रैन्टी में 20 सूची (Twenty Point) कार्यक्रम के अनुसार चलाने हैं।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम (Poverty Alleviation Programme)

1. समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme)

पिछले वर्षों का विकास का अनुभव हमें बताता है कि भारतीय गाँवों का विकास समन्वित रूप से होना चाहिए। गरीबी पर हमला एक तरफ नहीं बहुत तरफा होना चाहिए। समन्वित विकास कार्यक्रम गरीबी दूर करने का सशक्त कार्यक्रम समझा जाता है। इसके तीन बड़े तत्व हैं—(1) गरीब परिवारों की पहचान, (2) गरीबी निवारण के लिए उपलब्ध संसाधन, और (3) धन का निवेश कितने समय के लिए हो सकता है, उसकी योजना। यह योजना चाहती है कि एक निश्चित अवधि में कुछ परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर लाया जाये। यह कार्यक्रम सबसे पहली बार 1976 में लागू किया गया था।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का लेखा-जोखा स्वयं सरकार, विश्व बैंक तथा समाज वैज्ञानिकों ने किया है। ये सर्वश्रेष्ठ राजस्व, गुजरात, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश और कर्नाटक में किये गये हैं। जो कुछ निष्कर्ष निकले हैं उन्हें आशाजनक नहीं कहा जा सकता। विश्व बैंक भी कोई आधिक उल्लेख नहीं है। ऐसा लगता है कि यह कार्यक्रम सफल नहीं हुआ है, फिर भी सरकार का यह संवैधानिक कर्तव्य है और संशोधन के बाद इस कार्यक्रम को लागू करना तो निश्चित है।

2. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme)

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम 1976-77 में बनाया गया था। यह पूरी तरह से अश्वेत, 1977 में लागू किया गया। वास्तव में यह कार्यक्रम काम के बदले खोलान देने का था। और इसके अन्तर्गत जो कार्य अपनाये जाते थे वे तिक सहक, सिंचाई सुविधाओं में सुधार, पंचायत घर और स्कूल भवन निर्माण, स्वास्थ्य केन्द्र का निर्माण आदि सम्मिलित हैं। इस कार्यक्रम में कुछ कमियाँ दिखायी दीं और इसलिए सन् 1980 में इनमें सुधार किया गया। इसके अन्तर्गत उन ग्रामीण परिवारों को लिखा गया जो पूरी तरह से दिहाड़ी पर निर्भर थे और जिनके पास आय का कोई साधन नहीं था। यह कार्यक्रम सार्वजनिक कुओं के निर्माण पर जोर देता है। हरिजन क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा भी प्रदान करता है। इसके अन्तर्गत देश की आवश्यकता की पूर्ति के लिए सामाजिक बर्तिका पर भी जोर दिया जाता है।

3. ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (TRYSEM)

इस स्वरोजगार योजना को 15 अगस्त, 1979 में लागू किया गया था। इसका उद्देश्य यह था कि ग्रामीण क्षेत्र में युवाओं को कृषि, उद्योग तथा व्यवसाय में ऐसी कुशलता दी जाये कि वे अपने स्वयं के लिए रोजगार उपलब्ध कर सकें। यह कुशलता या प्रशिक्षण उन नवयुवकों को जो 18-35 वर्ष के उम्र समूह में थे और जो गरीबी की रेखा के नीचे थे, दिया जाता था। इसमें भी चयन करते समय अनुसूचित जातियों और जनजातियों को वरीयता दी जाती थी। एक तिहाई स्थान किसानों के लिए सुरक्षित थे। जब गरीबी की रेखा से नीचे वाले नवयुवक स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षण प्राप्त कर लेते हैं, तब उन्हें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत उत्पादन के साधन दिये जाते थे।

नोट

ग्रामीण नवयुवकों के लिए यह योजना बड़ी लाभदायक है। इसकी मुख्य कमी यह है कि यह बहुत सीमित लोगों को यह लाभ दे पाती है। इसके अन्तर्गत जो हुनर सिखाया जाता है वह बहुत निम्न स्तर का होता है। इसके लिए जो स्टूडेंट्स की रकम दी जाती है वह भी बड़ी अपर्याप्त है।

4. ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम

(Rural Landless Employment Guarantee Programme)
 इस कार्यक्रम का उद्देश्य सहस्रक रोजगार देना है। थोड़ा बहुत काम देकर इस कार्यक्रम के अन्तर्गत भूमिहीन लोगों को सामान्य धनराशि दी जाती है। यह कार्यक्रम राज्य सरकार चलाती है और इसमें इसे केन्द्र से भी समान सहायता मिलती है। श्रविकर बात यह है कि महाराष्ट्र को छोड़कर किसी और राज्य ने इस योजना को लागू नहीं किया।

5. जवाहर रोजगार योजना (Jawahar Rozgar Yojana)

इस योजना की घोषणा सन् 1989 में हुई थी। इस योजना का उद्देश्य प्रत्येक गरीब परिवार से कम से कम एक व्यक्ति को वर्ष में 50 से 100 दिन तक का काम दिया जायेगा। जहाँ तक सम्भव हो यह काम उसके गाँव में ही हो। कुल रोजगार में 30 प्रतिशत स्थियों के लिये आरक्षित है। इस योजना में वे योजनाएँ भी मिली दी गयीं जिनका उद्देश्य गरीबों को रोजगार देना था। इस रोजगार पर खर्च होने वाली सम्पूर्ण राशि का 80 प्रतिशत केन्द्र देती है। इसे पंचायतों के द्वारा लागू किया जाता है। यह योजना हमारी पूर्ण जनसंख्या के 46 प्रतिशत भाग को अपने अन्दर लेती है।

6. अन्त्याय कार्यक्रम (Antyodaya Programme)

इसका अर्थ है गरीबों को कठोर में आखिरी छोर पर खड़े लोगों को गरीबी से मुक्ति। यह कार्यक्रम ग्राम्य में केवल राजस्थान सरकार ने लागू किया था। इसका आरम्भ 1977 में हुआ। इस कार्यक्रम में प्रत्येक गाँव से पाँच सबसे अधिक गरीब परिवारों का चयन किया जाता है। इन परिवारों को आर्थिक सहायता दी जाती है। इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी कठिनाई गाँव के गरीब परिवारों की पहचान करना होता है। यह कार्य ग्रामसभा को दे दिया गया। चयनित परिवारों को खती करने के लिए भूमि दी जाती है, मसिक पेंशन दी जाती है। बैंक से सहायता दी जाती है और सम्भव हुआ तो सरकारी नौकरी दी जाती है। पेंशन की रकम 30 से 40 रुपये तक होती है। बैंक का कार्ड बनाना आदि खरीदने के लिए, गाय, भैंस, बकरी या सूअर के लिये दिया जाता है। गरीब परिवार यदि कोई छोटा-मोटा धंधा करना चाहता है तब इसके लिए भी बैंक आर्थिक सहायता देती है।

राजस्थान के प्रयोग को देखकर, कतिपय अन्य राज्यों ने भी इस कार्यक्रम को लागू किया है। उदाहरण के लिये, सन् 1980 में उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश ने भी अपने राज्यों में इसे प्रारम्भ किया। लेकिन इन तीनों राज्यों में इस कार्यक्रम का परिणाम सफल नहीं रहा। एक तरह से यह कार्यक्रम पूर्णरूप से असफल हो गया।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम की आलोचना (Criticism of Poverty Alleviation Programme)

योजना आयोग और अर्थशास्त्रियों ने सरकार की अर्थनीति को जो नया रूप दिया है उससे बहुत स्पष्ट है कि हम इस देश में समता लाना चाहते हैं। इस समता का मतलब है गरीब और अमीर के बीच की खाई को खिन्ना कम कर सकें उतना अच्छा है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर योजना आयोग ने केन्द्र और राज्य सरकारों की सहायता से कई विकास योजनाओं को लागू किया है। योजना केंसी भी हो निश्चित रूप से इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में गरीबों को सहायता करना रहा है। आज की स्थिति में ये योजनाएँ किसी भी अर्थ में कोई सफल कहानी नहीं बनाती। देश के राज्यों की उदात्तीकरण के बाद यानी 1991 के बाद आर्थिक स्थिति खस्ता है। विकास के लिए उसके खजाने में धन नहीं है। ऐसी अवस्था में ये योजनाएँ पूरी शक्ति से नहीं चलायी जाती। इन योजनाओं को कई आलोचनाएँ हुई हैं, इन्हें हम यहाँ रखेंगे—

(1) योजनाओं को प्रायः राजनीतियों के फिन्स पर छोड़ दिया गया है। लोगों की आवश्यकताओं का वैज्ञानिक पद्धति से कोई निर्धारण नहीं हुआ है। इस अभाव में योजनाएँ लागू नहीं हो पाती।

(2) योजनाओं को लागू करने के पीछे कोई सशक्त वैचारिकी काम नहीं करती। चुनावों को ध्यान में रखकर योजनाएँ चलायी जाती हैं।

यह सन् 1983 में था कि सरकार ने एक कमेटी बनाकर उसे यह काम दिया कि वह शहरों की आवास तथा विकास की समस्याओं को देखे और उनके लिये किसी योजना को रखे। यह एक टास्क फोर्स (Task Force) था। लेकिन सातवीं पंचवर्षीय योजना बनने तक इस कमेटी ने कोई सुझाव नहीं दिया और तब 1985 में सरकार ने नेशनल कमीशन ऑन अरबनाजीशन (National Commission on Urbanization—NCU) को गठित

(Urban Development Programme—Historical Background)

नगर विकास कार्यक्रम—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मुम्बई, हैदराबाद, दिल्ली और अहमदाबाद का है। वातावरण प्रदूषित है। कहते हैं प्रदूषण ने कालकाला को आहत कर दिया है और यदि यह सत्य है तो अब मौका बड़ रहा है, यहाँ का प्रदूषण जानलेवा है। यहाँ का पानी प्रदूषित है, हवा प्रदूषित है और कहना चाहिये सम्पूर्ण बड़ रही है। इस सब पर आत्म यह है कि प्रतिवर्ष गाँव के लोग बराबर शहरों में आकर बस रहे हैं। शहर का घनत्व 4 प्रतिशत की दर से विकसित हो रहे हैं और मजदूर बावत यह है कि शहरों में गंदी बस्तियाँ 8 प्रतिशत की दर से सन्वाई यह है कि हमने कभी भी शहरों के आयोजन के लिये कोई योजनाएँ नहीं बनायीं। बड़े शहर प्रतिवर्ष गंदी गाली से सिसते हुए पानी को पीते हैं।

लिए कुछ भी नहीं होता। सामाजिक स्वास्थ्य पूर्णरूप से अनुपस्थित होता है। ये लोग अंधेरे में रात गुजारते हैं और महानगरों में लाखों लोग गंदी बस्तियाँ और झुग्गी-झोंपड़ी में रहते हैं। इन लोगों के पास गनी और सटी से बचने के साथ रहते हैं, तो मुम्बई जैसे शहर में 40 लाख लोग फुटपाथ पर रात गुजारते हैं; दिल्ली, चेन्नई, कोलकाता जैसे अदभुत है। हमारे यहाँ गगनचुम्बी (Skyscraper) मकान हैं जिसमें धनाढ्य लोग संसार की सम्पूर्ण विलासिता के शहरों में भी रहते हैं। देखा जाये तो शहरों के साथ आयोजकों का धेदभावपूर्ण रवैया रहा है। शहर का दृश्य बड़ा में कम्बू है, शहर है, नगर है और महानगर है। यह यहाँ 74.27 प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं तो 25.73 प्रतिशत मार सकता। इस तरह की सोच कोई कविता नहीं है, यथावत है। लेकिन एक और यथावत भी है कि इस देश बचपन से ही गयी है कि यह देश गाँवों का देश है और यदि गाँवों का विकास हो गया तो इस देश को कोई नहीं हमारे देश में एक बड़ी सुखर भावना सभी लोगों में पायी जाती है। हमारी समझ है और यह समझ हमें

3.38 शहरी विकास के लिए कार्यक्रम (Programmes for Urban Development)

शांति की सौस लोग और कहना कि हमने गरीबी को धोखा बहुत आहत अवश्य कर दिया है।

तो किसी को कुछ नहीं मिलेगा और वह इन्हीं गनी आँखों से विकास योजनाओं की रपट को देखेगा तो वह एक रूप में ही काम आती है। इसका अर्थ यह है कि यदि यथाथ में इन विकास कार्यक्रमों को गनी आँखों से देखा जाये हमने कुछ मुख्य आलोचनाओं को रखा है। देखा जाये तो ये सब विकास योजनाएँ बहुत बड़े भाग में कागजी ज्यादा होता है। योजनाओं के राजनीतिकरण के कारण भी उनसे अपेक्षित लाभ नहीं मिलता।

- (6) यह भी कहा जाता है कि जवाहर योजना जैसे कार्यक्रम ऐसे हैं जिनमें राजनीतिक दबाव बहुत हिस्सा गैर-गरीबों के हाथ में चला जाता है।
- (5) विकास कार्यक्रम सरकारी अधिकारियों द्वारा लागू किये जाते हैं और ये विकास अधिकारी इस धारणा को लेकर चलते हैं कि गाँवों को समझना बहुत मुश्किल है। दूसरी ओर कार्यक्रम लागू करने में भ्रष्टाचार की भीमका भी बहुत ताकतवर होती है। कुल मिलाकर विकास कार्यक्रमों पर खर्च किये गये धन का बहुत बड़ा
- (4) यह देखा गया है कि विकास कार्यक्रम कृषि विकास पर जोर देते हैं और यहाँ की कृषि बांश पर निर्भर नहीं होती।

- (3) स्थानीय लोगों की पारम्परिक आवश्यकताएँ होती हैं। उनके अपने अपने हित हैं। इन आवश्यकताओं को उद्घाटन करके विकास कार्यक्रम नयी योजनाओं को ध्यान देना है। नवीजन लोगों की विकास में भागीदारी

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

दक्षिण के राज्यों की समस्याएँ समुद्र से जुड़ी हुई हैं। वहाँ छोटी मछलियाँ को, जहाँ चाहें सुखा दिया जाता है। सारा समुद्र तट बदबू से भर जाता है। सन् 1966 में आंध्रप्रदेश के उच्च न्यायालय ने एक निर्णय घरे में मछलियाँ को रखना मना कर दिया है। इसी तरह का प्रतिबन्ध अरुणाचल ने तमिलनाडु में भी लगाया है। यह भी अनुमान है कि विान शहरों में प्रदूषण बहुत अधिक है, वहाँ साँस की बीमारियाँ और कैंसर अधिक होते हैं। प्रदूषित शहरों में दूध की बीमारी छोटे बच्चों से लेकर बड़े लोगों तक में पायी जाती है।

जा रहा है। ऐसे पुराने वाहनों के सड़क पर चलने का प्रतिबन्ध लगा दिया है, वहाँ अब सी.एन.जी. ईंधन वाले वाहनों को चलाया जा रहा है। वाहन भी धुआँ उगालते हैं और यह धुआँ भी स्वास्थ्य के लिए खतरनाक होता है। दिल्ली में सर्वोच्च न्यायालय ने है कि ऐसे कई कारखाने जो प्रदूषण पैदा करते हैं, बंद कर देने चाहिये। कारखानों के अतिरिक्त पेट्रोल से चलने वाले इन शहरों का प्यावरण दूना प्रदूषित है कि कुछ वर्ष पहले दिल्ली में सर्वोच्च न्यायालय ने यह आदेश दिया

मुम्बई, चैनाई, पटना, अहमदाबाद, बड़ोदरा और हैदराबाद इन शहरों में सम्मिलित हैं। इत्यादि होते हैं। वे शहर जिनमें ये टॉक्सिक गैस बड़ी मात्रा में पायी जाती है वस्तुतः महानगर हैं। दिल्ली, कोलकाता, टॉक्सिक गैस में सल्फर डायोक्साइड (Sulphur Dioxide), नाइट्रोजन डायोक्साइड (Nitrogen Dioxide) विषमि से टॉक्सिक गैस और धुआँ इस तादाद में निकलता है कि आराम का साँस लेना मुश्किल हो जाता है। इस शहरों और कस्बों की स्थिति भी कोई इससे बेहतर नहीं है। शहर की विशेषता उनके उद्योग होते हैं और उद्योग की गिरावट है और इनका पानी विषैला हो जाता है। गाँव और जमुना के पानी को कोई मुँह से नहीं लगा सकता। छोटे निकलता हुआ गाँव पानी और इसी प्रकार से बहिष्कार करता हुआ कारखानों का कचरा, आसपास के नदी-नालों में जाती है। बहुत थोड़े में आज के शहरों की बहुत बड़ी समस्या प्यावरण और प्रदूषण की है। शहरों की नालियों से प्रकृति के जितने भी संसाधन हैं, प्रदूषित हो जाते हैं। वहाँ प्रदूषण होता है, वहाँ प्रदूषणजनित रोगों की व्यापकता हो जाती है। शहरों में प्यावरण बहुत दूषित होता है। पाने के पानी में प्रदूषण होता है, साँस लेने में कठिनाई होती है और

3.39 प्यावरण (Environment)

इस सिफारिशों का प्रभाव पड़ा और सरकार ने केन्द्र तथा राज्य स्तर पर कुछ ऐसे संगठन बनाये हैं जो शहरी विकास को देखते हैं। इन संगठनों में नेशनल कैपिटल रिजियन प्रोग्राम (NCRP), अरबन लेण्ड सीलिंग एक्ट तथा कुछ स्थानीय शहरी विकास संस्थान जैसे कि नगर विकास प्रत्यास आदि हैं।

निजी क्षेत्र को दे देते। कुल मिलाकर एन.सी.यू. ने 78 सिफारिशों की हैं। शहर का विकास किया जाता है तब शहर के लिए उपलब्ध भूमि, आवास क्षेत्र, शैक्षिक आधार और अर्थव्यवस्था अलग-अलग रखा गया है। वास्तव में इन दोनों को जोड़कर ही शहरों का विकास किया जाना चाहिए। जब है। एन.सी.यू. ने यह भी पाया कि शहरी विकास में स्थानिक (Spatial) और आर्थिक पहलुओं को के कार्यक्रम व्यवस्थित रूप से नहीं बनाये जाते और टाउन प्लानर की भूमिका को हानि पर खड़ा कर दिया जाता राज्य के कुल 19 जिलों में से केवल 8 जिले ही विकसित जिले समझे जाते हैं। होता यह है कि शहरी विकास प्राप्ति के बाद शहरों का विकास तो हुआ है, पर इनमें असमानता बहुत अधिक है। उदाहरण के लिए गुजरात एन.सी.यू. ने शहरी विकास के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को प्रस्तुत किया है। उसका कहना है कि स्वतंत्रता

नीति

दी खण्डों में है। कर। सन् 1988 में इस समिति ने अपने सुझाव सरकार को दिये। इस समिति के अध्यक्ष एम.एन. बृज शं। यह रिपोर्ट किया। एन.सी.यू. को यह कहा गया कि वह शहरों की समस्याओं का और विशेष करके गाँदी बस्तियों को विश्लेषण में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

गये हैं-

तो यह समस्या बरम स्तर पर पहुँच गई है। इस समस्या को दूर करने हेतु निम्न दो दिशाओं में योजनाबद्ध प्रयत्न किए जा सकते हैं-

नगरीकरण की सभी जघन समस्याओं में से नगरों में आवासों की कमी एक बड़ी समस्या है। महानगरों में आवासों का सीमित विवरण दिया गया है। एवं जल आपूर्ति की समस्याओं के साथ-साथ नगर विकास की अन्य समस्याओं को हल करने के लिए किए गए गरीब तथा निम्न आय वर्ग के लोगों की स्थिति को सुधारने पर बल दिया जाता रहा है। यहाँ आवास, पानी विकास अपनाई जा रही है, उनका परिचय देती है। यहाँ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि इन प्रयासों में ज्यादातर दर में अद्वैतिक बृद्धि के कारण नगरीय समस्याओं का जो प्रचण्ड स्वरूप हो रहा है, उन्हें काबू में लाने की जो नीतियाँ को समायोजित करना रहे हैं। फिर भी, राष्ट्र के योजनाबद्ध विकास के प्रयत्नों में पंचवर्षीय योजनाएँ, नगरीकरण की मुद्दे ऐसे नीति की वाञ्छनीयता, गाँवों का आत्मनिर्भर बनाने की उल्लेख, तथा राज्य विषयपूर्ण में नगरीकरण के विषय बृद्धि और कृषि विकास के माध्यमों में राष्ट्रीय नीति के अभाव के अनेकों कारण हैं, किन्तु इसमें सबसे महत्वपूर्ण माध्यम पहलू नहीं है। अतः अब इस बात पर जोर दिया जाने लगा है कि जिस तरह औद्योगिक विकास, जनसंख्या अब भारत में यह स्वीकारा जाने लगा है कि नगरीकरण, आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन एक

शहरी समस्याओं पर राज्य की नीति

हो ऐसा नहीं है। गंदी बस्तियाँ बनने का कारण यह है कि बहुत बड़ी गंदार में गाँवों के लोग शहरों में आ जाते हैं। शहरी की शायद सबसे बड़ी समस्या गंदी बस्तियों की है। संयुक्त राष्ट्र की एक 1972 के अनुसार दिल्ली की जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग गंदी बस्तियों में रहता है। मुम्बई में 45 प्रतिशत जनसंख्या गंदी बस्ती में रहती है, और कोलकाता में यह प्रतिशत 42 है। देश के अन्य महानगरों में गंदी बस्तियों की समस्या इससे कुछ कम

संस्थाएँ आर्थिक सहायता देती हैं।

संस्थाएँ हैं जो आवास की समस्याओं को सुलझा रही हैं। मकान बनाने में बैंक, जीवन बीमा निगम तथा हूडको जैसे 20 प्रतिशत तक का भाग आवास पर खर्च कर देते हैं। कुछ शहरों में हाऊसिंग बोर्ड तथा नगर विकास प्रयास जैसे शहरी की कठिनाई बहुत अधिक है। एक सर्वेक्षण के अनुसार बड़े शहरों में आधिकांश लोग अपनी आय का अर्ध राष्ट्रिय नीति पूरी तरह से लगा नहीं हुई है फिर भी यह बहुत स्पष्ट है कि शहरों में गरीब लोगों के नीति शहरी कमजोर वर्ग की इस कठिनाई को समझती है और इसके लिए अलग-अलग योजनाएँ बनायी हैं।

होता है। उन्हें सिर टूटने की कोई छल अवश्य होनी चाहिए, बिजली और पानी का पानी होना चाहिए। राष्ट्रीय आवास शहरों की आवास स्थिति अधिक विकट है। इनमें कमजोर वर्ग के लोगों का निवास अत्यधिक कष्टदायक और गैर-सरकारी संगठनों की भी भागीदारी करनी पड़ेगी।

व्यवस्था एक बहुत बड़ा कार्य है और इसे सरकार अकेली नहीं कर सकती। इसमें सहकारी समितियाँ, निजी क्षेत्रों मकान अवश्य होगा जिसमें सभी सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। यह नीति इस बात को मानकर चलती है कि आवास नगरीय विना घर का (Homelessness) नहीं रहेगा। नीति के अनुसार सभी नगरिकों के पास न्यूनतम स्तर का आवास की समस्या को उठाया। राष्ट्रीय नीति का यह उद्देश्य है कि लम्बी अवधि में चलकर कोई भी भारतीय की घोषणा की। इस योजना के अनुसार पहली बार 8वीं पंचवर्षीय योजना में सरकार ने गम्भीरता से शहरी आवास ने आवास की समस्या को हल करने के लिए राष्ट्रीय आवास नीति (National Housing Policy : NHP) प्रस्तावित की है। यह राज्य सरकार का कर्तव्य है कि वह इन योजनाओं का क्रियान्वयन करे। सन् 1988 में सरकार कृषि-न-कुछ योजनाएँ अवश्य बनाती है। पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आवास नीति के मातहत कई कार्यक्रम करण केन्द्र सरकार समुचित आवास के लिये योजनाएँ बनाती है। विशेषकर सरकार कमजोर वर्गों के आवास पर आवास राज्य सरकार की गलिका में है फिर भी इसका उद्घाटन केन्द्र सरकार के हाथों में है। इसी

3.40 आवास एवं गंदी बस्तियाँ (Housing and Slums)

नोट

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

2. किराया बढ़ाने की संभावनाओं का समावेश हो,
1. विद्यमान किरायेदारों की सुरक्षा बालू रहे,

सुझाव दिए बिना महत्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित हैं।

में, नगरीकरण से संबंधित राष्ट्रीय आयोग ने विद्यमान किराया नियंत्रण कानून के बोध एवं शर्तों में सुधार हेतु अनेक नियंत्रण कानून का विस्तृत अध्ययन किया तथा इसके दृष्टांतों की गंभीरता को स्वीकार किया। अपनी अंतरिम रिपोर्ट विकास मंत्रालय के अधीन नगरीकरण से संबंधित एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया है। आयोग ने किराया प्रभावों को रोकने के लिए नगर विकास मंत्रालय ने कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। 1987 में भारत सरकार के नगर किराया नियंत्रण कानून के इन दृष्टिकोणक प्रभावों को अब व्यवस्थित रूप से समावेश करने का है तथा इन

ही गये हैं।

मालिकों की ऐसी उदासीनता के कारण नगरों में एक बड़ी तादाद में मकान जब्तित एवं रहने के लिए अनुपयोगी बढ़ाने की संभावना के अभाव में अंत में उसी पर पहुँची। मकानों की समय पर मरम्मत करवाने के प्रति मकान दिव्य गये मकानों की मरम्मत करना चाहते हैं। इनका साधारण सा कारण यह है कि मरम्मत के सभी खर्च किराया सभी निगमित मकानों की कमी को बढ़ा रही है। यह भी पाया गया है कि मकान मालिक शायद ही किराये पर आया। इसी तरह अब लगे किराया कमाने के लिए भवनों का निर्माण करना पसंद नहीं करते हैं। इस प्रकार की उठा दिया तो फिर किराया नियंत्रण कानून की शर्तों के कारण वह मकान कभी भी वापस उनके कब्जे में नहीं किराये पर उठाने की उत्सुक नहीं पाए जाते हैं क्योंकि ऐसा विरवास किया जाता है कि एक बार मकान किराये पर भी आए हैं, जिससे आवास की समस्या और भी विकट होती जा रही है। अब मकान मालिक अपने मकानों को आवश्यकता आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। वास्तव में इस कानून के होने से कुछ अप्रत्यक्ष व अतिरिक्त परिणाम कानून नगरीय आवास समस्या को दूर करने में शायद ही कोई उल्लेखनीय उन्नति कर पाया है और इसकी आवास समस्या का इच्छित दिशा में हल ढूँढने में सफल नहीं हुआ है। किरान वधवा का अध्ययन दर्शाता है कि यह किराया नियंत्रण कानून के प्रभाव के मूल्यांकन से संबंधित अध्ययन इंगित करते हैं कि यह कानून नगरीय

किरायेदार पर।

के अधीन मकान की मरम्मत करवाने की जिम्मेदारी मकान मालिक पर लायी गई है न कि उस मकान में रहने वाले बाध्य कर सकता है और न ही वह स्वेच्छा से कि। की वृद्धि कर सकता है। इसके अलावा किराया नियंत्रण कानून से भी सुरक्षा करता है। विशेषतः इसी अर्थ में कि मकान मालिक न तो किरायेदार को मकान खाली करने के लिए राज्यों में भी यह कानून बनाया गया है। किराया नियंत्रण कानून किरायेदार का मकान मालिक द्वारा होने वाले शोषण किया जा सके। सर्वप्रथम यह कानून 1948 में उस वक्त के बम्बई राज्य में बनाया गया था तथा बाद में अन्य कई किराया नियंत्रण कानून इस उद्देश्य से बनाया गया है कि जिससे कानूनों के किराये का नियंत्रण एवं संभालन

किराया नियंत्रण कानून

2. अर्बन लेण्ड सीलिंग एण्ड रेगुलेशन एक्ट (यू.एल.सी.आर.ए.), 1976
1. रेन्ट कंट्रोल एक्ट (आर.सी.ए.) 1948 तथा

किया गया है—

और पूँजि को किराये पर उठाने तथा बचने से संबंधित सामाजिक कानूनीकरण के अंतर्गत निम्न दो कानूनों का निर्माण संविधान में नगर विकास तथा इससे संबंधित कल्याणकारी कार्यक्रमों को राज्य सरकारों को सौंप दिया गया है। मकानों है किन्तु आवास उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी न तो नगरवासियों के लिए है और न ही ग्रामवासियों के लिए। हमारे संविधान प्रत्येक भारतीय नागरिक को मुक्त रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की स्वतंत्रता देता

नगर में जमीन तथा आवास से संबंधित सामाजिक कानूनीकरण

- नगरों में आवास की समस्या को हल करने हेतु निम्नलिखित प्रयास किए गए हैं—
- (क) नगर में जमीन तथा आवास से संबंधित सामाजिक कानूनीकरण।
 - (ख) शीपट्रैपटियों को दूर करने तथा नये आवासों के निर्माण हेतु कार्यक्रम।

नीचे

द्विभाषिक परिचय में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

है। निम्नलिखित कार्यों को क्रियान्वित किया गया है :

कई नगरों में राज्य सरकारों तथा स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय एवं अन्य सहायता से नये आवासों के निर्माण शीघ्रपरिपक्वता के कार्यों को हटाने के कार्यक्रम में स्वीकृत संस्थाएं आज भी पीछे ही रही हैं। के कार्यान्वयन के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता देनी है। हालांकि गरीबों के लिए आवास निर्माण तथा किया था। साथ ही साथ राज्य सरकारों तथा नगरों के स्थानीय प्रशासन की संस्थाएं भी इस तरह की परियोजनाओं के लागू 1 करोड़ 40 लाख आवासों के निर्माण हेतु प्रति आवास 5000 रु. की दर से सहायता देने का प्रबंधन भी किया जाता है। उदाहरण के लिए, 1989 में केन्द्र सरकार ने नगर में रहने वाले गरीब तथा निम्न वर्ग के लोगों आवश्यक जन-सुविधाएं प्रदान की जाने लगी हैं। शीघ्रपरिपक्वता के हटाने के इन कार्यक्रमों को सरकार द्वारा अनुदान रूप से कमजोर वर्ग के लोगों को किसी एक पूरे बस्ती का बचन करके वहां सभी लोगों के उपयोग के लिए को भूदान कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त शीघ्रपरिपक्वता के हटाने के इस कार्यक्रम के अंतर्गत आर्थिक तथा सामाजिक सुसज्जित करके उन गरीबों को उपलब्ध कराये जाते हैं, जो अपनी निम्न मासिक आय के कारण केवल नाममात्र के अंतर्गत कम लागत के आवासों के शौच, गटर तथा जल निकासी आदि की सुविधाओं से गरीब वर्ग वित्तियों को हटकर गरीब व निम्न आय वर्ग के नगरवासियों हेतु आवासों का निर्माण करना है। इस कार्यक्रम योजना में विशेष ध्यान दिए जाने के आवश्यकता आ खड़ी हुई है। इन प्रयासों के प्रवाह में सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। इन नगरीय समस्याओं ने इतना प्रचण्ड रूप धारण कर लिया है कि इसके सामाजिक कारुणिकरण तथा राष्ट्रीय व तंग वित्तियों में रहता है तथा आवास, जल-आपूर्ति, जल-निकासी तथा अन्य जन-सुविधाओं की कमी से पीड़ित हम लोग देख चुके हैं कि तेज गति से हो रहे नगरीकरण के कारण नगरीय आबादी का एक बड़ा भाग गरीब

गरीब व तंग वित्तियों को हटकर नए आवास निर्माण के कार्यक्रम

है।

अपनकर तथा अपने राजनीतिक संघर्षों का दुरुपयोग करते इस कानून की पाबंदियों से बच निकलने में सफल मकान बनाने व अन्य जन सेवाओं के लिए ली गई है। कई मामलों में अतिरिक्त जमीन के मासिक भ्रष्ट तरीके बिना किसी रोक-टोक के बढ़ रही हैं। इसके अतिरिक्त इस कानून के अधीन काफी कम जमीन नगरीय गरीबों के में जमीन के भाव इतने बढ़ रहे हैं कि इस खरीदना साधारण जन की पहुँच के बाहर है तथा जमीन की सट्टेबाजी आलोचक इस बात को उजागर करते हैं कि इस नियम के अस्तित्व में आने के बावजूद भी प्रत्येक नगर जमीन की सट्टेबाजी पर रोक लागती है।

आवास निर्माण में किया जाता है। इसके अलावा यह कानून अतिरिक्त जमीन विक्रय पर प्रतिबंध लगाता है जिससे में ले सकती है। प्रायः इस कानून के अंतर्गत अधिगृहीत जमीन का उपयोग गरीब तथा निम्न आय वर्ग के लोगों हेतु किए गए माप को छोड़कर जो शेष जमीन उपलब्ध है, वह स्थानीय प्रशासन अथवा राज्य सरकार व्यापक जनहित इस कानून के अंतर्गत विधायित्व माप से अतिरिक्त जमीन यदि कि उपलब्ध जमीन के टुकड़े में से नियत

(ग) खाली जमीन पर निर्माण कार्य का नियमन।

(ख) जमीन की सट्टेबाजी पर रोक, और

(क) भूमि का पुनर्वितरण

सोशियल एक्ट ऑफ 1976 है। इस कानून के तीन आधारभूत उद्देश्य हैं-

व अर्बन लैंड सोशियल एक्ट, 1976-नगरीय जमीन की योग्य व्यवस्था हेतु दूसरा महत्वपूर्ण कदम अर्बन

किया गया नियमन कानून के वर्तमान विपरीत प्रभावों को अवश्य ही रोकना जा सकता है।

कि इन सुधारों के समावेश से आवास से संबंधित वर्षा पूर्णतः विकट समस्या शांति हो कर ली जाए। फिर भी, इससे

4. ऐसी व्यवस्था करना जिससे नये आवासों के निर्माण को प्रोत्साहन मिले। ऐसा विश्वास किया जाता है

मकानों से संबंधित नियमों व शर्तों की अलग किया जाए।

3. व्यापारिक उद्देश्यों के लिए किराये पर देने वाले मकानों तथा निवास हेतु किराये पर दिये जाने वाले

3. जनसंख्या वृद्धि एवं नियंत्रण की सैद्धान्तिक व्याख्या करें।

2. जनसंख्या विस्फोट किसे कहते हैं? अपने विचार प्रकट करें।

1. महिला एवं बाल कल्याण कार्यक्रम क्या हैं? उल्लेख करें।

छात्र कियेकालप

महिला, युवा एवं क्षेत्रीय कार्यक्रम 1980 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक तौर पर एक अन्य कार्यक्रम प्रारंभ किया गया, जिसका नाम था ग्रामीण महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम। इस कार्यक्रम का उद्देश्य था महिलाओं की आय बढ़ाना तथा उन्हें आय पैदा करने वाली गतिविधियाँ चलाने लायक बनाने के लिए आवश्यक सहायता और सेवाएँ उपलब्ध कराना। महिलाओं का जीवन-स्तर ऊँचा उठाने के लिए उन्हें रोजगार लायक शिक्षा देने तथा स्वास्थ्य सुधार पर विशेष ध्यान दिया गया। छोटी पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ में ग्रामीण युवा स्व-रोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलाया गया। यह कार्यक्रम गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों के 18 से 35 वर्ष के युवाओं के लिए था। इस कार्यक्रम का लक्ष्य हर साल प्रत्येक खंड के 40 युवकों को प्रशिक्षित करना था। इसके लिए चुने गए युवकों को छात्रवृत्ति मिलती थी। युवकों को भौतिक आवश्यकताओं के अत्युत्कृष्ट प्रशिक्षण देने के प्रयास भी किए गए। कुछ ऐसे क्षेत्र भी हैं, जिन पर प्रकृति की विशेष कृपा नहीं हुई। जैसे सूखा-ग्रस्त क्षेत्र, रेगिस्तान तथा पर्वतीय क्षेत्र आदि। ऐसे इलाकों में लोगों की आमदनी में काफी उतार-चढ़ाव रहता है। इन क्षेत्रों के निर्धन लोगों की मदद के लिए कई कार्यक्रम चलाए गए हैं। उदाहरण के लिए, सूखा प्रभावित क्षेत्र कार्यक्रम के अंतर्गत आने वाले इलाकों में बागवानी कृषि, पशुपालन, रेशम उत्पादन जैसे कार्यक्रम चलाए गए। इसी प्रकार, रेगिस्तान इलाकों में वृक्षारोपण, पशुपालन, भूमिगत जल का उपयोग संबंधी कार्यक्रम द्वारा में किए गए।

राष्ट्रीय इलाकों में स्वयं सहायता समूहों में मुख्य रूप से पर्यावरण सुधार पर ध्यान दिया गया। बुनियादी सुविधाओं, सड़कें पैदल चलने के रास्तों, जल आपूर्ति आदि के लिए प्रति व्यक्ति व्यय प्रतिमाह 300 रुपये की दर से सहायता उपलब्ध कराई गई।

नीचे

प्राथमिक परियोजना में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

1. Samajik Anusandhan : Ram Ahuja, Rawat Publications.
2. Samajik Bharat : Socio-Political-Economic India, Ten Years After : J.K. Benerjee, Service and Goodwill Mission.
3. Social Development Planning : V. Shammugasundram, Jozef Mihalik.

संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं में भाग लेने के परिणामस्वरूप उत्पन्न समस्याओं का उल्लेख करें।
2. पथच्यरण होस का अर्थ व प्रक्रिया क्या है? अपने विचार प्रकट करें।
3. भारत में प्रदूषण नियंत्रण की नीतियाँ क्या-क्या हैं। उल्लेख करें।
4. खेती के ढंग में क्या कोई तकनीकी सुधार हुए हैं या किसान परम्परागत ढंग से ही खेती करते हैं।

अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)

- भारत में आजादी से पहले राष्ट्रीय आय के आंकड़े व्यवस्थित रूप से एकत्रित नहीं किए जाते थे।
- दादाभाई नौरोजी, रमेशचन्द्र दत्त और बहिन सार आर्थिक इतिहासकारों के अनुसार अंग्रेजी शासन काल में आर्थिक गतिहीनता का मुख्य कारण ब्रिटिश शासकों की नीति थी।
- राष्ट्र की सामूहिक प्रयत्न करने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से आयोजन का संयोजक दार्शनिक आधार आवश्यक है जिससे विकास योजनाओं की क्रियाचिन्तन करने के लिए आवश्यक प्रेरणा मिल सके।
- हमारे संविधान में वर्णित 15 प्रमुख भाषाओं में से सर्वाधिक लोग हिन्दी में बोलते हैं।
- स्वतंत्रता के बाद 1952 में जनसंख्या नीति समिति और 1953 में परिवार नियोजन अनुसन्धान और कार्यक्रम समिति गठित की गई।
- एक समय यह कहा जाता था कि यदि देश के लोगों में शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हो जाये तो देश की सभी समस्याएँ हल हो जायेंगी। हमारे देश में पिछले पचास वर्षों का जो अनुभव हमें प्राप्त है उससे सात होता है कि अब शिक्षा हमारी सभी समस्याओं की कुंजी नहीं रही।
- राज्य कमजोर वर्गों के लोगों, विशेषकर अनुसूचित जातियाँ एवं अनुसूचित जनजातियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों को ख़ास तौर से बढ़ावा देना एवं हर प्रकार के सामाजिक अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध दृढ़ संरक्षण प्रदान करना।
- पथच्यरण एवं वन मन्त्रालय ने 1992 में प्रदूषण नियंत्रण का नीतिगत घोषणा-पत्र जारी किया। मन्त्रालय की परियोजनाओं में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ भी सहयोग कर रही हैं।
- देश में आर्थिक विकास के जो भी कार्यक्रम बने हैं उनका मुख्य उद्देश्य गरीबी उन्मूलन का है। देखा जाये तो देश के सम्पूर्ण पृ-भाग का तीन-चौथाई भाग गाँवों का है और गाँवों में बहुसंख्यक लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं।

3.41 सारांश (Summary)

नोट

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत में सामाजिक नीति का नीतिगत उद्देश्य

इकाई-IV
(Unit-IV)

क्षेत्रीय योजनाओं के समाकलन संबंधी व्यापक दृष्टिकोण
(Broad View Regarding Integration of
Regional Plans)

संरचना (Structure)

- 4.1 उद्देश्य (Objectives)
 - 4.2 प्रस्तावना (Introduction)
 - 4.3 अर्थ (Meaning)
 - 4.4 प्रदेशों में निवेश आबंटन (Allocation of Investment between Regions)
 - 4.5 संतुलित प्रादेशिक विकास की आवश्यकता (Need for Balanced Regional Development)
 - 4.6 भारत में प्रादेशिक असमानताओं से सम्बद्ध नीतियाँ
(Policies Relating to Regional Disparities in India)
 - 4.7 आर्थिक विकास के सामाजिक निर्धारक (Determinants of Economic Development)
 - 4.8 सारांश (Summary)
- अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

4.1 उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

- प्रदेशों में निवेश आबंटन की जानकारी प्राप्त होती है।
- भारत में प्रादेशिक असमानताओं से सम्बद्ध नीतियों की जानकारी होती है।
- संतुलन प्रादेशिक विकास की आवश्यकताओं की पूरी जानकारी प्राप्त की जाती है।
- आर्थिक विकास के सामाजिक निर्धारक की जानकारी होती है।

4.2 प्रस्तावना (Introduction)

हर देश में चाहे वह विकसित हो या अल्पविकसित, आर्थिक दृष्टि से उन्नत एवं पिछड़े प्रदेश होते हैं। किन्तु अल्पविकसित देशों में प्रादेशिक असंतुलन की समस्या अधिक गंभीर होती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है

कि अल्पविकसित देशों में राजनीतिज्ञों का प्रभुत्व कम करने के लिए योजना आयोग जो प्रादेशिक विकास संबंधी योजना निर्मित करे उस पर राष्ट्रीय विकास परिषद् चर्चा करे और समाधान ढूँढ़े।

अल्पविकसित देशों की विशिष्टता यह है कि वहाँ आय तथा रोजगार में प्रादेशिक अन्त विद्यमान रहते हैं। प्रोफेसर मिईल के अनुसार, इस तरह की अर्थव्यवस्थाओं में प्रादेशिक असमानताओं का प्रमुख कारण प्रबल अतिनिर्यात प्रभाव एवं दुर्बल प्रसारण प्रभाव रहे हैं।

“आर्थिक आयोजन” शब्द के अर्थ के संबंध में अर्थशास्त्रियों में कोई एकमत नहीं है। अर्थशास्त्र विषयक साहित्य में इस शब्द का बहुत शिथिल रूप में प्रयोग हुआ है। अल्पविकसित देशों में आयोजन का एक प्रमुख उद्देश्य आर्थिक विकास की दर बढ़ाना है।

4.3 अर्थ (Meaning)

हर देश में चाहे वह विकसित हो या अल्पविकसित, आर्थिक दृष्टि से उन्नत एवं पिछड़े प्रदेश होते हैं। परन्तु अल्पविकसित देशों में प्रादेशिक असंतुलन की समस्या अधिक गंभीर होती है। इसको हल करने के लिए विभिन्न प्रदेशों में निवेश आबंटन इस ढंग से किया जाना चाहिए कि अर्थव्यवस्था का संतुलित प्रादेशिक विकास हो सके। संतुलित प्रादेशिक विकास का यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक प्रदेश या राज्य आत्मनिर्भर हो और न ही इसका यह अर्थ है कि प्रत्येक प्रदेश में औद्योगिकीकरण का स्तर समान हो या आर्थिक ढाँचा एक जैसा हो। बल्कि इसका अर्थ है कि आर्थिक रूप से जहाँ तक संभव हो वहाँ तक उद्योगों को पिछड़े प्रदेशों में दूर-दूर तक विसरण करना है। अन्ततः लक्ष्य यह है कि पिछड़े क्षेत्रों के लोगों के जीवन-स्तर बढ़ाकर उन्नत क्षेत्रों के लोगों के जीवन-स्तरों तक लाए जाएँ, चाहे ऐसा कृषि, उद्योग, व्यापार या वाणिज्य के विकास के माध्यम से किया जाए। ममफोर्ड (Mumford) के अनुसार यह “निवास-योग्यता बढ़ाने की समस्या है—सामाजिक एवं आर्थिक नवीकरण की समस्या है।”

4.4 प्रदेशों में निवेश आबंटन (Allocation of Investment between Regions)

प्रदेशों के बीच निवेश कोषों के आबंटन की समस्या के अनेक पहलू हैं जिन पर योजना-निर्माताओं तथा राजनीतिज्ञों के विचारों में भिन्नताएँ पाई जाती हैं। योजना-निर्माता तो इस समस्या को आर्थिक दृष्टिकोण से देखते हैं तथा उसी प्रकार इसका हल ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं। दूसरी ओर, राजनीतिज्ञ स्थानीय विकास में अधिक रुचि लेते हैं क्योंकि उन्हें अपने मतदाताओं का अधिक ध्यान होता है। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा होती है। निवेश आबंटन निर्णय सदैव राजनीतिक दृष्टिकोण से ही लिए जाते हैं। यदि राष्ट्रीय सरकार में समृद्ध प्रदेशों का अधिक प्रभुत्व हो तो पिछड़े प्रदेशों की उपेक्षा होगी तथा अधिक निवेश समृद्ध प्रदेशों के विकास पर ही होगा। इसके विपरीत, यदि सरकार पर ग्रामीण क्षेत्र का अधिक प्रभुत्व हो तो वे लोग शहरी क्षेत्र का अधिक से अधिक शोषण करेंगे तथा निवेशों का आबंटन ऐसे ढंग से हो सकता है जिससे उनका अलाभदायक प्रयोग हो। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि अल्पविकसित देशों में राजनीतिज्ञों का प्रभुत्व कम करने के लिए योजना आयोग जो प्रादेशिक विकास संबंधी योजना निर्मित करे उस पर राष्ट्रीय विकास परिषद् चर्चा करे तथा इस परिषद् में विभिन्न क्षेत्रों के राजनीतिज्ञ तथा सामाजिक कार्यकर्ता एवं अर्थशास्त्री हों।

प्रदेशों के बीच निवेश आबंटन की समस्या के हल के लिए तीन विकल्प प्रस्तुत किए जाते हैं: प्रथम, अधिक विकास सम्भाव्यता वाले प्रदेशों पर पिछड़े प्रदेशों की अपेक्षा अधिक निवेश करना; द्वितीय, पिछड़े प्रदेशों पर अधिक निवेश करना; तथा तृतीय, सभी प्रदेशों पर समान रूप से निवेश कोष आबंटित करना। हम इनकी क्रमशः व्याख्या करते हैं।

नोट

1. अधिक विकास सम्भाव्यता वाले प्रदेशों पर अधिक आबंटन
(More Allocation to Regions with High Potential)

प्रथम, तर्क यह दिया जाता है कि निवेश कोषों का अधिक आबंटन उन प्रदेशों में किया जाए जहाँ विकास की अधिक संभावना पाई जाती है अर्थात्, निवेश उन प्रदेशों में अधिक करना चाहिए जहाँ यह अधिक उत्पादकीय हो। सभी प्रदेश समान रूप से साधनों से युक्त नहीं होते हैं। किसी में अधिक खनिज, किसी में वन सम्पदा, किसी में जल तथा किसी में उपजाऊ भूमि पाए जाते हैं। स्वाभाविक है कि ऐसे प्रदेशों की साधन सम्पन्नताओं के अनुरूप उनके विकास पर निवेश करने से वे अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक तीव्रता से समृद्ध होंगे। जैसे, जिस प्रदेश में लोहा, कोयला आदि खनिज अधिक पाए जाते हैं वहाँ इस्पात तथा थर्मल शक्ति के कारखाने लगाकर विकास करना चाहिए; जहाँ वन हैं वहाँ फर्नीचर, खेलों का समान, रंग-रोगन, कागज आदि के उद्योग लगाकर; जहाँ जल साधन अधिक है वहाँ विद्युत, नहरों आदि पर अधिक निवेश करके तथा जहाँ भूमि अधिक उपजाऊ है वहाँ कृषि तथा उससे संबंधित उद्योगों पर अधिक निवेश करके उस प्रदेश का विकास किया जा सकता है। डॉ० आर० बालकृष्ण के शब्दों में, "प्रादेशिक विकास का लक्ष्य यह होना चाहिए कि उपलब्ध साधनों के उपयोग में अधिकतम दक्षता प्राप्त की जाए।"

अधिक विकास सम्भाव्यता वाले प्रदेशों पर अधिक निवेश करने की नीति का तीव्र विरोध भी किया जाता है। ऐसा कई कारणों से होता है। यह तथ्य सही है कि जिन प्रदेशों पर अधिक कोष निवेश किए जाते हैं। वहाँ के रहने वाले लोगों को सबसे अधिक लाभ प्राप्त होते हैं। इसका अन्य प्रदेशों के लोग विरोध करते हैं क्योंकि उनके क्षेत्र में कम निवेश कोष आबंटित किए जाते हैं।

दूसरे, यदि अन्य प्रदेशों से प्राप्त बचतें तथा राजस्व अधिक विकास सम्भाव्यता वाले प्रदेशों पर व्यय किए जाते हैं तो ऐसे प्रदेशों के लोग भी विरोध करते हैं कि उनका पैसा अन्य पर खर्च किया जा रहा है। लुइस के अनुसार, ऐसे विरोध बिल्कुल समाप्त नहीं किए जा सकते। इसका उपचार यही है कि योजना-निर्माताओं को दूसरे प्रदेशों की आधारीक संरचना (infrastructure) सुविधाओं की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए जैसे, परिवहन, स्कूल, अस्पताल, पेयजल आदि।

2. पिछड़े प्रदेशों पर अधिक आबंटन (More Allocation to Backward Regions)

लुइस के अनुसार, यह आवश्यक नहीं कि सबसे समृद्ध क्षेत्र वे हों जिनमें सबसे अधिक विकास सम्भाव्यताएँ पाई जाती हैं। ऐसा भी होता है कि कुछ दरिद्र क्षेत्र केवल इसलिए दरिद्र होते हैं क्योंकि उनकी उपेक्षा की गई है। अतः ऐसा संभव है कि यदि अब ऐसे प्रदेशों के विकास पर अधिक निवेश कोष आबंटित किए जाते हैं तो वे तीव्रता से विकसित हो सकते हैं। भारतीय योजना आयोग के अनुसार, "किसी भी व्यापक विकास योजना में यह निर्विवाद सत्य है कि अल्पविकसित क्षेत्रों की विशेष जरूरतों पर उचित ध्यान दिया जाए। निवेश का ऐसा ढंग अपनाया जाए जिससे संतुलित प्रादेशिक विकास हो।" इसके अन्तर्गत पिछड़े क्षेत्रों में शक्ति, जलपूर्ति, परिवहन तथा सिंचाई सुविधाओं की व्यवस्था करना जिनसे कृषि में सुधार हो, ग्राम तथा लघु उद्योगों को प्रसार के कार्यक्रम बनाना और वित्तीय एवं अन्य सहायता प्रदान करना, तथा नए उद्यमों के इन क्षेत्रों में अविस्थापित (locate) करना और छोटे कस्बों के निकट औद्योगिक बस्तियाँ स्थापित करना। इस प्रकार निवेश करने से पिछड़े प्रदेशों के लोगों को रोजगार तथा आय के अधिक सुअवसर प्राप्त होंगे और रहन-सहन का स्तर बढ़ेगा।

परन्तु अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में ऐसे पिछड़े प्रदेशों को मालूम करना आसान नहीं जो वित्तीय सहायता प्रदान करने पर तीव्र आर्थिक विकास करने में सक्षम हों। जो क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से इसलिए पिछड़े होते हैं कि उनमें साधनों का अभाव होता है उनमें निवेश करना सहायिकी (subsidy) प्रदान करने के समान है जिसका उस क्षेत्र के विकास पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

3. सभी प्रदेशों पर समान आबंटन (Equal Allocation to All Regions)

अर्थव्यवस्था की तीव्र आर्थिक प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि सभी प्रदेशों पर समान रूप से निवेश कोषों को आबंटन किया जाए। यदि कुछ प्रदेशों पर अधिक और कुछ पर कम निवेश किया जाता है तो कुछ प्रदेश

नोट

अनुसार, इस तरह की अर्थव्यवस्थाओं में प्रादेशिक असमानताओं का प्रमुख कारण प्रबल अतिनिर्यात प्रभाव एवं दुर्बल प्रसरण प्रभाव रहे हैं। प्रादेशिक असमानताओं की उत्पत्ति का आधार आर्थिकेतर (non-economic) है, जो लाभ के उद्देश्य से चलित पूंजीवादी व्यवस्था से संबंध रखता है। लाभ-उद्देश्य के परिणामस्वरूप उन प्रदेशों का विकास होता है जहाँ लाभ की संभावनाएँ अधिक होती हैं जबकि अन्य प्रदेश अल्पविकसित रह जाते हैं। मिडल ने बाजार-शक्तियों की स्वतंत्र क्रीड़ा को इस घटनावृत्त के लिए उत्तरदायी माना है। बाजार की स्वतंत्र शक्तियाँ आर्थिक एवं सामाजिक उपरिसुविधाओं को कुछ प्रदेशों में संकेन्द्रित कर देती हैं और देश की शेष उपरि सुविधाओं को धाराहीन जल में जोड़ देती हैं। स्थानान्तरण, पूंजी गतियाँ एवं व्यापार इन असमानताओं को और भी स्पष्ट कर देते हैं। पिछड़े प्रदेशों से युवक एवं सक्रिय व्यक्तियों के स्थानान्तरण से उन्नत प्रदेश को लाभ होगा और पिछड़े प्रदेश में आर्थिक सक्रियता दब जाएगी; पूँजी विकसित प्रदेशों में चली जाएगी जिससे पिछड़े प्रदेशों में पूंजी की कमी हो जाएगी। विकसित प्रदेशों में उद्योगों का विकास प्रदेशों के विद्यमान उद्योगों को तबाह कर सकता है। क्योंकि प्रसरण प्रभावों (spread effects) की अपेक्षा अतिनिर्यात प्रभाव (backwash effects) अधिक प्रबल हैं, इसलिए प्रादेशिक असमानताएँ बढ़ जाती हैं। अतः अल्पविकसित देशों में जरूरत इस बात की है कि संतुलित प्रादेशिक विकास के लिए आयोजित राज्य सक्रियता के माध्यम से अतिनिर्यात प्रभाव न्यूनतम बनाए जाएँ।

2. अर्थव्यवस्था का तेजी से विकास करने के लिए (To rapidly develop the economy)—अर्थव्यवस्था के शीघ्र विकास के लिए संतुलित प्रादेशिक विकास आवश्यक है क्योंकि समस्त अर्थव्यवस्था की प्रगति सभी प्रदेशों के उनकी साधन सम्पन्नताओं के अनुरूप विकास पर निर्भर करती है। किसी ने ठीक ही कहा है, “राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्रगति विभिन्न प्रदेशों द्वारा उपलब्ध वृद्धि की दर में प्रकट होगी और आगे प्रदेशों में साधनों का पहले से अधिक विकास समस्त देश की गति दर त्वरित करने में योगदान देना।”

3. अर्थव्यवस्था के निर्विघ्न विकास के लिए (To develop economy smoothly)—संतुलित प्रादेशिक विकास अर्थव्यवस्था के निर्विघ्न विकास में सहायक होता है। यदि सभी प्रदेश, समान रूप से विकसित हों तो वे परस्पर एक-दूसरे के लिए सहायक हो सकते हैं। पर, यदि प्रादेशिक असमानताएँ विद्यमान हों तो पिछड़े प्रदेशों में आय के निम्न स्तर विकसित प्रदेशों के विकास को परिमन्दित कर देंगे क्योंकि विकसित प्रदेशों के उत्पादों के लिए पर्याप्त मांग नहीं होगी। और फिर, संतुलित प्रादेशिक विकास परिवहन एवं पूर्ति की अड़चनों भी हटाता है और अर्थव्यवस्था के भीतर के स्फीतिकारी दशाओं को घटाता है।

4. साधनों के विकास और संरक्षण के लिए (To develop and conserve resources)—प्रत्येक प्रदेश का संतुलित विकास उसके साधनों का अधिकतम विकास करने में सहायक होता है। डॉ० आर० बालकृष्ण के शब्दों में, “प्रादेशिक विकास का लक्ष्य यह होना चाहिए कि उपलब्ध साधनों के उपयोग में अधिकतम दक्षता प्राप्त की जाए।” और फिर, जब कोई प्रदेश अपने साधनों का विकास करता है तो वह उसके साथ ही उनके विध्वंससात्मक प्रयोग को भी रोकता है। विविध उद्योगों की स्थापना से उस प्रदेश के खनिज, वनीय, कृषि एवं मानवीय साधनों का अधिक पूर्ण उपयोग तथा परिरक्षण होता है।

5. राजनीतिक स्थिरता बनाए रखने के लिए (To maintain political stability)—देश में राजनीतिक स्थिरता बनाए रखने के लिए भी संतुलित प्रादेशिक विकास की जरूरत है। यदि आय तथा धन में प्रादेशिक भेद विद्यमान हों, तो वे राष्ट्रीय संगठन के लिए सबसे बड़ा खतरा है। इसी कारण एक स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी देश के रूप में बंगलादेश अस्तित्व में आया। इस प्रकार, सभी प्रदेशों के विकास की जरूरत इसलिए है कि राजनीतिक स्थिरता और राष्ट्रीय एकता बनी रहे।

6. देश की सुरक्षा के लिए (To defend the country)—विदेशी आक्रमण से देश के उचित बचाव के लिए भी प्रादेशिक विकास जरूरी है। यदि सभी प्रदेश समान रूप से विकसित हों और उद्योग दूर-दूर तक फैले हों तो देश अपने युद्ध-प्रयत्नों को बाधित किए बिना सब हवाई हमलों का मुकाबला कर सकता है। दूसरी ओर, यदि कुछ क्षेत्रों का विकास हुआ है और उनमें ही उद्योग संकेन्द्रित हैं, तो शत्रु द्वारा उनके नष्ट कर दिए जाने पर समस्त अर्थव्यवस्था ठप्प हो जाएगी। इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा एवं बचाव के लिए संतुलित प्रादेशिक विकास आवश्यक है।

का प्रसार किया जाए और ग्राम एवं लघु उद्योगों का विकास हो। विभिन्न राज्यों में उद्योगों के अवस्थापन के लिये कुछे क्षेत्रों को विशेष ध्यान दिया गया। आवश्यकताओं का हिंसाब लगाते समय कुछे क्षेत्रों की समस्याओं और ऐसे कारणों पर ध्यान दिया गया जैसे कि "जनसंख्या क्षेत्र, कायत की गई भूमि पर दबाव, बड़ी परियोजनाओं के कारण बचनबद्धताओं की सीमा और उपलब्ध तकनीकी एवं प्रशासकीय सेवाओं की स्थिति।" जहाँ बड़ी परियोजनाएँ स्थापित की गई थीं, उन क्षेत्रों में सहायक उद्योग लगाते के प्रयत्न भी किए गए।

परन्तु इन कदमों के बावजूद, राष्ट्रीय योजना प्रादेशिक असमानताओं की समस्या हल नहीं कर सकी। निम्नलिखित विकास के साथ-साथ राज्यों की चालू कीमतों पर प्रतिव्यक्ति आय बढ़ी, पर धनी तथा दृष्टि राज्यों की आय के अन्तर का परिमाण ज्यों-का-त्यों बना रहा। महाराष्ट्र ने पहले स्थान पंजाब को दे दिया और तब से पंजाब पहले स्थान पर चला आ रहा है। हरियाणा ने पश्चिमी बंगाल का स्थान ले लिया, जबकि तमिलनाडु के स्थान पर आन्ध्र प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश के स्थान पर तमिलनाडु आ गया। बिहार का स्थान सब से नीचे ही बना रहा। पंजाब, हरियाणा तथा आन्ध्र प्रदेश की स्थिति बढ़ने का प्रमुख कारण यह रहा कि उनकी कृषि उत्पादकता में और नए उद्यम शुरू करने में, विशेष रूप से लघु उद्योग शुरू करने में, तेजी से वृद्धि हुई। अन्य विकसित राज्यों में उद्योगों के विद्यमान में कोई उपलब्ध नहीं हुई। नए उद्यमों तथा निवेशों की पहले से समृद्ध क्षेत्रों की ओर आकर्षित होने की प्रवृत्ति बनी रही।

प्रादेशिक असमानताओं की समस्या के प्रति चर्चित योजना का दृष्टिकोण अधिक यथार्थिक रहा है। प्रादेशिक असंतुलन दूर करने के लिए योजना ने विविध फार्मूला निकाला है— प्रथम, केन्द्रीय सहायता के बँटवारे पर प्रति प्रतिनिधत्व (weightage); दूसरे, केन्द्रीय परियोजनाओं की कुछे क्षेत्रों में अवस्थिति (Location); और तीसरे, विषय संस्थाओं की विधियों तथा नीतियों में समायोजन ताकि कुछे क्षेत्रों में छूटें तथा मध्यम उद्योगों की रियायती विनियमन किया जा सके।

चतुर्थ योजना की कुछे प्रदेशों के विकास की नीतियों को पांचवीं योजना में चालू रखा गया सिवाय इसके कि आदिवासी उप-योजनाओं के मामले में केन्द्रीय सहायता का अनुपात 25% रखा गया जबकि सूखे प्रवृत्त क्षेत्र कार्यक्रम और पहलू क्षेत्र योजनाओं में इसका अंश 50% रखा गया।

छठी योजना, 1980-85, ने प्रादेशिक असमानताएँ दूर करने के लिए चालू नीतियों को जारी करने की आवश्यकता पर बल दिया। साथ में, योजना इन नीतियों की योजना-अवधि में अपनाने के सुझाव दिए—(i) उत्पादकता बढ़ाने के लिए कुछे क्षेत्रों में दक्षताओं तथा प्रौद्योगिक का प्रसार। (ii) ऐसे क्षेत्रों के निर्बल साधन-आधार को दृढ़ करने के लिए उनके विकास के लिए विशिष्ट प्रोग्राम अपनाना। (iii) ऐसे क्षेत्र-विकास के विशिष्ट प्रोग्रामों को राज्य की समस्त विकास योजना के सबूद करना ताकि उन्हें लागत प्रभावी (Cost effective) बनाया जा सके। (iv) निजी उद्यमियों से संबंधित केन्द्रीय एवं राज्यों की निवेश तथा प्रोत्साहन स्कीमों जैसे रियायती विनियम, प्राथमिक मुद्रा, कर राहत, निवेश तथा व्याज सहायिका (Subsidy) आदि का मूल्यांकन एवं रूपांतरण (modification) (v) क्षेत्रीय आयोजना प्रबंधों को दृढ़ करना ताकि विविध संस्थाएँ, वणिज्य बैंक, तथा सहकारिताएँ कुछे प्रदेशों में कृषि एवं सबूद क्रियाओं तथा ग्रामीण एवं छोटे उद्योगों में उधार देने के कार्य को प्रभावित बना सकें। अन्तिम NCBDA (National Committee on Development of Backwardness Areas) के सुझावों पर विचार, एवं संशोधन करके उन्हें छठी योजना में लागू किया जाए।

प्रादेशिक असमानताओं के अनुमान (Estimates of Regional Disparities)

आर्थिक और वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान ने भारत में प्रादेशिक असमानताओं को राज्यों द्वारा फसल-उत्पादन से 1960-61 से 1970-71 के दशक में प्राप्त कृषि आय द्वारा व्यक्त किया है। पहले से ही विकसित राज्यों में यह आय तीव्र वृद्धि दर से बढ़ी, जबकि कुछ राज्यों में यह असंतोषजनक रही। 1960-61 से 1970-71 की अवधि में राष्ट्रीय औसत कृषि आय 142.6 प्रतिशत बढ़ी। पंजाब में सबसे अधिक 224.2 प्रतिशत की वृद्धि से हुई, इसके बाद हरियाणा में 223.5 प्रतिशत, गुजरात में 203 प्रतिशत और राजस्थान में 200 प्रतिशत हुई। मध्य, उड़ीसा, बम्बई एवं कश्मीर और केरल में भी वृद्धि राष्ट्रीय औसत से अधिक रही। बाकी सभी राज्य राष्ट्रीय औसत कृषि आय की वृद्धि दर से नीचे थे।

न्यूनताएँ तथा सीमित विकासगत संभावनाएँ हैं, उन प्रदेशों के लिए कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए जो स्थानीय युवकों संस्थान सुधारों तक होना चाहिए। फिर परिवर्तनीय राजस्थान के जिन अकाल-प्रवृत्त प्रदेशों में विकट परिस्थितियाँ कृषि में औद्योगिक प्रगति और जल व्यवस्था, बाढ़ नियंत्रण और परिवहन एवं संचार सुधार से लेकर सामाजिक एवं प्रतिवर्ष मील से अधिक है परन्तु कृषि मन्द है और कोई खनिज साधन भी नहीं है, उनमें विकास कार्यक्रमों का प्रसार उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश तथा बिहार के मैदानों में स्थित जिन पिछड़े क्षेत्रों में, जनसंख्या की गहनताएँ 1000 बीघर, तकनीक-आर्थिक सर्वेक्षण के बाद प्रत्येक प्रदेश के लिए पृथक विकास-कार्यक्रम होने चाहिए।

छोटे-छोटे क्षेत्रों के विकास का उत्तरदायित्वपूर्ण रूप से राज्यों पर डाल दिया जाए। राज्यों के लिए पर्याप्त निधियाँ उपलब्ध करीं। जिन बहुत बड़ी परियोजनाओं पर बड़े निवेश आवश्यक हों, उन्हें वृद्धि प्रदेशों की जरूरत तथा महत्त्व का अध्ययन करने के बाद उनके विकास के लिए केन्द्र उन सामाजिक विकास का जाए।

सर्वोत्तम व्यवहार की शिकारियों दूर करने के लिए किसी समरूप कमीटी का प्रयोग करते हुए पिछड़े प्रदेशों का पहला कदम यह होना चाहिए कि प्रादेशिक असमानताओं की समस्या को निरपेक्ष मूल्यांकन और केन्द्र द्वारा नीति संबंधी उपाय (Policy Measures)

असमानताएँ कम नहीं हुई हैं बावजूद पिछली तीन शताब्दियों में पर्याप्त समग्र विकास होने का।

श्री० राजकृष्ण निकर्ष देते हैं—यह दिखाने के लिए बहुत प्रमाण है कि विभिन्न आयामों में अन्तःराज्य पंचाब, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु तथा हरियाणा की तुलना में पिछड़े हुए राज्य हैं।

राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में सामाजिक सेवाओं की कमी पाई जाती है। अतः वे महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, पश्चिम बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु तथा हरियाणा की तुलना में पिछड़े हुए राज्य हैं।

आर्थिक संरचना (Infrastructure) तथा सामाजिक सेवा सूचक भी यह बताते हैं कि पानी, बिजली, परिवहन आदि की उपलब्ध अत्यन्त अल्प। अतः राज्य असमानताएँ पाई जाती हैं। बिहार, मध्य प्रदेश, राज्यों का केन्द्रीय निवेश में भाग बहुत कम है।

श्री० दूंसरी और, महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, एवं पंचाब के VAMP और PWM आर्थिक है जबकि इन (public enterprises) के रूप में केन्द्रीय निवेश की सबसे अधिक प्रतिशतता (25%) इस राज्य में अवस्थित 78 कंपनियों तथा PWM भी सबसे कम 5 प्रतिशत था, बावजूद इस तथ्य के कि मार्च 1978 के अन्त में लोक उद्योगों में सूचकांक के अनुसार सभी राज्यों में से बिहार सबसे पिछड़ा राज्य है। 1976-77 में इसका VAMP सबसे कम added by manufacture per capita) तथा PWM (Proportion of workers in manufacturing).

औद्योगिक क्षेत्र में केवल दो सूचक अन्तःराज्य असमानताओं को सिद्ध करते हैं। वे हैं—VAMP (Value added by manufacture per capita) तथा PWM (Proportion of workers in manufacturing).

नहीं है कि उनकी प्राकृतिक साधन समानता कम है परन्तु वे इसलिए गरीब हैं कि उनमें निवेश काफी नहीं हुआ है। सिवाय संभाव्य यह बताते हैं कि विभिन्न राज्यों में उनकी वृद्धि बहुत-असमान रही। फिर, दरिद्र राज्य इसलिए गरीब हैं वृद्धि हुई। ऐसे कृषि सूचक जैसे वृद्धि दर, उर्वरकों का उपयोग, शुद्ध बीजा गया क्षेत्र, तथा छोट, मध्यम एवं बड़े शाखाओं में अन्तः राज्य आय असमानताएँ कुछ कम हुईं परन्तु 1960 एवं 1970 की दशकियों में इन असमानताओं

श्री० राजकृष्ण ने मई 1980 के G.L. Mehta Memorial Lecture में यह बताया कि 1950 की राज्यों के बीच असमानताएँ और भी बड़ी हो गईं।

पश्चिमी, दक्षिणी तथा कुछ उत्तरी राज्यों जैसे पंचाब, हरियाणा तथा राजस्थान और दूंसरी और उत्तर-मध्य एवं पूर्वी नहीं पड़े। बल्कि असमानताएँ बढ़ी हैं। और फिर, जो फसल उत्पादन में जो कृषि कानि हो रही है उसने एक और इससे स्पष्ट है कि प्रादेशिक असमानताओं को कम करने के लिए केन्द्र द्वारा अपनाई गई नीतियों का कोई प्रभाव से नीचे था।

पंचाब जिसका प्रतिव्यक्ति शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद 2278 रु. था। उसकी केवल 15.13 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा

उड़ीसा, त्रिपुरा, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, असम, उत्तर प्रदेश और कर्नाटक। सबसे समृद्ध राज्य में यह बताया है कि नौ राज्यों की 48.13 प्रतिशत जनसंख्या 1977-78 में गरीबी रेखा से नीचे थी। ये राज्य थे Economic Times द्वारा किया गया एक अध्ययन भारत के विभिन्न राज्यों में गरीबी के प्रसार के बारे में यह बताया है कि नौ राज्यों की 48.13 प्रतिशत जनसंख्या 1977-78 में गरीबी रेखा से नीचे थी। ये राज्य थे

श्री० राजकृष्ण के सामकालन संबंधी व्यापक दृष्टिकोण

नीचे

सातवें, जैसा कि पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की प्रणालियों पर कार्यकारी समूह (Working Group on Incentives for Industrial Development in Backward Areas) ने सिफारिश की है, पिछड़े प्रदेशों में 'सर्वोद्योग बिन्दु' (growing points) विकसित किए जाएं। इस तरह की नीति ऐसे ढंग की शहरी बस्तियां स्थापित करने की परिकल्पना करती है जो श्रमिकों को पड़ोसी गांवों से ऐसे शहरों में खींचे जाने को

उठे, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, भारत में पंचाब तथा हरियाणा जैसे समृद्धतम राज्यों का विकास जलित कृषि विकास के माध्यम से हुआ है। बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि के पिछड़े क्षेत्रों को सुधरे बीजों, रासायनिक खादों, कीटनाशकों के माध्यम से और सबसे बढ़कर कृषकों को सिंचाई एवं ऋण सुविधाएं प्रदान करके विकसित किया जा सकता है। जैसा कि हरित क्रान्ति ने निगान सिद्ध कर दिया है, भारत की ग्राम अनुस्थापित अधिकांशता में कृषि-विकास अधिक महत्वपूर्ण है। इसने कई राज्यों में प्रति व्यक्ति आय बहुत बढ़ा दी है।

पांचवें, पिछड़े क्षेत्रों में ग्राम तथा लघु-उद्योगों के विकास के लिए एककेंद्रित कार्यक्रम चलाए जाएं। राज्य सभी आधारभूत सुविधाएँ प्रदान करे जैसे कि शक्ति, परिवहन, संचार, प्रशिक्षण संस्थाएँ, बिजली आदि की सुविधाएँ। ग्रामीण अवस्था में, उद्योगों को प्रोत्साहित करने वाले उद्योग शुरू किए जा सकते हैं। हालाँकि विनिर्माणकारी उद्योगों की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। इस तरह की नीति उस क्षेत्र के लोगों को रोजगार के अधिक सुअवसर प्रदान करने में सहायक होगी। पंचाब अपनी सर्वाधिक के लिए पिछड़े क्षेत्रों में लघु-उद्योगों के विकास का बहुत आशीरी है।

छठे, औद्योगिक बस्तियाँ स्थापित की जाएं और प्रारंभ में उन क्षेत्रों को राज्य सभी सुविधाएँ प्रदान करे। जहाँ है कि नई औद्योगिक अवस्थिति नीति बनाई जाए जिसके अनुसार पिछड़े क्षेत्रों में छोटे-छोटे कारखानों के निकट बड़ी औद्योगिक कारखाने बन गए हैं जिन्हें महानगरों (megapolises) की संज्ञा दी जाती है। इन सबसे यह जरूरी हो की परिवर्तितता एवं सांठनात्मक कठिनाइयों के बावजूद दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के बड़े-बड़े तथा श्रम संबंधी कृशालताओं और बाजारों के निकट होने का लाभ उठा सकते हैं। परन्तु इस तरह की अवस्थितियों प्रवृत्ति भी बनी हुई है कि उद्योगों की अवस्थिति बड़े शहरों के निकट ही हो ही क्योंकि इससे वे उद्योगीय, व्यावसायिक आधिकांश उद्योगों को प्रेरित करते हैं कि वे नगरों के बाहर परिधि क्षेत्रों में अवस्थितियाँ खोजें। साथ ही साथ यह अपेक्षा प्रादेशिक अवस्थिति का महत्त्व बढ़ गया है।" और फिर, अधिक श्रमिकों की आवश्यकताएँ अथवा बड़े संयंत्र बिजली दी जाती है।" परिणामतः आधिकांश उद्योग कैलाशपुर (foot-loose) बन गए हैं और स्थान अवस्थिति की केंद्रों की अब स्थानीय बिजलीघरों पर नहीं निर्भर रहना पड़ता। अब तो प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय पिछड़े (grids) से लेल परिवहन का विकास होने से श्रमिक दूरदराज से प्रतिदिन औद्योगिक केंद्रों में आते हैं। शक्ति के लिए भी उन नीति का सुधार होना चाहिए। उक्त परिवर्तनों ने औद्योगिक अवस्थिति का संधारण व्यापक बना दी है। सड़क एवं संचार में जो तकनीकी-आर्थिक परिवर्तन हो रहे हैं उनके प्रकाश में औद्योगिक अवस्थितियों (locations) की ऐसी गयी था कि केन्द्रीय क्षेत्रों में लाइसेंस न दिए जाएं। परिवहन, संचार, शक्ति के प्रचलन एवं वितरण और औद्योगिक शक्ति करने की तैयारी हो उठे कर्जा, रियायतें तथा आर्थिक सहायताएँ दी जाएं। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संसाधन परिवहन, संचार आदि की आधारभूत सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए और जो उद्योगीय पिछड़े क्षेत्रों में परियोजनाएँ गयी थी कि औद्योगिक बस्तियाँ तथा औद्योगिक विकास क्षेत्र स्थापित करने की जरूरत है, जहाँ शक्ति, जल, बिजली आदि की सुविधाएँ प्रदान की जाएं तथा लघु-उद्योगों के लिए एककेंद्रित तथा वर्धमान योजना में बल दिया

जाएँ, औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े प्रदेशों का विकास करने के लिए वृत्तीय तथा वर्धमान योजना में बल दिया

का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर लेना चाहिए।
concept) रही है। इस तरह की स्थितियों में, बड़ी परियोजनाएँ प्रारंभ करने से पहले उनके प्रादेशिक वृद्धि परियोजनाएँ इष्टतम (non-optimum) स्थानों पर बड़ी परियोजनाएँ लगा दी गई हैं और उनमें अन्तर्ग्रस्त लागतों पर ध्यान नहीं आया पर कई बड़ी परियोजनाएँ शुरू की गई हैं। परन्तु हाल के वर्षों में राजनीतिक दबावों के परिणामस्वरूप साधनों के विकास की परियोजनाएँ शुरू की जा सकती हैं। प्रथम योजना से देश में तकनीकी-आर्थिक दक्षता के के आसपास के श्रेष्ठ अधिक सुअवसरों वाले प्रदेशों में जाने के लिए प्रोत्साहित करें और उन प्रदेशों में प्राकृतिक

नीति

क्षेत्रीय योजनाओं के
समाकलन संबंधी
व्यापक दृष्टि का

नोट

प्रोत्साहन दे। इससे निर्माण लागतें कम होंगी, शहरी नौकरियों से उपार्जित आय के प्रवाह के माध्यम से ग्राम-विकास का पोषण होगा और नए विचारों तथा नई उत्पाद-तकनीकों के ज्ञान एवं जीवन-पद्धति का प्रसार होगा। हो सकता है कि संवृद्धिशील बिन्दु ही पिछड़े क्षेत्रों में बाजार का रूप धारण कर लें जो कृषि के आधुनिकीकरण के लिए विविध आगतें प्रदान करके और कृषि-उत्पादनों के विपणन एवं माल तैयार करने तथा टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण की सुविधाएं देकर कृषकों को लाभ पहुंचाए। सारे राज्य में शहरी बस्तियाँ, मार्केट, तथा लघु-सचिवालय (mini-secretariates) बनाकर इस तरह के संवृद्धिशील बिन्दु स्थापित करने में पंजाब तथा हरियाणा सबसे आगे हैं। भारत के अन्य राज्य इनसे संकेत लेकर अपने पिछड़े क्षेत्रों का विकास कर सकते हैं।

आठवें, प्रो० राजकृष्ण ने सुझाया है कि अधिकतर सार्वजनिक निवेश पिछड़े क्षेत्रों में संरचनात्मक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए किया जाए ताकि वे गरीबों के लिए नए रोजगार और आय-स्रोत प्रजनित कर सकें। इसके अतिरिक्त अन्तः क्षेत्रीय प्रादेशिक असमानताएँ दूर करने की नीति में ये सम्मिलित हों—(क) राज्य, जिला और निम्न स्तरों पर कार्यकुशल आयोजन एवं कार्यान्वित प्रणालियों का निर्माण जिन्हें पर्याप्त विकेन्द्रीकृत शक्तियाँ प्राप्त हों, और (ख) बहुत अधिक वित्तीय संसाधन केन्द्र में राज्यों को और राज्यों में जिलों/ब्लाकों को बाँटे जाएँ।

महाराष्ट्र सरकार द्वारा स्थापित Dandekar Committee on Removing Regional Disparities ने अपनी रिपोर्ट (1985) में एक वैधानिक देखरेख करने वाला प्राधिकरण (authority) स्थापित करने का सुझाव दिया है जो कि क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने की प्रक्रिया, नीति और प्रोग्रामों की निगरानी करे और प्रति वर्ष रिपोर्ट करे। कमेटी ने यह भी सुझाव दिया है कि प्रोत्साहनों की एकमुश्त स्कीम दूरी के तत्व के भी समक्ष रखे और दूरी वाले क्षेत्र जो क्षेत्रीय अभाव से ग्रस्त हैं उन्हें पर्याप्त मात्रा में क्षतिपूर्ति की जाए। प्रोत्साहनों की एकमुश्त स्कीम के लिए यह तहसील को वर्गीकरण की इकाई का सुझाव देती है। कमेटी के शब्दों में “The strategy is development by lifting the bottom rather than pulling up the top.” यदि यह नीति महाराष्ट्र में सफल होती है तो इसे राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनाया जा सकता है।

दसवीं और ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना और क्षेत्रीय असमानताएँ

दसवीं योजनाओं ने क्षेत्रीय असंतुलन की समस्या को एक चुनौती के रूप में लिया, क्योंकि पिछड़े राज्य और क्षेत्र, भूतकाल के किए गए बहुत से प्रयासों के बावजूद, गरीबी के ऊंचे स्तर, निम्न विकास और घटिया प्रशासन के कारण विकास नहीं कर पाए। अतः वे वर्तमान नीतियों की विफलता का सबसे भयंकर उदाहरण है और इस कारण दसवीं योजना में इनके समाधान की ओर विशेष ध्यान दिया गया।

कम-विकसित राज्यों के बारे में दसवीं योजना की रणनीति

चूँकि वे राज्य जिन के पास बेहतर आधारसंरचना होती है सामान्यतः अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक निजी निवेश आकर्षित करने में सफल हो जाते हैं, दसवीं योजना में इस बहुआयामी रणनीति को अपनाया गया ताकि कम-विकसित राज्यों में पिछड़े क्षेत्रों के विकास को त्वरित किया जा सके। अतः दसवीं योजना की रणनीति थी कि

- (क) पूँजीनिवेश (Capital Investment) का उच्च स्तर इस रणनीति का महत्वपूर्ण अंग है। केन्द्रीय सहायता का उच्च अनुपात और राज्य ने अपने संसाधनों द्वारा कम-विकसित राज्यों में आधारसंरचना को उन्नत करना।
- (ख) केवल राशि उपलब्ध कराने से पिछड़ापन दूर नहीं हो सकता और विकास प्रयास के साथ अच्छे प्रशासन और संस्थानात्मक सुधारों (Institutional Reforms) को भी लागू करना होगा ताकि लक्षित निवेश प्रभाव बन सके।

इस रणनीति के आधार पर दसवीं योजना में एक नयी योजना जिसे राष्ट्रीय समविकास योजना (National Equal Development Plan) कहा गया, आरंभ की गयी। इस नयी पहल को 2002-03 से पिछड़े क्षेत्रों में लागू किया गया ताकि पिछड़े क्षेत्र के विकास पर विशेष बल देने वाले प्रोग्राम चालू कर क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने में सहायता प्राप्त हो और पिछड़े क्षेत्रों में गरीबी और बेरोजगारी समाप्त की जा सके। इस योजना का उद्देश्य उत्पादित बढ़ाने वाले सुधारों को इन राज्यों में सुविधाजनक बनाना था।

नोट

पिछड़े क्षेत्रों में विभिन्न विकास प्रोग्रामों के कार्यान्वयन से जो पिछली पंचवर्षीय योजनाओं, विशेषकर नवीं योजना में, यह बात स्पष्ट उभरकर आयी कि विकास-प्रक्रिया में पूंजी का अभाव एकमात्र अड़चन नहीं है। प्रायः यह देखा गया है कि वर्तमान नियम और जिस प्रकार से उनकी व्याख्या की जाती है, गरीब और सीमान्त लक्षित समूहों के लिए सेवाओं को इन वर्गों तक पहुंचाने में रुकावट बन जाते हैं।

राष्ट्रीय समविकास योजना के अधीन प्रत्येक राज्य को ऐसे सुधारों की पहचान और चुनाव करना होगा जो वे लागू करना चाहते हैं और इसके साथ केन्द्र सरकार के साथ सुधार प्रक्रिया को लागू करने के लिए संधि करनी होगी। केवल वही राज्य जो केन्द्र सरकार से संधि करते हैं, इस योजना के अधीन आबंटन के हकदार होंगे।

ग्यारहवीं योजना में क्षेत्रीय असमानता को दूर करने के उपाय

क्षेत्रीय असमानताओं पर ग्यारहवीं योजना ने टिप्पणी करते हुए यह उल्लेख किया: "क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करना आयोजन-प्रक्रिया का महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। किन्तु इन प्रयासों के बावजूद, क्षेत्रीय असमानताएं लगातार बढ़ती ही रही हैं और आर्थिक विकास के लाभ अपेक्षाकृत बेहतर विकसित क्षेत्रों को तक ही सीमित रहे हैं। विरोधाभास यह है कि प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न क्षेत्र अभी पीछे चल रहे हैं। इसका परिणामस्वरूप नक्सलवादी आन्दोलन की जकड़ मजबूत हो गयी है और इन क्षेत्रों में राज्यों के विभाजन की मांग बढ़ गयी है। नियंत्रणों के हटाने और बाहरी शक्तियों के लिए अर्थव्यवस्था को खोल देने के साथ बाजार-शक्तियों के दबाव के कारण राज्य के अन्दर और अन्तःराज्यीय असमानताओं (Inter-state Disparities) में वृद्धि होने की प्रवृत्ति बढ़ गयी है।"

सरकार को चेतावनी देते हुए ग्यारहवीं योजना में इस बात पर बल दिया गया: "क्षेत्रीय असमानताओं को सुधारना अपने आपमें एक लक्ष्य ही नहीं, बल्कि यह देश को समन्वित सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे को कायम रखने के लिए अनिवार्य है, जिसके बिना देश में असंतोष, अराजकता और कानून एवं व्यवस्था की स्थिति भंग हो सकती है।"

ग्यारहवीं योजना ने उन प्रोग्रामों की सूची दी है जोकि गरीब-क्षेत्रों और गरीब-वर्गों, विशेषकर उनके लिए जो गरीबी-रेखा के नीचे हैं, विशेष रूप से लक्षित हैं। संसाधन-हस्तांतरण (Resources transfer) के प्रोग्राम जो केन्द्र द्वारा चलाए जा रहे हैं, निम्नलिखित हैं—

1. प्रधानमंत्री ग्राम स्वर्णजयंती स्वरोजगार योजना गरीबी रेखा (Poverty line) के नीचे परिवारों के लिए है और इसमें अनुसूचित एवं जनजातियों के लिए 50% लाभ और अन्य कमजोर वर्गों की सुरक्षा को बढ़ावा देना है।
2. इंदिरा आवास योजना में मकानों के अभाव को 75% महत्व और गरीबी-अनुपात को 25% महत्व प्रदान करती है।
3. राष्ट्रीय ग्राम स्वास्थ्य मिशन (National Rural Health Mission) ऐसे 18 राज्यों पर केन्द्रित है जिनमें या तो सार्वजनिक स्वास्थ्य सूचक कमजोर हैं या आधारसंरचना (Infrastructure) कमजोर है। इस पर व्यय की गयी राशि का 23% दो राज्यों को उपलब्ध कराया गया अर्थात् उत्तर प्रदेश का 16% और बिहार को 7%।
4. सर्व शिक्षा अभियान—इस प्रोग्राम के आधीन सात राज्यों अर्थात् उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान और उड़ीसा ने कुल परिव्यय का 59% प्राप्त किया।
5. अनुपूरक पोषण प्रोग्राम (Supplementary Nutrition Programme) के आधीन सात पिछड़े राज्यों को कुल आबंटन का 82.3% प्राप्त हुआ चाहे इसकी जनसंख्या केवल 44% थी।

इन पांचों योजनाओं पर किए गए कुल 31,901 करोड़ रुपये के आबंटन में पिछले राज्यों का भाग 17,864 करोड़ रुपये था—कुल का 56 प्रतिशत।

राष्ट्रीय समविकास योजना (National Equal Development Scheme) 2003-04 में आरंभ की गयी और इसके द्वारा निम्न कृषि-उत्पादित (Agricultural Productivity), बेरोजगारी और आधारसंरचना (Infrastructure) में भारी अभाव को दूर करने की समस्याओं को दूर करने का लक्ष्य रखा गया। इस योजना में 147 पिछले जिलों को उन्नत करने के लिए साधन जुटाए गए और प्रत्येक जिले के लिए 45 करोड़ रुपये की प्राप्ति तय की गयी। इस योजना के अधीन दसवीं योजना के दौरान 4.763 करोड़ रुपये दिए गए।

पिछड़े क्षेत्रों के लिए अनुदान कोष (Backward regions grant fund) द्वारा भारत-निर्माण और राष्ट्रीय ग्राम रोजगार गारंटी प्रोग्राम को सहायता प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया जिसका स्पष्ट उद्देश्य आधारसंरचना आवश्यकताओं को दूर करना था।

इस योजना के दो अंग हैं अर्थात् (क) जिला अंग जिसके अधीन 250 जिले हैं और (ख) बिहार राज्य एवं उड़ीसा के कालाहांडी-बोलनगीर-कोरापुट जिलों के लिए विशेष योजना जिसका उद्देश्य पावर, सड़क-जुड़ाव (Road connectivity), सिंचाई, वाटरशेड विकास एवं वाणिज्यी को उन्नत करना है। दसवीं योजना के दौरान विशेष योजना (Special Plan) के लिए 1,000 करोड़ रुपये का आबंटन तय किया गया।

उत्तर-पूर्वीय क्षेत्र का विकास

उत्तर-पूर्वीय क्षेत्र में शामिल राज्य हैं: अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मिज़ोरम, मेघालय, नागालैण्ड, सिक्किम और त्रिपुरा। इन राज्यों को विशेष-वर्ग के राज्य में वर्गीकृत किया गया है। चूंकि इन राज्यों ने आयोजन के पहले दो दशकों में भाग नहीं लिया, ये आधारसंरचना विकास के लाभ से वंचित रहे। उत्तर-पूर्वीय परिषद् (North Eastern Council) के गठित होने के पश्चात् ही इन राज्यों की ओर विशेष ध्यान दिया गया। 1973 और 2006-07 के दौरान, उत्तर-पूर्वीय क्षेत्र में 7,182 करोड़ रुपये का निवेश किया गया। इसमें से 3,315 करोड़ रुपये (46.7%) परिवहन एवं संचार के विकास पर, और 2,586 करोड़ रुपये (36%) पावर और जल के विकास के लिए इस्तेमाल किए गए। इन दो मदों पर कुल निवेश का लगभग 83% व्यय किए जाने के पश्चात् कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य एवं शिक्षा के रूप में मानवीय विकास के लिए बहुत थोड़े साधन शेष रह गए।

उत्तर-पूर्वीय क्षेत्र में 62,357 मेगावाट की जलविद्युत क्षमता (Hydro-power potential) है जो भारत की 1,48,701 मेगावाट की क्षमता का 42.5% है। केवल अरुणाचल प्रदेश में 50,238 मेगावाट की क्षमता है जो उत्तर-पूर्वीय क्षेत्र की कुल क्षमता का 80% है। यह देश की कुल क्षमता का 34% है। ग्यारहवीं योजना में बड़े दुःख से यह उल्लेख किया गया है—“इस क्षमता को स्वीकार करते हुए, इस दिशा में इच्छित प्रयास नहीं किया गया क्योंकि जल-विद्युत विकास के लिए भारी निवेश की जरूरत है।” चूंकि देश के कोयले के संसाधन अगले 30 वर्षों में समाप्त हो जाने की प्रत्याशा है, यह कहीं वांछनीय होगा कि ऐसे बड़े हाइड्रोपावर प्राजेक्टों का आयोजन किया जाए और इससे ऊर्जा क्षेत्र में उत्तर-पूर्वीय क्षेत्र का महत्त्व बढ़ जाएगा, जो न केवल उत्तर-पूर्वीय क्षेत्र के लिए लाभदायक होगा बल्कि सारे देश के लिए भी लाभदायक होगा। इससे उत्तर-पूर्वीय क्षेत्र में आने वाली प्राकृतिक विपदाएं (Natural disasters) भी कम हो जाएंगे जिनसे बाढ़ एवं भू-स्खलन (Landslides) के बार-बार घटित होने की संभावना कम हो जाएगी।

दसवीं योजना के दौरान, चाहे उत्तर-पूर्वीय क्षेत्र मानवीय पूंजी (Human Capital) और प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से विकास के लिए समृद्ध है, परन्तु आधारसंरचना के अभाव ने क्षेत्र की विकास-प्रक्रिया पर सीमा बन्धन लगा दिए हैं। उत्तर पूर्वीय क्षेत्र में वर्तमान स्थिति ऐसी है कि “प्राथमिक क्षेत्र मुख्यतः अवरुद्ध रहा है; द्वितीयक क्षेत्र बहुत से कारणों के परिणामस्वरूप बाधित रहा है। आयोजन-प्रक्रिया ने मुख्यतः तृतीयक क्षेत्र के विकास को प्रोन्नत किया है।” इस बात की आवश्यकता है कि उत्तर-पूर्वीय क्षेत्र में कृषि एवं उद्योग के विकास को प्रोत्साहित किया जाए।

सारणी 4.1 भारत में राज्यों में मानवीय विकास सूचकांकों में असमानता

राज्य	राज्य में जिलों की संख्या	राज्य का मानवीय विकास सूचकांक	किसी राज्य के जिले में उच्चतम	किसी राज्य के जिले में निम्नतम HDI	विभेद का गुणांक (%)
केरल	14	0.773	0.801	0.749	2.37
तमिलनाडु	29	0.657	0.757	0.584	5.97
कर्नाटक	27	0.633	0.753	0.547	7.62
नागालैंड	8	0.620	0.733	0.450	15.89
पश्चिम बंगाल	18	0.610	0.780	0.440	16.68
महाराष्ट्र	34	0.580	1.000	0.210	36.55
पंजाब	17	0.537	0.761	0.633	4.93
उत्तर प्रदेश	70	0.532	0.710	0.366	11.59
अरुणाचल प्रदेश	17	0.515	0.660	0.362	18.36
गुजरात	25	0.479	0.582	0.309	16.14
छत्तीसगढ़	16	0.471	0.625	0.264	21.16
सिक्किम	4	0.454	0.501	0.391	8.92
हिमाचल प्रदेश	12	0.433	0.534	0.390	11.14
राजस्थान	32	0.424	0.656	0.456	8.88
असम	23	0.407	0.650	0.214	27.9
उड़ीसा	30	0.404	0.736	0.389	16.94
मध्य प्रदेश	45	0.394	0.694	0.372	11.37

नोट—राज्यों को राज्यीय मानवीय विकास सूचकांकों के आधार पर घटते हुए क्रम में प्रस्तुत किया गया है।

स्रोत—योजना आयोग, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12), खण्ड 11

अर्थशास्त्रीय व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें वस्तुएं एवं सेवायें आगे उत्पादन व उपभोग के लिए उत्पादित तथा वितरित की जाती हैं। यह व्यवस्था तर्कसंगत आर्थिक उद्देश्यों पर आधारित है। यहां उद्देश्य है उत्पादकता को सबसे अधिक और उत्पादन लगातार को सबसे कम करना। दूसरे शब्दों में, यह उत्पादन के कारकों का सबसे कम लागत में इस्तेमाल है।

एक आदर्श अर्थव्यवस्था की यही तस्वीर है। अगर आर्थिक व्यवस्था (या उप-व्यवस्था) दूसरी उप-व्यवस्था से जुड़ी नहीं होती तो यह सही होता। यथार्थ में सारी उप-व्यवस्थायें एक-दूसरे से इस घनिष्ठता के साथ जुड़ी हैं कि इनको एक-दूसरे से अलग करना और दूसरे को इसी प्रकार से अलगाव में देखना असंभव है। अर्थव्यवस्था इस नियम का अपवाद नहीं है।

किसी अर्थव्यवस्था के बारे में एक महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय प्रश्न यह है कि किसी बड़े समाज में मौजूद आर्थिक संगति किस हद तक दूसरे मूल्यों व संस्थाओं द्वारा सीमित होती है। दूसरा संबद्ध प्रश्न उसी तरह से समान रूप से महत्वपूर्ण है कि आर्थिक संगति को दूसरे मूल्य किस तरह सीमित करते हैं?

इन सवालों के जवाब आर्थिक उपव्यवस्था और दूसरे कार्यकारी उप-व्यवस्था के बीच के अन्तर्संबंधों में पाये जा सकते हैं। यह विषय विस्तृत बहस की मांग करता है। लेकिन जगह की कमी के कारण यहां केवल व्यापक

वाहिए।

संशोधित की जा सकती है। इतना ही नहीं आर्थिक संगति स्वयं एक मूल्य है जो समाज के सदस्यों में निहित होने
सकिए उपव्यवस्था से जोड़ा जा सकता है। परिणामस्वरूप आर्थिक संगति उप-व्यवस्थाओं से जुड़े मूल्यों के ज़रिए
इस प्रकार आर्थिक संगति आदर्श अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता है। वास्तविक अर्थव्यवस्था को दूसरी

वैज्ञानिक दृष्टि और तकनीक ज्ञान के साथ ज़्यादा शक्तिपूर्ण ढंग से निर्वहण कर रहा होता है।"
असहज स्थिति में जोड़ देना है जिसमें वह अपनी विश्व-दृष्टि और सामाजिक संस्थाओं के प्रोत्साहन के बल पर
अनुसंधान घटित होती है, हिन्दू धर्म की मानवीय महत्वाकांक्षाओं को कम करता है। यह मनुष्य की उससे ज़्यादा
जैसी भावनाओं पर जोर देकर अपने भक्तों को यह बताने का कोशिश करता है कि कोई घटना पूरे ब्रह्माण्ड के कार्य-कारण नियमों के
दूसरे धर्मों, जैसे हिन्दू धर्म के मामलों पर विचार कर सकते हैं। वास्तव में अपने धर्म की स्वीकृति, ज्ञान, बलिदान
होना नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो उनके निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। हम विश्व के
व्यावहारिक नैतिकता और आर्थिक व्यवसाय के चरित्र में सीखा संबंध है, " आर्थिक विकास के इतिहास के अध्यायों
प्रकार का विचारना नैतिकता के प्रारंभिक दौर में इसके विकास में मदद दी। उनका यह निष्कर्ष कि "समुदाय की
है। उदाहरण के लिए, संसद बल ने पूँजीवादी विकास के अपने गहन अध्ययन में यह रेखांकित किया कि किस
प्रतिर नहीं कर सकता। कार्य करने की इच्छा उन मूल्यों से प्रभावित होती है जो लोगों को कोई विशेष समूह मानना
किया जा सकता। यह बात अब कमजोरी साबित हो चुकी है कि आर्थिक उपहार अकेले लोगों को काम करने की
यहाँ तक कि धर्म की भी मूलतः मनुष्य की विश्वदृष्टि से संबद्ध है, आर्थिक उपव्यवस्था से अलग नहीं
छाड़ नहीं दे सकता। इस प्रकार आर्थिक उपव्यवस्था और शैक्षिक उपव्यवस्था एक-दूसरे से गहरे रूप में जुड़े हैं।
उच्च शिक्षा की मांग करते हैं शिक्षा के गुण और पढ़ाई में अभिवादन समाज एक उच्च औद्योगिक समाज बनने का
है। बाष्प शक्ति, विद्युत शक्ति, इलेक्ट्रॉनिक शक्ति और अन्ततः रोबो के प्रयोग आदि अर्थात् तकनीकी विकास एवं
बल ने औद्योगिक विकास के बाद वाले समाज को "ज्ञान समाज" कहा है। इस प्रकार का वर्णन सर्वमूल्य बहूत सटीक
हमारे जैसे उच्च तकनीक वाले समाज में शिक्षा के महत्त्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। इतिहास

प्रकृति से बहुत ज़्यादा प्रभावित होती है।

एक सरकार एक मरम अलग दृष्टिकोण रखेगी। इसका अभिप्राय यह है कि अर्थव्यवस्था राजनीतिक उपव्यवस्था की
और अनुसंधान को प्रोत्साहित करेगी। इसके विपरीत स्वतंत्र व्यापार व्यवस्था की विचारधारा में विश्वास करने वाले
अतः समाजवादी विचारधारा की मानने वाले एक सरकार निजी क्षेत्र की कामना पर पर लक्ष्य क्षेत्र के उद्योगों के विस्तार
कोण से भी किया जा सकता है। राजनीतिक विचारधारा समाज के आर्थिक ढाँचे पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है।
औद्योगिक विकास को कुछ हद तक दिया। अर्थव्यवस्था पर राजनीतिक संस्था के प्रभाव का विश्लेषण दूसरे
ने एशियाई देशों में अर्थव्यवस्था की प्रकृति की विवेचन करते हुए बताया कि 'नरम सरकारों' ने इन देशों में
को सुधारने में अपनी कानूनी दायित्वों का पालन नहीं करती, जो औद्योगिक विकास धीमा पड़ जायेगा। गुनार मिहल
उपायक के लिए इन नाम देते, कार्यस्थल पर अनुशासन लागू करने, भ्रष्ट व्यवहारों को रोकने और औद्योगिक संबंधों
केवल उसी परिस्थिति में हो सकता है जिसमें कठिन व ईमानदार श्रम किया जा सके। अगर राजनीतिक संस्था
राजनीतिक संस्था अर्थव्यवस्था के विकास और प्रकृति को निकटता से प्रभावित करती है। आर्थिक विकास
की दृष्टि से आवश्यक शीर्षक अध्याय में विस्तार से इन पर चर्चा हुई है।

विस्तृत परिणाम सहजतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में सक्षम नहीं है जो आर्थिक औद्योगिक व्यवस्था
विपरीत विस्तृत परिवार आधुनिक औद्योगिक व्यवहार के अपनाने व विस्तार में बहुत सारी बाधाएँ खड़ी करता है।
नियमों की जगह ले लेते हैं। स्पष्ट रूप से यह परिवर्तन आधुनिक औद्योगिकीकरण के लिए सुचालक है। इसके
एक केन्द्र वाले परिवार में सर्वव्यापी मूल्य विशेषात्मक मूल्यों में आगे बढ़ जाते हैं और गुणवत्तात्मक नियम बन-बनाने
अनुकूल होता है। बंधनगार रिश्ते गुणवत्तात्मक रूप से दूसरे की अपेक्षा पहले प्रकार में कमजोर होते हैं। परिणामस्वरूप
उच्च रूप से गाढ़ हुआ छोटे आकार का परिवार बड़े परिवार की तुलना में औद्योगिकीकरण की मांगों से ज़्यादा
संबंधों को निर्दिष्ट किया जा सकता है। हम सर्वप्रथम अर्थव्यवस्था पर परिवार की पद्धति के बोझ पर विचार करेंगे।

211

क्षेत्रीय योजनाओं के
समाकलन संबंधी
व्यापक दृष्टिकोण

यूक में ही हम कह सकते हैं कि तकनीक को हम सिर्फ यंत्रिक विभाग से ही नहीं अपना सकती। तकनीक उचित सामाजिक परिस्थितियों की उपलब्धता में ही परिणाम दे सकती है। एक तकनीक जो एक समाज के लिए उपयुक्त हो सकती है दूसरे समाज में अनुपयुक्त और निष्क्रिय भी हो सकती है। इसलिए सिर्फ तकनीकी विकास की बात करना उचित नहीं है। तकनीकी विकास सिर्फ उपयुक्त सामाजिक विकास के परिप्रेक्ष्य में ही मायने रखता है। इसलिए 'सामाजिक-तकनीकी' शब्द का इस्तेमाल ज्यादा उपयुक्त है। तकनीक को अपनाने के संदर्भ में गैलब्रैथ की चेतना बहिन ही उपयुक्त है— "तकनीक से उधार लेना एक सूक्ष्म काम है। सिद्धांततः यह बहिन ही जकरी है यद्यपि एक आदमी को यह जानना चाहिए कि बात क्या बनी। क्या यह सर्वव्यापी प्रयोग की प्रक्रिया के लिए एक आला कदम था? या फिर यह उच्च आर्थिक विकास की अपनाने की आवश्यकता थी? वे (पहले प्रकार की) कम या ज्यादा दोनों प्रकार के विकसित देशों के लिए आवश्यक और उपयुक्त हैं। लेकिन ज्यादा विकसित देशों की ज्यादातर तकनीक श्रम की कमी को दूर करने के उपायों पर आधारित है। वैसे भी फिर वे विकसित देशों की अन्य आवश्यकताओं को तो पूरा करते ही हैं।" आर० टी० गिल का कथन महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं, "आदर्शों के नीचे पर अविकसित देश एक ऐसी तकनीक को अपनाने हैं जो परिवर्तनी तकनीक नहीं है और जो एक अलग प्रकार के

कार्य की नीतिकला और अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र पिछले दो खंडों में हमने संकेत दिया कि कैसे काम संकृति और आर्थिक संगति सांस्कृतिक और सामाजिक कारकों द्वारा परिभाषित होती है। स्पष्टतः कार्य की नीतिकला के सामाजिक नियामक और साथ ही सांस्कृतिक एवं सामाजिक शक्त, जिनका आर्थिक संगति से घनिष्ठ संबंध है, हमारे अध्ययन के अन्तर्गत आते हैं। आर्थिक विकास के कुछ अन्य नियामकों का भी हम संक्षेप में विवेचन कर सकते हैं।

आर्थिक नीतियों का क्रियाकलाप नहीं है बल्कि इसके सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू भी हैं। अनुपालन इनके इस्तेमाल करने की उनकी योग्यता के अनुसार अलग-अलग होती है। आर्थिक विकास सिर्फ इसलिए की योग्यता, अनुभव और ज्ञान दोनों का परिणाम है। आर्थिक विकास के प्रति लोगों की अनुकूला का सांस्कृतिक और सामाजिक शक्तों से निर्धारित होता है। लोगों में उपलब्ध सुविधाओं का सबसे अच्छा इस्तेमाल करने महत्वपूर्ण बात को छोड़ देता है कि उत्पादन के किसी साधन का इस्तेमाल इच्छा पर निर्भर नहीं करता, बल्कि उपलब्ध हो जाती है तो अक्षमतापूर्वक या तो इसका इस्तेमाल होगा या इसे बर्बाद किया जाएगा।" यह निर्देशन एक है— "पूर्वी के उपयुक्त मात्रा में प्रयोग की योग्यता ही विकास का परिणाम है। अगर इसकी परिस्थितियों से पहले में पूर्वी बाधा बन सकती है, पर दूसरे मामलों में नहीं। गैलब्रैथ के उपयुक्त कथन को हम इस संदर्भ में देख सकते जकरी नहीं समझा जाता है कि किसी देश विशेष की अर्थव्यवस्था किस चरण में है। सच्चाई यह है कि एक मामले में पूर्वी बाधा माना जाता है कि यह वकालत सभी देशों के लिए सत्य है। इस संदर्भ में इस बात पर ध्यान देना सकता है। यह हमें यह भी माना जाता है कि पूर्वी आर्थिक विकास के लिए सबसे बड़ी बाधा है। यह एक गलत मान्यता होता है वह दूसरे चरण में अतिवृत्त होता है।" इस कथन की सच्चाई को जानने के लिए एक उदाहरण दिया जा इस सतत्य के साथ प्रत्येक चरण में आगे की, प्रगति के लिए एक उपयुक्त नीति होती है। एक चरण में जो उचित उनके जनजातीय ढांचे से थोड़ा अलग और परिवर्तनी राष्ट्रों के आर्थिक-सामाजिक अपकरण के अधिक करीब है। कि आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है, एक ऐसी प्रक्रिया जो अपने विस्तार में अर्थीका के नये देशों से व्यापक है परन्तु गैलब्रैथ (Galbraith) का यह उदाहरण इसका एक उदाहरण है— "हमें इस बात को अवश्य ही स्वीकार करना चाहिए कि प्रत्येक देश की अपनी विशिष्ट जकरों की ध्यान में रखकर ही सुधार हो सकेगा पर अमल करना चाहिए। करने के उपाय भी अलग-अलग होंगे। रोस्तो (Rostow) ने आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों के बारे में बताया कि निम्न विकास के कारण अलग-अलग देशों में अलग-अलग होते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि इनकी दूर आर्थिक विकास के सामाजिक विधियों की पहचान करते समय हमें यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए

4.7 आर्थिक विकास के सामाजिक निर्धारक (Determinants of Economic Development)

नीचे
समाजिक संबंधों
व्यापक संरचना

है।" स्पष्ट रूप से इस प्रकार का कुछ विकास के लिए अनुरूप नहीं है। वे लोग लड़कें की संभावनाओं से घृणा नहीं है और उनके उद्देश्य कम देखना करना, आत्मिक शिक्षा प्राप्त करना आदि विभिन्न इस अनुरूप दुनिया की सबसे बेहतर बनाने और खुशी और संतोष, धीरज और सौहार्द को बढ़ाने में रखती है। राधाकृष्णन की विचारणा है, "पूर्वी सभ्यताओं वास्तविक स्थितियों में परिवर्तन करने में इतनी दिलचस्पी नहीं रखती ज्योतिष और इन्टरलॉजियों की जबदस्त भूमिका जाजाहिर है। पूर्वी लोगों के जीवन के विषय में विचार करते हुए डॉ० गरीब है। मायवादी होने की उनकी प्रवृत्ति होती है। वे लोग माय पर आश्रित हो जाते हैं। उनके दैनिक जीवन में उदाहरण के लिए पूर्वी लोगों में स्वीकारात्मक और आशाकारिता ही उनके जीवन के इकलौते साधक और उचित खास मूल्य विकास की प्रक्रिया को तेज करते हैं जबकि कुछ ऐसे मूल्य भी हैं जो इस प्रक्रिया को कम करते हैं। और धर्म की भूमिका पर विचार किया। आर्थिक विकास में हर किसी को मूल्यों और धर्म को मानना पड़ता है। कुछ अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र पर केन्द्रित पूर्ववर्ती खंड में हमने आर्थिक संगति के कारण करने के लिए मूल्य बोलचाल के प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है जो विकास के प्रतिकूल है।"

औद्योगिकीकरण बढ़ाने के प्रयत्नों के बावजूद नियोजन का दर अपर्याप्त है और इस प्रकार प्रत्यक्ष या परोक्ष वृद्धि रहती है। इस प्रकार की श्रम-आधिक्य वाली अर्थव्यवस्थाओं में तेजी से जनसंख्या में वृद्धि का मतलब है कि कमी के कारण बढ़ती हुई श्रम-शक्ति शहर में जा रह नहीं पा सकती और इसलिए पहले से घने ग्रामीण क्षेत्रों से ही है, "जनसंख्या वृद्धि विकास के लिए प्रतिकूल है... बालक हठोरतापूर्वक करने वाली चीज है। औद्योगिक वृद्धि की विस्फोटक वृद्धि के प्रतिकूल प्रभाव की आर्थिक विकास के संदर्भ में प्रोफेसर मिल ने इन शब्दों में व्यक्त किया है।" "जनसंख्या वृद्धि विकास के लिए प्रतिकूल है। बालक हठोरतापूर्वक करने वाली चीज है। औद्योगिक वृद्धि की विस्फोटक वृद्धि में जनसंख्या की वृद्धि पर भी ध्यान देना चाहिए। जनसंख्या की तकनीक अपनाने के लिए विवश हो जाती है। यह शान्तिपूर्ण आर्थिक विकास में जटिलताएं पैदा करते हैं। आशाओं को अनदेखा नहीं कर सकती और सरकार उपयुक्त सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थिति के बाँरे भी उच्च का प्रचार करते हैं। इसका परिणाम है, "लोगों की आशाओं में क्रांति।" जनवादी राजनीतिक प्रक्रिया लोगों की बढ़ती है। "दोनों में निहित है। (आर० टी० मिल) संसार के साधन परिवर्तनीय हैं। उच्च तकनीक से बनी वस्तुओं परिस्थितियाँ इसके लिए विकसित की गईं। अविकसित देशों में हालाँकि समस्या "औद्योगिक क्रांति करने और इसकी उच्च तकनीक के खोजने और अपनाने के पहले बहुत सारे दर्शकों तथा सांस्कृतिक मान्यताओं और सामाजिक

लोगों) वस्तु: अस्तित्व में है। और अपनाने की प्रक्रियाओं के बीच कुछ समय अवश्य खाली होता है। परिवर्तनीय समाजों में ऐसा खाली समय (टाइम निकलें। इसका मतलब है कि ठीक से तकनीक को अपनाने के लिए तैयारी करनी पड़ती है। स्पष्ट रूप से तैयारी हमने देखा कि तकनीक एक अनुरूप सांस्कृतिक सहयोग मांगती है जिससे अनुरूप ऐच्छिक परिणाम धीमा और रुका हुआ होता है।"

परंपरिक समाज में परिवर्तनकारी व्यक्तिव का विकास नहीं हो सकता। ऐसे समाज में आर्थिक विकास स्वभावतः पूर्वजों के कार्य-व्यवहार की उसी प्रकार स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जाहिर है कि ऐसे देशों में और विशेषकर परंपरागत समाज वाले देशों में समानता पर ज्यादा जोर दिया जाता है और बच्चों को अपने समस्या खल करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और सुजानात्मक बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसका का प्रकाश है कि बच्चों के आर्थिक बर्ण से अलग होते हैं। कुछ समाजों में बच्चों की अपनी और उद्योगिक व्यक्तिवों का निर्माण प्रारंभिक बहुत हद तक समाजीकरण और उस शिक्षा की प्रकृति व विषयवस्तु अब हम आर्थिक विकास के लिए उद्योगकारी व्यक्तिवों की जरूरत के प्रश्न को उठाते हैं। सुजानात्मक क्षमों (बड़ी संख्या में बोलचाल, अकुशल श्रमिक) में बहुलापन के प्रकार हैं।"

वाहते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे कुछक क्षमों में भारी कमी (पूर्वी और प्रशिक्षित लोगों के मामले में) और दूसरे अस्तित्व में नहीं आई हैं। इनके अभाव में आधुनिक अविकसित देश अत्याधुनिक परिवर्तनीय पद्धति का आयात करना अनुभव आधुनिक पद्धति की अपनाने बौद्धि है। इस दिशा में कुछ प्रयासों के बावजूद यह तीसरी तकनीक वस्तुतः आर्थिक संदर्भ के उपयुक्त है। एक तीसरी तकनीक भी है जो अविकसित विषय की सामाजिक परिस्थितियों के

नोट

क्षेत्रीय योजनाओं के
समाकलन संबंधी
व्यापक दृष्टिकोण

1. आर्थिक आयोजन का अर्थ (Meaning of Economic Planning)

“आर्थिक आयोजन” शब्द के अर्थ के संबंध में अर्थशास्त्रियों में कोई एकमत नहीं है। अर्थशास्त्र विषयक साहित्य में इस शब्द का बहुत विविध रूप में प्रयोग हुआ है। इसे प्रायः शान्ति से साम्यवाद, समाजवाद या आर्थिक विकास समझ लिया जाता है। राज्य की ओर से आर्थिक मामलों में किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप कर सकता है। फिर आयोजन क्या? आयोजन मान लिया गया है परन्तु राज्य तो कोई योजना बनाए बिना ही हस्तक्षेप कर सकता है। फिर आयोजन क्या? आयोजन एक तकनीक, एक साधन की प्राप्ति का साधन और वह साधन है, जो केन्द्रीय योजना आधिकारण (Planning Authority) द्वारा निर्धारित कानूनी पूर्वाधिकार तथा सम्पन्न लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को प्राप्त करता है। यह साधन आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक अथवा सैनिक उद्देश्यों को प्राप्त करना हो सकता है। इसलिए “प्रयत्न यह नहीं है कि योजना बनाई जाए अथवा नहीं बल्कि यह है कि विभिन्न प्रकार की योजनाओं में से किससे अपनाया जाए।”

ग्राह्य लुईस ने छः विभिन्न अर्थों का निर्देश किया है जिनमें इस ‘आयोजन’ (Planning) शब्द का आर्थिक साहित्य में प्रयोग हुआ है।

“प्रथम, पारित साहित्य ऐसा है जिसमें यह शब्द केवल साधनों, रहने की विरहियों और सिनेमाओं तथा ऐसे ही अन्य साधनों के भौगोलिक कटिबंधन (Zoning) से सम्बन्ध रखता है। कभी-कभी इसे नगर तथा ग्राम आयोजन और कभी केवल योजना कहते हैं।”

“दूसरे, ‘आयोजन’ का अर्थ यह निर्णय करना है कि यदि सरकार के पास खर्च करने के लिए मुद्रा हो, तो वह भविष्य में क्या मुद्रा व्यय करेगी।”

“तीसरे, ‘योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था’ वह होती है जिसमें उत्पादन की प्रत्येक इकाई (या फर्म) केवल उन मनुष्यों, माल तथा उपकरणों के साधनों का प्रयोग करती है, जो उसे कौटा (quota) द्वारा इसके लिए नियत कर दिए जाते हैं और अपना उत्पादन केवल उन्हीं व्यक्तिगत अथवा फर्मों को देती है, जो केन्द्रीय आदेश द्वारा निर्दिष्ट हैं।

“चौथे, कभी-कभी ‘आयोजन’ का अर्थ यह होता है कि सरकार, निजी अथवा सार्वजनिक उद्यम के लिए, कोई उत्पादन-लक्ष्य नियत कर देती है। अधिकारों सरकारें इस प्रकार के आयोजन कहीं-कहीं पर अपनाती हैं या केवल एक या दो ऐसे उद्योगों अथवा सेवाओं के लिए, जिनमें सरकार बहुत महत्व देती है।”

“पांचवें, यहाँ समस्त अर्थव्यवस्था के लिए लक्ष्य नियत किए जाते हैं, जिनका उद्देश्य यह होता है कि अर्थव्यवस्था की विविध शाखाओं में समस्त देश के भ्रम, विदेशी मुद्रा, कच्चे माल तथा अन्य साधनों का विभाजन किया जाए।”

“और अन्तिम, कभी-कभी ‘आयोजन’ शब्द का प्रयोग उन साधनों का वर्णन करने के लिए होता है जिनको सरकार इसलिए काम में लगाती है कि उन लक्ष्यों को निजी उद्यम पर लागू करने का प्रयत्न करे, जो पहले से निर्धारित कर दिए हैं।”

परन्तु फर्डिनैंड ज्वेग (Ferdinand Zweig) का कहना है कि ‘आयोजन’ का अर्थ है समस्त अर्थव्यवस्था का आयोजन, न कि अर्थव्यवस्था के भीतर आयोजन। यह केवल नगरों, सार्वजनिक निर्माण-कार्यों अथवा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अलग-अलग वर्गों का नहीं बल्कि समस्त अर्थव्यवस्था का आयोजन होता है। इस प्रकार आयोजन का अर्थ खण्डशः (Piecemeal) आयोजन नहीं बल्कि अर्थव्यवस्था का समस्त आयोजन है।

आर्थिक आयोजन की कुछ परिभाषाएँ नीचे दी जा रही हैं—

ग्राह्यस रॉबिन्स की परिभाषा के अनुसार, “आर्थिक आयोजन उत्पादन तथा विनिमय की निजी क्रियाओं का सामूहिक नियंत्रण या दमन है।”

हेक के अनुसार आयोजन का अर्थ है, “केन्द्रीय प्राधिकारण द्वारा उत्पादकीय क्रिया का निर्देशन।”

हॉरंडलन के अनुसार, “अपने व्यापकतम अर्थ में ‘आयोजन’ का अर्थ है, बड़े-बड़े साधनों के कार्याधीन व्यक्तियों द्वारा आर्थिक क्रिया को चुने हुए लक्ष्यों की ओर आयोजित निर्देशन।”

नीचे

सामाजिक नीति एवं योजना के व्यापक दृष्टिकोण

5. **सुदृढित क्षेत्रीय विकास (Balanced regional development)**—योजना का एक मुख्य उद्देश्य सुदृढित क्षेत्रीय विकास करना होता है। कम तथा अमीरों के क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने के उद्देश्य से योजनाएँ बनाई जाती हैं। भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में भी यह उद्देश्य पाया जाता है। प्रत्येक देश में कुछ क्षेत्र विकसित

4. **साधनों का उचित प्रयोग (Proper use of resources)**—योजना के अंतर्गत देश के साधनों का उचित प्रयोग करना आवश्यक है, जैसे खनिज, वन, जल, विद्युत तथा मानवीय साधन आदि। उनका अपव्यय न हो तथा उत्पादन में वृद्धि हो सके। इसके लिए योजना में लक्ष्यों को पूर्वनिर्धारित करके उनके सही ढंग से प्रयोग करना पाया जाता है। साधनों को प्रयोग सुव्यवस्थित एवं नियन्त्रित तरीके से किया जाता है ताकि

3. **गरीबी को दूर करना (Removal of poverty)**—पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में गरीबी सबसे बड़ा दोष है जिसे केवल दीर्घकाल में योजनाओं द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। विशेषकर विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में गरीबी के दूर करने के उद्देश्य को प्राथमिकता देना आवश्यक है। इसलिए योजनाओं के उद्देश्यों में गरीबी दूर करना भी पाया जाता है। भारतीय योजनाओं के ये तीनों मुख्य उद्देश्य हैं।

2. **असमानताओं को दूर करना (Removal of inequalities)**—पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में विकास के साथ-साथ धन एवं आय का कुछ व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रीकरण होता जाता है जिसे दूर करना योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था का एक उद्देश्य होता है। इसके लिए राज्य ऐसे कदम उठाता है जिससे धन तथा आय का समान रूप से विभाजन हो। इसके अन्तर्गत सामाजिक सेवाओं का विकास एवं विस्तार किया जाता है, तथा भारी करों और एकधिकार के विरुद्ध कानूनों द्वारा रोक लगाई जाती है।

1. **पूर्ण रोजगार (Full employment)**—आर्थिक आयोजन का एक मुख्य उद्देश्य रोजगारी को समाप्त करने तथा अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार प्राप्त करना होता है। प्रत्येक देश चाहे वह पूँजीवादी हो या साम्यवादी, पूर्ण रोजगार प्राप्त करने की ओर अग्रसर रहता है। भारत जैसे विकासशील देशों की योजनाओं में रोजगार के साधनों में वृद्धि करके रोजगारी दूर करना तथा पूर्ण रोजगार के स्तर तक पहुँचना एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है।

एवं सामाजिक उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

प्रत्येक योजना के कुछ उद्देश्य होते हैं जो सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक हो सकते हैं। हिटलर के समय जर्मनी में तथा मुसोलिनी के समय इटली में आयोजन का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक दृष्टि से इन देशों को शक्तिशाली बनाना था। जबकि स्टैलिन के समय कम्युनिस्ट देशों में प्रतिरक्षा (defence) वृद्धि योजना एक मुख्य उद्देश्य था। परन्तु वास्तव में आयोजन के उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक होते हैं। जिनके द्वारा मुक्त बाजार के दोष तथा असफलताओं को दूर किया जा सके, जैसे रोजगारी, व्यापार-विकास, गरीबी, शोषण, असमानताएँ आदि। कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक

2. आयोजन के उद्देश्य (Objectives of Planning)

प्रथम प्रश्न यह है कि क्या योजनाएँ ही सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक हो सकती हैं? हिटलर के समय जर्मनी में तथा मुसोलिनी के समय इटली में आयोजन का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक दृष्टि से इन देशों को शक्तिशाली बनाना था। जबकि स्टैलिन के समय कम्युनिस्ट देशों में प्रतिरक्षा (defence) वृद्धि योजना एक मुख्य उद्देश्य था। परन्तु वास्तव में आयोजन के उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक होते हैं। जिनके द्वारा मुक्त बाजार के दोष तथा असफलताओं को दूर किया जा सके, जैसे रोजगारी, व्यापार-विकास, गरीबी, शोषण, असमानताएँ आदि। कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक

उत्पादन को कैसे विभाजित किया जाए।" यह प्रश्न इस विषय में एक मत नहीं है, फिर भी, जैसा कि अधिकांश अर्थशास्त्री समझते हैं, आर्थिक आयोजन का मतलब है, समय की एक निश्चित अवधि के भीतर निश्चित लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से केन्द्रीय अधिकारण द्वारा अर्थव्यवस्था का आयोजित नियंत्रण तथा निर्देशन।

अधिकतम प्रसिद्ध परिभाषा डिकमन की है जिसके अनुसार आयोजन का अर्थ है "इस विषय में प्रमुख आर्थिक निर्णय करना कि किस वस्तु का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए, कि कब और कहाँ उत्पादन हो, और समस्त अर्थव्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर निर्णय के समान निर्णय के अनुसार उस उत्पादन को कैसे विभाजित किया जाए।"

यद्यपि इस विषय में एक मत नहीं है, फिर भी, जैसा कि अधिकांश अर्थशास्त्री समझते हैं, आर्थिक आयोजन का मतलब है, समय की एक निश्चित अवधि के भीतर निश्चित लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से केन्द्रीय अधिकारण द्वारा अर्थव्यवस्था का आयोजित नियंत्रण तथा निर्देशन।

नीट

क्षेत्रीय योजनाओं के समाकलन संबंधी व्यापक दृष्टिकोण

नोट

होते हैं और कुछ अविक्सित। इस असंतुलन को समाप्त करने के लिए औद्योगिक तथा कृषि-विकास पर अधिक बल दिया जाता है। और साथ में यातायात के साधन और विद्युत का भी विकास इन क्षेत्रों में किया जाता है।

6. **त्वरित विकास (Rapid development)**—अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में त्वरित विकास करना भी योजना का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है। इसके अन्तर्गत योजना-अवधि में विकास की दर को बढ़ाने का लक्ष्य रखा जाता है जिसके अनुसार निवेश किया जाता है।

7. **आत्मनिर्भरता (Self-sufficiency)**—अल्पविकसित देशों की योजनाओं में एक उद्देश्य आत्मनिर्भरता प्राप्त करना भी होता है। ऐसे देश प्रायः सभी उपभोक्ता एवं पूंजीगत पदार्थों के लिए विकसित राष्ट्रों पर निर्भर रहते हैं। इसलिए वे योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था अपनाकर कुछ दशकों में औद्योगिक एवं कृषि-विकास द्वारा आत्मनिर्भर होने का प्रयत्न करते हैं।

8. **सामाजिक सुरक्षा (Social security)**—आयोजन का उद्देश्य, देश में सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना भी होता है जिससे श्रमिक अधिक मेहनत एवं लगन से कार्य करें, ताकि उत्पादन में वृद्धि हो। सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत चिकित्सा, बीमा, बेरोजगारी, आवास, मनोरंजन, उचित मजदूरी आदि सम्मिलित होते हैं।

9. **आर्थिक स्थिरता (Economic stability)**—प्रत्येक अर्थव्यवस्था में आर्थिक उतार-चढ़ाव होते रहते हैं जिनका मुख्य कारण कम या अधिक उत्पादन होता है। इससे कभी कीमतें बढ़ने लगती हैं और कभी कम होने लगती हैं। मंदी एवं तेजी की अवस्थाएँ मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की विशेषता होती है। आर्थिक आयोजन द्वारा ही इनको नियंत्रित किया जा सकता है जैसे कि रूस में जहाँ ये दोनों अवस्थाएँ नहीं पाई जातीं। इसलिए आर्थिक आयोजन का एक उद्देश्य अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्थिरता कायम करना होता है।

3. अल्पविकसित देशों में आयोजन की आवश्यकता

(Need for Planning in Underdeveloped Countries)

अल्पविकसित देशों में आयोजन का एक प्रमुख उद्देश्य आर्थिक विकास की दर बढ़ाना है। प्रो० डी० आर० गाडगिल के शब्दों में, "आर्थिक विकास के लिए आयोजन का अर्थ है योजना प्राधिकरण—जो अधिकांश अवस्थाओं में राज्य की सरकार ही होती है—के द्वारा आर्थिक क्रिया का बाह्य निदेशन अथवा नियमन।" इसका अर्थ है आय, बचत तथा निवेश के स्तर बढ़ाकर पूंजी-निर्माण की दर बढ़ाना। परन्तु अल्पविकसित देशों में पूंजी-निर्माण की दर बढ़ाने में अनेक कठिनाइयाँ पाई जाती हैं। लोग दरिद्रताग्रस्त होते हैं। आय के निम्न-स्तरों तथा उपभोग की ऊँची प्रवृत्ति के कारण, उनकी बचत करने की क्षमता बहुत ही कम होती है। परिणामतः निवेश की दर कम रहती है जिससे पूंजी की न्यूनता और कम उत्पादकता होती है। कम उत्पादकता का मतलब है कम आय और दुश्चक्र पूरा हो जाता है। इस आर्थिक दुश्चक्र को केवल योजनाबद्ध विकास ही तोड़ सकता है। अल्पविकसित देशों के सामने दो मार्ग खुले हैं। एक मार्ग है विदेश से पूंजी आयात करके योजनाबद्ध विकास, जिस ज्वेग (Zweig) "समर्पित औद्योगिकीकरण" (Supported industrialization) कहता है, और दूसरा मार्ग है बलकृत बचतों का, जिसे वह "आत्मनिर्भर औद्योगिकीकरण" कहता है।

ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में विस्तृत बेकारी तथा प्रच्छन्न बेकारी दूर करने की आवश्यकता के कारण आयोजन की जरूरत और प्रबल होती है क्योंकि इनमें पूंजी दुर्लभ होती है और श्रम की अधिकता रहती है, इसलिए निरंतर बढ़ती हुई श्रम-शक्ति को लाभदायक रोजगार के अवसर प्रदान करने की समस्या कठिन बनी रहती है। इस समस्या को केवल एक केन्द्रीकृत आयोजन प्राधिकरण ही सुलझा सकता है।

पर्याप्त उद्यम तथा उपक्रम के अभाव में, अर्थव्यवस्था के संतुलित विकास की योजना बनाने के लिए आयोजन प्राधिकरण ही एकमात्र संस्था हो सकती है। द्रुत आर्थिक विकास के लिए अल्पविकसित देशों को इस बात की आवश्यकता रहती है कि कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों का विकास हो, सामाजिक तथा आर्थिक उपरिसुविधाएँ स्थापित की जाएँ, घरेलू तथा विदेशी व्यापार-क्षेत्रों का सामंजस्यपूर्ण ढंग से विस्तार हो। इस सबके लिए विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ ही निवेश आवश्यक है, जो केवल विकास आयोजन के अन्तर्गत ही संभव है।

है। वे ये हैं-

योजना के सफलतापूर्वक कार्दकरण के लिए कुछ शर्तों अथवा पूर्वशर्तों का पूरा किया जाना आवश्यक

4. सफल आयोजन की पूर्वशर्तें (Pre-requisites for Successful Planning)

सांठनायक प्रयत्न के अंग हैं।"

नहीं है। निजी क्रिया का निर्देशन, नियमन तथा नियंत्रण, और सांठनायक क्रिया के क्षेत्र को बढ़ाना-ये सब आर्थिक आयोजन का अर्थ, आर्थिक श्रेष्ठ, अनुक्रम तथा दूरदर्शी सांठन, व्यापक सर्वश्रेष्ठ सांठन से अधिक कुछ का आर्थिक श्रेष्ठ विवरण होता है ताकि सामाजिक सुरक्षा तथा शान्ति प्राप्त की जा सके। इसलिए, एक दृष्टि से प्रयत्न करते हैं। जिसके माध्यम से पूर्वी साधनों का प्रयोग करने की श्रम-क्षमता बढ़ती जाती है, और राष्ट्रीय उत्पादक दीर्घकालीन योजना के साथ प्रशिक्षण तथा शिक्षा के निरंतर सुधार हुए प्रोग्रामों को विकसित करने तथा अपनाने का और यदि संभव तथा आवश्यक हो तो उपयुक्त मं कुल कामों को, तथा पूर्वी साधनों के समुचित निवेश की वृद्धि होगी और उसका ठीक ठंग से निर्देशन हो सकेगा। योजना बनाने वाले विवेकशीलता जानने का प्रयत्न करते हैं जाना और आगे यह भी धारणा है कि समुचित बाह्य हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप आर्थिक विकास की गति में प्रयास किया जाता है कि बाह्य हस्तक्षेप के अभाव में होने वाले विकास की गति या निर्देशन को संतोषजनक नहीं समझा जायेगा और आगे यह भी धारणा है कि समुचित बाह्य हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप आर्थिक विकास की गति में प्रयास

प्रोफेसर गाडगाल के शब्दों में सारांश यह है कि "आर्थिक विकास का आयोजन संभवतः इसलिए शुरू है। अक्षरर क्रान्ति के समय दूर देश उस का दूर आर्थिक विकास इस तथ्य का साक्षी है। अल्पविकसित देशों में व्यावहारिक रूप धारण किया और विवेक के अल्पविकसित देशों को यही एकमात्र आशा केवल यही एक मार्ग खुला है कि वे आयोजन करें। इससे बड़ा कोई अन्य सत्य नहीं है कि आयोजन के विचार विकास के लिए और नई-नई प्राण की हुई राष्ट्रीय स्वतंत्रता कायम रखने के लिए अल्पविकसित देशों के सामने बढ़ाने के लिए आय तथा धन की असमानताएँ घटाने के लिए, रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए, सर्वोत्तम-सुखी राष्ट्रीय की दरिद्रता दूर करने हेतु विकास के लिए आयोजन करना अनिवार्य है। राष्ट्रीय तथा प्रतिव्यक्ति आय बनाए रखने के लिए मान तथा पूर्ति के बीच समायोजन ला सकती है।

कर सकता है। फिर, आयोजन प्राधिकरण ही एकमात्र ऐसी संस्था है जो अर्थव्यवस्था के भीतर आर्थिक स्थिरता करे। अर्थव्यवस्था के श्रेष्ठतम हितों में आयोजन प्राधिकरण ही धरेलू तथा विदेशी व्यापार का नियंत्रण तथा नियमन की और उसकी सहायता से, समस्त देश में, ताल मार्केट, कमर्शियल बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं की स्थापना अव्यवस्था की केवल राज्य ही दूर कर सकता है। वही इस बात का निर्णय कर सकता है कि एक केन्द्रीय बैंक होत है। अन्तर्राष्ट्रीय चक्रीय गतियों (Cyclical movements) द्वारा उत्पन्न आर्थिक अस्थिरता रहती है। इस अल्पविकसित देशों में, मुद्रा तथा पूर्वी मार्केट अल्पविकसित होते हैं। ये साधन उद्योग तथा व्यापार की वृद्धि में बाधक साध-साध कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों का विकास ही नहीं बल्कि वित्तीय संस्थाओं का होना भी आवश्यक है। इसी प्रकार, धरेलू तथा विदेशी व्यापार के विस्तार के लिए सामाजिक तथा आर्थिक उपरिसुविधाओं के

पूर्वी का निर्माण करने का दायित्व राज्य पर आ पड़ता है।

सामाजिक लाभ की बजाय निजी लाभ से प्रेरित होता है। इसलिए योजनाबद्ध ढंग से सामाजिक तथा आर्थिक उपरि आर्थिक उपरि-सुविधाओं की अलाभदायकता के कारण निजी उद्यम उनके विकास में रुचि नहीं रखता। वह लोक-स्वस्थ तथा भवन-निर्माण आदि का भी होना अनिवार्य है। परन्तु अल्पविकसित देशों में सामाजिक तथा है। और इसी प्रकार, प्रशिक्षण तथा कुशलताप्राप्त सेवीवर्ग के नियमित प्रवाह के लिए प्रशिक्षण तथा शिक्षण संस्थाओं, कृषि तथा औद्योगिक विकास के लिए नहरों, सड़कों, रेलमार्गों तथा बिजलीघरों इत्यादि का निर्माण अनिवार्य

औद्योगिक क्षेत्र विकास नहीं कर सकती।

निर्माण आवश्यक है। पर सामाजिक तथा आर्थिक उपरि सुविधाओं (Overheads) के अभाव में कृषि तथा क्षेत्र खपा सकता है। औद्योगिक क्षेत्र की कच्चे माल की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए भी कृषि का विकास तथा उद्योग परस्पर निर्भर हैं। कृषि के पुनर्निर्माण से अतिरिक्त (Surplus) श्रम-शक्ति मुक्त होती है जिससे औद्योगिक औद्योगिक क्षेत्र के साथ-साथ कृषि-क्षेत्र के विकास की आवश्यकता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि कृषि

नीचे

क्षेत्रीय योजनाओं के समाकलन संबंधी व्यापक दृष्टिकोण

3. लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण (Fixation of targets and priorities)-आगामी समस्या योजना में नियत उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण है। लक्ष्य साहसपूर्ण तथा अर्थव्यवस्था के प्रत्येक पक्ष की समन्वित करने वाले हैं। उनमें से सम्मिलित होते हैं: मात्रात्मक (quantitative) उत्पादन लक्ष्य, खाली, कौशल, क्षमता, इत्यादि, खर आदि के इतने मिलियन टन और अधिक विद्युत्प्रशक्ति क्षमता के इतने किलोवाट रेलमार्गों तथा सड़कों के इतने मीटर; इतनी अतिरिक्त प्रशिक्षण संस्थाएँ; राष्ट्रीय आय की इतनी वृद्धि, इत्यादि। "ऐसा लक्ष्य केवल सरकारी संस्थाओं के लिए ही नहीं बल्कि, कम-से-कम, अधिक बड़ी निजी फर्मों के लिए भी निर्धारित किए जाएँ, ताकि यह देखे जा सके कि कौसी पूर्ति का माल उसी उद्देश्य के लिए प्रयोग होता है, जिसके लिए वह है। अर्थव्यवस्था की एक निश्चित वृद्धि दर प्राप्त करने के उद्देश्य से उन्हें परस्पर संगत (mutually consistent) होना चाहिए। इसके लिए प्राथमिकताएँ निर्धारित करना आवश्यक हो जाता है। उपलब्ध शैतिक पूर्वा तथा मानवीय साधनों की ध्यान में रखते हुए अर्थव्यवस्था की अत्यन्तालीन तथा दीर्घकालीन आवश्यकताओं के आधार पर प्राथमिकताएँ निश्चित की जाएँ। जिन स्कीमों अथवा परियोजनाओं को पहले पूरा करना आवश्यक हो, उन्हें अधिकतम प्राथमिकता दी जाए जबकि कम महत्वपूर्ण स्कीमों अथवा प्रोग्रामों को कम प्राथमिकता दी जाए। प्राथमिकताओं की स्कीम कठोर नहीं होनी चाहिए बल्कि देश की आवश्यकताओं के अनुरूप बदली जा सके। उदाहरण के लिए, प्रथम भारतीय पंचवर्षीय परियोजना में कृषि तथा सिंचाई और बिजली के विकास को उच्चतम प्राथमिकता दी गई थी। इस पर अगिला व्यय कुल उद्ब्यय (outlay) का 44% था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक तथा खनिज विकास को उच्चतम प्राथमिकता दी। अगिला व्यय प्रथम पंचवर्षीय योजना में 4% के मुकाम पर अगिला उद्ब्यय क्रमशः 36% तथा 20% था। 1962 में चीन द्वारा आक्रमण किए जाने पर प्राथमिकताओं का कम बदल दिया गया और रक्षा संबंधी उत्पादन तथा सड़क विकास को उच्च प्राथमिकता दी गई। पुनः सितम्बर 1965 में भारत-पाक युद्ध होने पर, रक्षा संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि तथा

2. सांख्यिकीय आँकड़े (Statistical Data)-उत्कृष्ट आधुनिकता का एक पूर्वोक्ताना यह है कि देश के वर्तमान तथा संभाव्य साधनों का उसकी सूरतों सहित पूर्ण सर्वेक्षण हो। वैसाकिक बँकाल ने इस संबंध में कहा है, "आधुनिकता का प्रत्येक कार्य-जहाँ तक कि वह केवल उन्मादपूर्ण किलों का निर्माण करना न हो-वर्तमान साधनों के प्रतिभक अनुसंधान की पूर्वकल्पना लेकर चलता है।" देश के कुल उपलब्ध शैतिक, पूर्वा तथा मानवीय साधनों के संबंध में सांख्यिकीय आँकड़ों तथा सूचना के संग्रह के लिए इस प्रकार का सर्वेक्षण निदान आवश्यक है। उपलब्ध तथा संभाव्य प्राकृतिक साधनों तथा उनके दोहन की कौटि, कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन, परिवहन, तकनीकी तथा अतकनीकी सेवाएँ इत्यादि से संबंधित आँकड़े आधुनिकता में निश्चित लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं के लिए आवश्यक है। इसके लिए योजना के व्यवस्थापना हेतु सांख्यिकी आँकड़े तथा सूचना इकट्ठी करने के लिए सांख्यिकी कार्यालयों के जाल से युक्त एक केन्द्रीय सांख्यिकीय संस्था (Central Statistical Institute) बनाई जाए। यदि देश में एक योजना पहले कर्षाणिकृत हो चुकी है, दूसरी योजना यह पूर्तिर्षिक्षण करती है कि राष्ट्रीय आय, निवेश, बचत, उपयोग तथा जनसंख्या में क्या परिवर्तन हुए हैं और पूर्ववर्ती योजना में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का क्या निष्पान (Performance) रहा है। समय-समय पर योजना के मूल्यांकन और यहाँ तक कि योजना-अवधि के दौरान वार्षिक सर्वेक्षण का प्रकाशन भी आगामी योजना के लिए अर्थव्यवस्था की गति का विश्व प्रस्तुत करने में सहायक हो सकते हैं।

1. योजना आयोग (Planning Commission)-योजना की सफलता के लिए सर्वप्रथम एक योजना आयोग की सफलता योजना आयोग में दक्ष सेविर्वा पर निर्भर करती है। यथायात, संचार, श्रम, सिंचाई विद्युत् आदि का व्यावहारिक ज्ञान रखने वाले व्यक्ति होने भी आवश्यक है। वास्तव विदेशी व्यापार आदि को विशेष ज्ञान रखने वाले विशेषज्ञ तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में जैसे कृषि, उद्योग, प्रशासनिक कार्यों के विशेषज्ञ शामिल होने चाहिए। इसके अतिरिक्त विकास संबंधी नीतियों जैसे वितीय, राजकीय, विद्युत् तथा अधिकारियों में बाँटा जाना चाहिए। इसमें अर्थशास्त्रीय एवं सांख्यिकीय विशेषज्ञ, तकनीकी एवं आयोग की होना आवश्यक है जिसे उचित ढंग से संगठित करना चाहिए। इसके प्रत्येक कार्य को पृथक-पृथक आयोग (Planning Commission)-योजना की सफलता के लिए सर्वप्रथम एक योजना

क्षेत्रीय योजनाओं के
समाकलन संबंधी
व्यापक दृष्टिकोण

नीति

नोट

6. **समुचित विकास नीति (Proper development policy)**—राज्य को चाहिए कि विकास योजना की सफलता के लिए और विकास-प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाली अप्रत्याशित बाधाओं से बचने के लिए समुचित विकास नीति निर्धारित करे। प्रो० लुइस ने इस प्रकार की विकास नीति के प्रमुख तत्व ये बताए हैं—(i) विकास शक्ति (potential) की जांच-पड़ताल; राष्ट्रीय साधनों का सर्वेक्षण; वैज्ञानिक अनुसंधान; मार्केट अनुसंधान। (ii) सार्वजनिक अथवा निजी एजेंसियों के माध्यम से समुचित आधारिक संरचना की (जल, बिजली, परिवहन तथा संचार की) व्यवस्था। (iii) विशिष्टीकृत प्रशिक्षण सुविधाओं की व्यवस्था करना जैसे कि उपयुक्त सामान्य शिक्षा की, जिसके परिणामस्वरूप आवश्यक कुशलताएँ सुनिश्चित हो जाएँ। (iv) आर्थिक क्रिया के कानूनी ढांचे में, विशिष्ट रूप से भूमि-पट्टों, निगमों तथा वाणिज्यिक लेन-देन से संबंधित नियमों में सुधार करना। (v) और अधिक तथा श्रेष्ठतर मार्केटों के निर्माण में सहायक होना, जिसमें वस्तु मार्केट, प्रतिभूति विनिमय, बैंकिंग, बीमा तथा कर्ज सुविधाएँ शामिल हैं। (vi) घरेलू तथा विदेशी संभावी उद्यमियों को खोजना तथा उन्हें सहायता देना। (vii) दोनों ही प्रकार से अर्थात् प्रेरणाएँ देकर और दुरुपयोग के विरुद्ध नियन्त्रण लगाकर, साधनों के अधिक श्रेष्ठ उपयोग को बढ़ावा देना। (viii) निजी तथा सार्वजनिक, दोनों ही क्षेत्रों में बचत की वृद्धि को बढ़ावा देना।”

इन शीर्षकों में से प्रत्येक के अन्तर्गत विविध सुझावों की परीक्षा करके विकास योजना की सफलता की जांच की जा सकती है। अच्छी नीतियाँ सहायक होती हैं परन्तु हो सकता है कि वे सफलता को सुनिश्चित न करें। इसलिए प्रो० लुइस विकास योजना की उस औषधि से उपाय देते हैं जो अच्छे डॉक्टर के हाथों में लाभकारी चमत्कार दिखाती है, “परन्तु फिर भी ऐसा होता है कि बहुत सारे ऐसे रोगी तो मर जाते हैं जिनके जीवित रहने की आशा होती है और कई ऐसे रोगी बच जाते हैं जिनके मर जाने की आशंका होती है।”

7. **प्रशासन में मितव्ययिता (Economy in administration)**—प्रशासन में, विशिष्ट रूप से मन्त्रालयों तथा राज्य-विभागों के विस्तार में खर्च घटाने के लिए प्रत्येक प्रयत्न किया जाए। जैसा कि प्रो० श्रीमन् नारायण कहते हैं, “लोगों को इस बात का पूर्ण विश्वास होना चाहिए कि कराधन तथा उधार के माध्यम से उनके द्वारा दी गई प्रत्येक पाई का उनके कल्याण और विकास के लिए समुचित रूप से व्यय होगा और उसे यों ही उड़ा नहीं दिया जाएगा।”

8. **शिक्षणात्मक आधार (An educational base)**—स्वच्छ तथा दक्ष प्रशासन के लिए दृढ़ शिक्षणात्मक आधार नितान्त आवश्यक है। सफलता के लिए आयोजन के लोगों के नैतिक तथा सदाचार विषयक स्तरों का ध्यान रखना पड़ेगा। हम तब तक प्रशासन में मितव्ययिता तथा दक्षता की आशा नहीं कर सकते, जब तक कि लोगों के नैतिक तथा सदाचार संबंधी मूल्य ऊँचे न हों। यह तब तक संभव नहीं हो सकता, जब तक कि सशक्त शिक्षणात्मक आधार का निर्माण न हो, जिससे शैक्षणिक तथा तकनीकी दोनों क्षेत्रों में शिक्षा दी जा सके। प्रो० श्रीमन् नारायण की धारणा है कि, “देश में ईमानदार तथा दक्ष मनुष्यों की सृष्टि किए बिना बड़े पैमाने पर आर्थिक आयोजन शुरू करना संभव नहीं होगा।”

9. **उपभोग का सिद्धान्त (A theory of consumption)**—प्रोफेसर गेलब्रैथ के अनुसार, आधुनिक विकास आयोजन की अन्तिम आवश्यकता उपभोग का सिद्धान्त है। अल्पविकसित देशों को विकसित देशों के उपभोग ढांचे का अनुसरण नहीं करना चाहिए। उपभोग का सिद्धान्त गणतन्त्रात्मक होना चाहिए और “मुख्य ध्यान उन वस्तुओं को देना चाहिए जो मॉडल आय (model income) की सीमा में आती हैं, जिनको एक विशिष्ट परिवार खरीद सकता है। अतः एक निम्न आय वाले देश में सस्ती बाईसिकलें सस्ती मोटरों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं। गांवों के लिए बिजली पैदा करने का कम खर्चीला सिस्टम एक ऊंची क्षमता वाले सिस्टम—जो ऐसे उपकरण प्रयोग करता है जिसे लोग लगा नहीं सकते... से अच्छा है। सस्ते रेडियो सेट महत्वपूर्ण हैं, टी०वी० किसी और समय के लिए है। सर्वोपरि इतना कोई भी महत्वपूर्ण नहीं जितना कि प्रचुर और दक्षता से उत्पादित खुराक, कपड़े और निवास क्योंकि यही सबसे लोकप्रिय आवश्यकताएँ हैं।”

10. **सार्वजनिक सहयोग (Public cooperation)**—सबसे बढ़कर, प्रजातन्त्रमूलक देश में योजना की सफलता के लिए सार्वजनिक सहयोग को एक महत्वपूर्ण साधन समझा जाता है। आयोजन के लिए लोगों के अपरिमित सहयोग की आवश्यकता होती है। आर्थिक आयोजन दलीय राजनीति से ऊपर होना चाहिए, परन्तु साथ

- प्रदेशों के बीच विशेष कर्षों के आबंटन की समस्या के अनेक पहलू हैं जिन पर योजना-निर्माताओं तथा राजनीतियों के विचारों में भिन्नताएँ पाई जाती हैं।
- अल्पविकसित देशों की विशिष्टता यह है कि वहाँ आय तथा रोजगार में प्रादेशिक अन्त विद्यमान रहते हैं। इन नीतियों के अनुसरण में ग्राम एवं लघु उद्योगों के प्रोत्साहन दिया गया और छोटे छोटे कस्बों के निकट औद्योगिक बस्ती स्थापित की गई।

4.8 सारांश (Summary)

3. भारत में प्रादेशिक असमानताओं से संबद्ध नीतियाँ क्या हैं?

2. संवर्धित प्रादेशिक विकास की क्या आवश्यकता है?

1. प्रदेशों में विशेष आबंटन किस प्रकार किया जाता है?

छात्र कियोजनाएँ

ही इसे सब वर्गों का समर्थन प्राप्त हो। दूसरे शब्दों में, जब लोगों के प्रतिनिधि योजना को अनुमोदन प्रदान कर दें, कि ग्रो लुईस का कथन है, "सांवाजनिक उत्साह आयोजन की चिकनाने वाला तेल और आर्थिक विकास का प्रदोल-दोनो ही है-अर्थात् एक ग्यात्मक है, जो सब कुछ संभव बनाती है।"

क्षेत्रीय योजनाओं के
समाकलन संबंधी
व्यापक दृष्टिकोण
नीट

क्षेत्रीय योजनाओं के
समाकलन संबंधी
व्यापक दृष्टिकोण

नोट

- अर्थशास्त्रीय व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें वस्तुएं एवं सेवायें आगे उत्पादन व उपभोग के लिए उत्पादित तथा वितरित की जाती हैं।
- आर्थिक विकास के सामाजिक निर्धारकों की पहचान करते समय हमें यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि निम्न विकास के कारण अलग-अलग देशों में अलग-अलग होते हैं।
- सफल आयोजन के लिए एक सशक्त, दक्ष तथा अभ्रष्ट प्रशासन अनिवार्य है। परन्तु अल्पविकसित देश में इसी का तो सबसे अधिक अभाव होता है।

प्रश्न-अभ्यास (Exercise Questions)

1. क्या अधिक विकास संभाव्यता वाले प्रदेशों में अधिक आबंटन होता है?
2. संतुलित प्रादेशिक विकास की आवश्यकताओं पर प्रकाश डालें।
3. नीति संबंधी उपाय क्या है? संक्षेप में वर्णन करें।
4. कम-विकसित राज्यों के बारे में दसवीं योजना की रणनीति का उल्लेख करें।

संदर्भ-पुस्तकें (Reference Books)

1. India's Five Year Plans : Complete Document, Academic Foundation.
2. Social Development Planning : V. Shanmugasundram, Jozef Mihalik.
3. Social Planning : Concept and Techniques : P.N. Sharma, C. Shastri, Print House.



